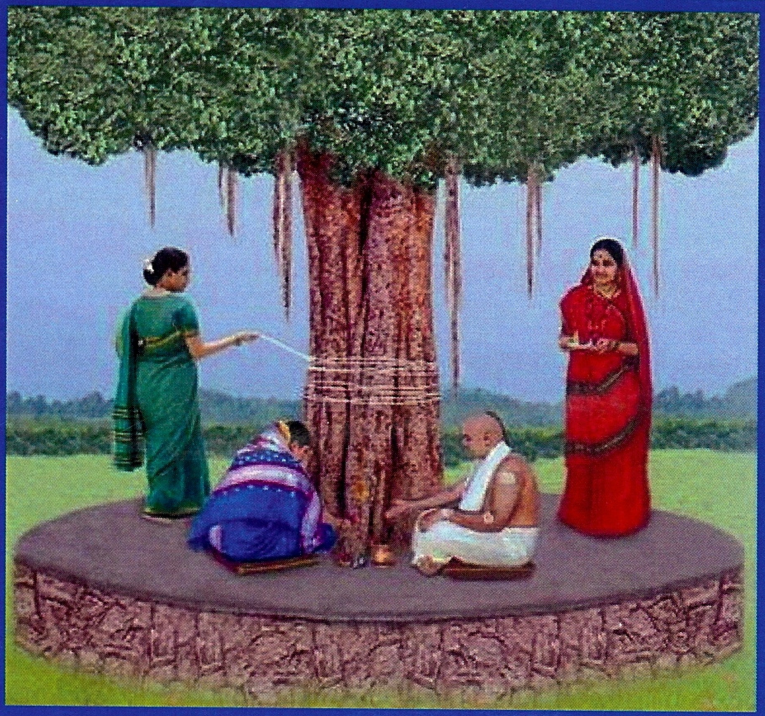
संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला 103वां पुष्प

व्रतों से रोग निवारण



प्रधान सम्पादक

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय

कुलपति

सम्पादक

डॉ. रामराज उपाध्याय

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

(मानित विश्वविद्यालय)

नई दिल्ली - 110016

ग्रन्थ परिचय

इस पुस्तक में प्रायः उस प्रकार के सभी व्रतों का परिचय कराया गया है, जिनका मानवीय शरीर को रोग रहित बनाने में प्रत्यक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। व्रतों से रोग निवारण की परम्परा अति प्राचीन परम्परा है, जिसको इस ग्रन्थ में समाहित करने का प्रयास किया गया है। इसके अलावा मानवीय जीवन मूल्यों को अहर्निश विकसित करने वाले तत्त्वों पर भी प्रकाश डाला गया है जिनका प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अत्यन्त महत्त्व है।

इस पुस्तक में व्रतों को कुल ग्यारह भागों में बाँटा गया है। इसमें रोग निवारक व्रतों के साथ-साथ महीनों, संक्रान्तियों, अयनों इत्यादि कालों में किये जाने वाले व्रतों को भी संकलित किया गया है। इस पुस्तक में व्रतों के साथ-साथ आवश्यक मानवीय जीवन मूल्यों, क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने वाले दानों के विषय में भी बतलाया गया है। जीवन में कुछ गलतियाँ स्वाभाविक रूप से हो जाया करती हैं तथा कुछ गलतियाँ जान बूझकर भी की जाती हैं। इस प्रकार की सभी गलतियों की शान्ति हेतु कुछ प्रायश्चित क्रिया कलापों का भी वर्णन सहज ढंग से इस पुस्तक में करने का प्रयास किया गया है। यह पुस्तक भारतीय समाज ही नहीं अपितु समस्त जन के लिए अत्यन्त उपयुक्त एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।

लेखक

संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला का 103 वाँ पुष्प

व्रतों से रोग निवारण

प्रधान सम्पादक

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय

कुलपति

सम्पादक

डॉ. रामराज उपाध्याय

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली-110016

प्रकाशक:
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र
नई दिल्ली-११००१६

आई.एस.बी.एन. : 81-87987-76-6

प्रकाशनवर्ष: - 2015

मूल्य : ₹ 300/-

मुद्रक:
अमर प्रिंटिंग प्रैस
दिल्ली-११०००९

पुरोवाक्

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रधान अंग है व्रत, जो वैदिक काल से आज तक निर्बाध गति से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मानवमात्र में प्रवाहित हो रहा है। निरुक्तकार आचार्य यास्क ने व्रत को परिभाषित करने के लिये ''वृणोति'' एवं ''वारयति'' दो सूत्रों को प्रदान किया है। सामान्य दृष्टि से विचार करने पर वृणोति शब्द वरण करने के अर्थ में एवं वारयति वारण या निवारण के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। वरण यानी स्वीकरण जब हम किसी विशेष उद्देश्य से किसी विशेष नियम को स्वीकार करते हैं तो वह व्रत बन जाता है। उस नियम के परिपालन हेतु अनियम का निषेध व्रत का कृत्य हो जाता है जिसमें सामान्यतया किसी प्रकार के अन्नादि का निवारण पाया जाता है।

व्रत में हम सभी किसी विशेष नियम को स्वीकार करते हुये संकल्पपूर्वक संयमाचरण करते हैं। व्रत सभी प्रकार के पन्थों में किसी न किसी तरह से आदृत है। स्मृति कौस्तुभ नामक ग्रन्थ में व्रत को एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास एवं व्रत के रूप में बतलाया गया है। जिन व्रतों में केवल मध्याह्न में ही आहार का ग्रहण है वे एकभक्त व्रत हैं जैसे अनन्त व्रत इत्यादि। जिन व्रतों में सायाह्न आहार ग्रहण की व्यवस्था है जैसे प्रदोष व्रत इत्यादि। जिसमें आहार ग्रहण नहीं है, याचना नहीं है, वे अयाचित है, जैसे कुछ प्रायश्चित्त व्रत इत्यादि। जिसमें प्राय: साठ घटी तक निराहार रहना है, वे उपवास व्रत एवं जिसमें केवल नियम परिपालन है, वे व्रत जैसे उपनयादि। इस प्रकार से व्रत के विविध रूप हमें देखने को मिलते हैं।

व्रत को एहिकामुष्मिक फल प्रदाता कहा गया है। एहिक फल का प्रत्यक्ष उदाहरण है रोग निवारण। शरीरं व्याधिमन्दिरम् के अनुसार यह

शरीर रोग का घर है। शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम् कहते हुये शरीर को धर्म का पहला साधन बतलाया गया है। इसलिये यह परम आवश्यक है कि शरीर रोग रहित रहे, जिसमें एक कृत्य है व्रत। यानी व्रतों से रोग निवारण किया जा सकता है।

अनुष्ठान प्रकाश नामक ग्रन्थ के रोगोपशमन प्रकरण में महार्णव का आधार देते हुये बतलाया गया है कि रोग तीन प्रकार से उत्पन्न होते हैं :--

रोगाः कर्मोद्भवाः केचित्केचिद्दोषसमुद्भवाः।
कर्मदोषोद्भवाः केचिदेवं रोगास्त्रिधा स्मृताः।।

ये रोगान्नैव शाम्यन्ति कृते ह्यौषधकर्मणि।
धर्मेणैवोपशाम्यन्ति ते रोगाः कर्मजाः स्मृताः।।

प्रायश्चित्तेपि विहिते न शाम्यन्ति विनौषधम्।
ये दृष्टहेतुसंभूतास्ते रोगा दोषजाः स्मृताः।।

येषां सर्वात्मना हानिर्भवेत्पुण्यैर्न केवलैः।
न केवलौषधेर्वापि रोगास्ते कर्मदोषजाः।।

अर्थात् कर्मोद्भवरोग, दोषसमुद्भवरोग एवं कर्मदोषोद्भवरोग के रूप में समस्त रोगों को विभक्त किया गया है, जो रोग ओषधि कर्म से शान्त नहीं होते हैं, और धर्म कर्म से ही शान्त होते हैं, ऐसे रोगों को कर्मोद्भव रोग कहते हैं। जो रोग विहित प्रायश्चित्त से भी, बिना औषधि के शान्त नहीं होते और दृष्टिमात्र से भी संभूत हो जाते हैं, ऐसे रोगों को दोषसमुद्भवरोग कहते हैं, जिसमें सम्पूर्ण हानि के योग होते हैं, जिन्हें न केवल पुण्यों से न केवल औषधियों से दूर किया जा सकता है, उसे कर्मदोषोद्भवरोग कहते हैं।

तीनों ही प्रकार के रोगों में व्रत एक ऐसा कर्म है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से व्यक्ति से संबंधित है। चाहे वह पुण्यार्जन में हो या औषधि सेवन में। इसलिये व्रतों से रोग निवारण की पुरातन परम्परा भारतीय

समाज में समादृत रही है। आज हम उस ज्ञान को भूलते जा रहे हैं। आवश्यकता है, उस ज्ञान के पुनरावलोकन की।

इसी क्रम में पौरोहित्य विभाग के सह-आचार्य डॉ. रामराज उपाध्याय, ने **"व्रतों से रोग निवारण"** नामक प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन किया है, जिसमें विविध व्रतों के परिपालनीय नियमों एवं कुछ महत्त्वपूर्ण व्रतों की कथायें अनुवाद के साथ संगृहीत हैं। यह ग्रन्थ मानव मात्र को स्वस्थ रखने के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्द्धन में भी सहायक होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं इस सारस्वत सपर्या के लिये श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ के पौरोहित्य विभाग के उपाचार्य डॉ. रामराज उपाध्याय को साधुवाद देता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि व्रतों से रोग निवारण नामक यह ग्रन्थ लोकोपकारक बने, जिससे जन-जन का कल्याण हो सके।

दिनांक : 28.10.2015 **-रमेश कुमार पाण्डेय**

शुभाशंसनम्

विद्वानेव जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्

विद्वज्जनाः जानन्त्येव लेखने पुनश्च ग्रन्थस्य प्रकाशने कियत्परिश्रमः भवति। रोगाणां निवारणे व्रतानां महती भूमिका वर्तते, व्रताचरणे मौनमप्यावश्यकं वर्तते।

गीतायां कथ्यते–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःख हा।।

डॉ. रामराज उपाध्यायमहोदयाः शास्त्रेषु कृतभूरिपरिश्रमाः विनम्राश्च विद्वांसस्सन्ति। भारतीया संस्कृतौ प्रायशः सर्वे जनाः व्रतादिकं कुर्वन्ति यतोहि व्रताचरणेन न केवलं रोगाणां निवृत्तिर्भवति अपितु पुरुषार्थचतुष्टयानां प्राप्तयेऽपि साहाय्यं भवति। एका क्रिया द्वयर्थकरी इत्यनुसारेण जनाः चिन्तयन्ति क्रिया एका भवेत् परञ्च तया क्रियया द्वित्वं त्रित्वं च साधितं स्यात्। व्रतानां प्रयोगोऽपि एतादृशमेवास्ति। पौरोहित्यप्रक्रियाणां यज्ञादिकानि कर्माणि उपवासपूर्वकमेवसम्पाद्यते। प्रायशः जनाः चिन्तयन्ति पूजनं करणीयमस्ति एतावता व्रतयुक्तो भूत्वा पूजनं कुर्यात् अनन्तरं अन्नादिकस्य स्वीकरणं भविष्यति। संक्षेपतया एवं वक्तुं शक्यते व्रताचरणेन देवस्य प्रसन्नता प्राप्यते, शरीरे स्वस्थ्यताऽपि प्राप्यते। अस्मिन् पुस्तके व्रतादिकैः कथं रोगाणां विनिवारणं भविष्यतीदं प्रतिपाद्यमस्ति। पौरोहित्यस्य कृते अतीवोपयोगी अस्त्ययं ग्रन्थः। डॉ. रामराज उपाध्यायमहोदयानां वैशिष्ट्यमस्ति यदेते सदैव स्वाध्याये प्रवृत्ताः भवन्ति।

ग्रन्थोऽयं विदुषामध्येतॄणां छात्राणां सामान्यजनानां च हितावहं सेत्स्यतीति मे दृढो विश्वासः।

प्रो. रवीन्द्रनागरः

पूर्वाचार्योध्यक्षश्च पौरोहित्यविभागस्य

कृतज्ञताज्ञापनम्

ग्रन्थ लेखन के प्रति सदैव प्रेरित करने वाले श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ के यशस्वी कुलपति प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय जी गुरुजी के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ लिखा जा सका इसके लिये मैं कुलपति महोदय के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। विश्व विश्रुत विद्वान् प्रो. रवीन्द्र नागर जी का आशीर्वचन हमें हमेशा प्राप्त होता है इसके लिये मैं उनका आभार प्रकट करता हूँ। वेदवेदाङ्गसङ्काय प्रमुख एवं पौरोहित विभागाध्यक्ष प्रो. हरिहर त्रिवेदी जी का सान्निध्य महदुपकारक है, एतदर्थ उन्हें नमन करता हूँ। विद्यापीठ के कुलसचिव प्रो. बी.के. महापात्र का उनके सहयोग हेतु आभार प्रकट करते हुये इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु व्यय करने वाले भारत सरकार का मानव संसाधन एवं विकास मन्त्रालय एवं श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ सहित उसके प्रकाशन विभाग का मैं विशेष रूप आभारी हूँ जिनके सहयोग से प्रकाशित हो सका। इस पुस्तक के लेखन में अपने शिष्यवत् तनय काशी हिन्दू वि.विश्वविद्यालय वाराणसी के वेद विषय के अध्येता श्री चन्द्रेश उपाध्याय का एवं उनके अनुजों श्री धर्मेश एवं ज्ञानेश उपाध्याय का महनीय योगदान रहा है। व्रतों से रोग निवारण नामक इस पुस्तक के निर्माण में स्वपाणिगृहीता भार्या श्रीमती वीणा उपाध्याय का प्रभूत सहयोग प्राप्त हुआ जिससे इसका मूर्त्त स्वरूप आप सभी के समक्ष रखने में मैं सफल हो सका हूँ। इस पुस्तक को पूर्णतया समाजोपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। प्रकाशन विभाग के डॉ. ज्ञानधर पाठक जी की कृतज्ञता ज्ञापित करते हुये इस ग्रन्थ लेखन में सहयोग करने वाले अमर प्रिंटिंग प्रेस सहित समस्त सहयोगियों को धन्यवाद देता हूँ।

डॉ. रामराज उपाध्याय

भूमिका

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् के अनुसार धर्म निर्वहन का प्रथम प्रमुख साधन शरीर है। लेकिन जब शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा तब किसी भी कार्य का सम्यक्तया सम्पादन नहीं हो सकता है। शरीर रोग रहित हो एतदर्थ अनेकानेक शास्त्रों ने स्वीकार्य दृष्टि से विचार किया है जिनका मानवीय जीवन में अतुलनीय योगदान है। पौरोहित्य शास्त्र शरीर को रोग रहित होने का उपाय व्रत को बतलाता है यानी यह शास्त्र व्रतों से रोग निवारण का सद्प्रयास करता है।

व्रत शब्द वृत्र धातु से उणादि अतच् प्रत्यय करने पर बनता है। जिसको निरुक्तकार ने वृणोति एवं वारयति इन दो शब्दों से परिभाषित किया है। वृणोति का सामान्य अर्थ वरण करने से है। वरण करना यानी स्वीकार करना। हमें जीवन में किसको स्वीकार करना है तथा किसे अस्वीकार करना है, यह अत्यन्त ही उपादेय विषय है। इस विषय के प्रभूत उदाहरण इस पुस्तक में भरे पड़े हैं फिर भी यहाँ कुछ उदाहरण विद्वजन के समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ।

मेधावर्धक ग्रहण व्रत में यह नियम है कि दिन के पूर्वभाग में होने वाले ग्रहण के पहले दिन प्रातः स्नानादि करके ब्राह्मी का सेवन करके व्रत करें। उसके दूसरे दिन ग्रहण के समय सोने की शलाका या कुशा के मूल अथवा दूर्वा के अंकुरों से जीभ पर छोटी मक्खियों के शहद से 'ऐं' लिखें और इसी का जप करें। उसके बाद गाय के दूध की खीर में हवन से बचा हुआ घी मिला दें और पाँच प्राणाहुतियाँ देकर व्रत करें तो इससे छोटी अवस्था के छात्रों की बुद्धि विकसित होती है और उनका शास्त्र ज्ञान बढ़ता है। इस मेधावर्धकग्रहण व्रत में नियम का वरण किया गया है। यदि व्यक्ति को इन अभिलाषाओं की पूर्ति करनी हो तो उन्हें

इन नियमों को स्वीकार करना चाहिये। इस प्रकार से शरीर को पुष्टि प्रदान करने वाले किस आहार-विहार को स्वीकार करना है यह भी ध्यान रखना होगा। यास्क का वृणोति शब्द इसी प्रकार के अनेकानेक अर्थों को सम्बोधित करता है।

वारयति शब्द को यदि व्रत शब्द की परिभाषा हेतु चयन किया जाये तो इसका अर्थ निवारयति बतलाया गया है। अर्थात् जो निवारण करे, अनेकों निषिद्ध कर्मों को करने से अपने को रोकें। रोगोत्पत्ति का एक कारण निषिद्ध कर्मों को करना भी माना गया है। निषिद्ध कर्मों को करने से तज्जन्य परिणाम को दोष की संज्ञा दी गयी है और दोषों के कारण ही शरीर रोग के प्रभाव से ग्रस्त हो जाता है। शिव गीता में इस कारण को और अधिक स्पष्ट करते हुए बतलाया गया है कि-

साध्वीं भार्यां च यो मर्त्यः परित्यजति कामतः।
संग्रहणीरोगसंयुक्तः सदा भवति मानवः॥

जो भी व्यक्ति अपनी साध्वी भार्या (पत्नी) को त्यागता है वह संग्रहणी रोग से ग्रस्त हो जाता है। यहाँ साध्वी भार्या को त्यागना निषिद्ध कर्म है। इस कर्म को यदि किया जायेगा तो उसका जो कुफल है संग्रहणी रोग, वह व्यक्ति को भोगना पड़ेगा। इसीलिए कहा गया है कि निषिद्ध कर्म फल के आधार पर ही निन्दनीय है क्योंकि उसके द्वारा उत्पन्न जो फल है वह फल नहीं वस्तुतः कुफल है जिसका परिणाम सुख नहीं अपितु दुःख है। दुःख को रोग का ही एक स्वरूप बतलाया गया है। क्योंकि दुःख से कष्टानुभूति होती है और रोग में भी कष्ट ही होता है।

महर्षि यास्क के आधार पर की गयी व्रत संबंधी परिभाषा वृणोति एवं वारयति शब्द को पौरोहित्य शास्त्र रोग निवारण का मूल मानता है। यदि मानव अपनी जीवनचर्या में इसको स्थान दे तो, वह रोगों से निवृत्त रहते हुए अपने जीवन को सफल ही नहीं अपितु सुफल बना सकता है। सफल से सुफल बनाना उत्तम है क्योंकि सफल में फल सहित होता है परन्तु सुफल में सुन्दर स्वाद युक्त फल सम्मिलित है। विडम्बना यह है

कि व्यक्ति सुखकर दुःख को सहन नहीं कर पाता जबकि दुखकर सुख को झेलना पसन्द करता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि नियम संयम पूर्वक व्रतों का अनुपालन करते हुए रोगों का निवारण किया जाय।

आज कभी-कभी देखने में आता है कि रोग निवारण की पद्धति प्रदूषित होती जा रही है क्योंकि एक रोग के निवारण हेतु जिन औषधियों का सेवन किया जाता है वे औषधियाँ ही कभी-कभी किसी दूसरे रोगों की उत्पत्ति का कारण बन जाती है जिससे व्यक्ति व्यथित हो जाता है। कभी-कभी औषधियों के परस्पर संपृक्त होने से विपरीत परिणाम भी उत्पन्न हो जाते हैं। लेकिन व्रतों के आचरण से व्यक्ति कुछ भी ग्रहण न करके अपने आभ्यान्तरिक इन्द्रियों को विराम देकर पूर्ववत् शक्ति सम्पन्न बना देता है।

प्राचीन काल में आयुर्वेद शास्त्र औषधियों के वास्तविक स्वरूप से लोगों की चिकित्सा करता था परन्तु आज औषधियों के ज्ञान एवं पहचान के अभाव के कारण इस चिकित्सा पद्धति में न्यूनता आ गयी है। व्रतों से रोग निवारण का उपक्रम अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी यदि कहा जाय कि अत्यर्वाचीन है तो इसमें कोई वैमत्य नहीं होगा। व्रत से सन्दर्भित व्याख्याओं का अवलोकन करने पर यह विदित होता है कि व्रत नियम संयम का एक उपनाम है जिसमें कल्याणकारी कार्यों हेतु व्यक्ति दृढ़ प्रतिज्ञ हो जाता है। संकल्प करता है कि मैं आज यह करूंगा। संकल्प में सम्यक् कल्प जुड़ा हुआ है। यदि सम्यक् न हुआ तो उस पर किया जाने वाला कृत्य भी कथमपि सम्यक् नहीं हो सकता। इसीलिए भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को **सम्यक् संकल्पजः कामः** का उपदेश दिया है। स्वास्थ्य विज्ञान भी इस बात को निर्विवाद रूप से मानता है कि जब व्यक्ति व्रती होता है तब उसके शरीर से रोगों का पलायन होता है। रोगों का पलायन या निराकरण ही रोग निवारण है। व्रतों से रोगों के निवारण में यदि व्यक्ति समर्थ हो जाता है तो बिना विपरीत प्रभाव के रोगों से निवृत्ति प्राप्त करने में वह सफल माना जा सकता है।

धर्मादि चतुष्ट्य की प्राप्ति हेतु प्राप्त इस शरीर को रोग रहित बनाना जीवन का परम एवं चरम कर्त्तव्य है और उसे यदि आध्यात्मिकता यानी व्रतों से प्राप्त करने का प्रयास किया जा सकता है तो वहाँ सोने पे सुहागा की उक्ति चरितार्थ होगी इसमें रंचमात्र भी संशय नहीं है। इसी को ध्यान में रखकर मैंने व्रतों से रोग निवारण नामक पुस्तक का चयन किया है जिसमें विभिन्न शास्त्रों से प्राप्त संदर्भित विषयों को संगृहीत करने का प्रयास किया गया है, परन्तु त्रुटियाँ स्वाभाविक हैं जिसे ज्ञानी जनों के निर्देशानुसार अग्रिम संस्करण में सुधारने का प्रयास किया जायेगा।

धन्यवाद

आपका
डॉ. रामराज उपाध्याय

पुष्पाञ्जलि

व्यक्ति को सद्‌बुद्धि की प्राप्ति तभी होती है जब उस पर किसी महापुरुष की दृष्टि पड़ती है। महापुरुष कीचड़ में पड़े हुए कमल बीज के समान कमल पुष्प को साक्षात्, राजराजेश्वरी के चरणों में निवेदित कर उस पुष्प का भाग्यवर्धन कर देता है।

मेरे पितामह स्व. पं. श्री सुदर्शन उपाध्याय जी, वेद विभागाध्यक्ष, श्री जोखीराम मटरुमल गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, भदैनी, वाराणसी भी इस प्रकार के महापुरुषों में थे जिनका जीवन भगवती की आराधना एवं विद्यार्थियों के अध्यापन में पूर्ण हुआ। मुझे वह दिन अच्छी तरह स्मरण है जब संस्कृत पढ़ने के लिए दूर-दूर से आये विद्यार्थियों पर उनकी सघन कृपा दृष्टि पड़ती थी और यथासम्भव समस्त सुविधाओं को प्रदान करने का प्रयास करते थे ताकि संस्कृत विद्या का प्रचार-प्रसार एवं विकास हो सके। परिवार के अन्य सदस्यगण मुझे संस्कृतेतर विद्याओं की ओर ले जाना चाहते थे परन्तु मेरी रुचि इस देव विद्या में ही थी। पितामह जी ने चतुर पारखी की तरह मेरे अभ्यन्तर में छिपी हुई गुप्त भावनाओं को समझा और मुझे संस्कृत पढ़ने को प्रेरित किया।

आज जब वे इस धरा-धाम पर नहीं हैं मुझे अपनी सफलताओं के प्रत्येक सोपान में उनकी याद ताजा तरीन रहती है। ऐसा लगता है जैसे उनका मुझे साक्षात् आशीर्वाद मिल रहा है। मैं अपने पितामह की प्रसन्नता एवं उनकी आत्मा की शान्ति के लिए इस व्रतों से रोग निवारण नामक पुस्तक को उनके चरण कमलों में पुष्पाञ्जलि के रूप में समर्पित करता हूँ।

डॉ. रामराज उपाध्याय

विषयानुक्रमणिका

1. मास व्रतों का सामान्य वर्णन

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशवराभीतिः धारयन्तीं शिवां भजे।।

अग्ने व्व्रतपते व्रतञ्चरिष्यामितच्छकेयन्तन्न्मेराध्यताम् इदमह-मनृतात्त्सत्त्यमुपैमि।।

सदाशिवसमारम्भां शंकराचार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्।।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

जिस महीने में सूर्यसंक्रान्ति[1] न हो, वह मास अधिमास कहलाता है और जिसमें दो संक्रान्ति हो वह क्षयमास होता है। इसको 'मलिम्लुच' भी कहते हैं। अधिमास 32 महीने, 16 दिन और 4 घड़ी के अन्तर से आया करता है और क्षयमास 141 वर्ष पीछे उसके बाद 19 वर्ष पीछे आता है। क्षयमास कार्तिकादि महीनों में से होता है। लोकव्यवहार में यह महीना अधिमास, 'अधिकमास', 'मलमास', 'मलिम्लुच मास' और 'पुरुषोत्तममास' नाम से विख्यात है। चैत्रादि 12 महीनों में क्रमशः वरुण, सूर्य, भानु, तपन, चण्ड, गभस्ति, अर्यमा, हिरण्यरेता, दिवाकर, मित्र और विष्णु – ये 12 सूर्य होते हैं और अधिमास इनसे पृथक् रह जाता है। इस कारण यह मलिम्लुच मास कहलाता है।

'अधिमास' में फल की प्राप्ति की कामना से किये जाने वाले प्रायः सभी काम वर्जित हैं और फल की आशा से रहित होकर

---

1. असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद्। द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्। (ज्यो. शास्त्र)

आवश्यक सब काम किये जा सकते हैं।

यथा – कूप, बावली, तालाब और बाग आदि का आरम्भ और प्रतिष्ठा, किसी भी प्रकार और किसी भी प्रयोजन के व्रतों का आरम्भ और उत्सर्ग (उद्यापन), नवविवाहिता वधू का प्रवेश, पृथ्वी, हिरण्य और तुलादि के महादान, सोमयज्ञ और अष्टकाश्राद्ध (जिसके करने से पितृगण प्रसन्न हों), गौ का यथोचित दान, आग्रयण (यज्ञ–विशेष नवीन अन्न से किया जाने वाला यज्ञ, यह वर्षा ऋतु में 'सावाँ' (साँक्य) से, शरद् में चावलों से और वसन्त में जौ से किया जाता है), पौसरे (प्याऊँ) का प्रथमारम्भ, उपाकर्म (श्रावणी पूर्णिमा का ऋषिपूजन), वेदव्रत (वेदाध्ययन का आरम्भ), नीलवृष का विवाह, अतिपन्न संस्कार (बालकों के नियत समय में न किये हुए संस्कार), देवताओं का स्थापन (देवप्रतिष्ठा), दीक्षा (मन्त्रदीक्षा, गुरुसेवा), मौञ्जी-उपवीत (यज्ञोपवीत-संस्कार), विवाह, मुण्डन संस्कार, पहले कभी न देखे हुए देव और तीर्थों का दर्शन, संन्यास, अग्निपरिग्रह (अग्नि का स्थायी स्थापन), प्रथम बार राजा के दर्शन, अभिषेक, प्रथम यात्रा, चातुर्मासीय व्रतों का प्रथमारम्भ, कर्ण–बेध और परीक्षा ये सभी कार्य अधिमास में और गुरु–शुक्र के अस्त में सर्वथा वर्जित हैं। इनके अतिरिक्त तीव्र ज्वरादि प्राणघातक रोगादि की निवृत्ति, रुद्रजपादि अनुष्ठान, कपिलाषष्ठी जैसे अलभ्य योगों के प्रयोग, अनावृष्टि के अवसर में वर्षा कराने हेतु पुरश्चरण, वषट्कार वर्जित आहुतियों का हवन, ग्रहण सम्बन्धी श्राद्ध, दान और जपादि, पुत्रजन्म के कृत्य और पितृमरण के श्राद्धादि तथा गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्त जैसे संस्कार और नियत अवधि में समाप्त करने के पूर्वागत प्रयोगादि किये जा सकते हैं।

1.1 अधिमासव्रत[1]

चैत्रादि महीनों में जो महीना अधिमास हो, उसके सम्पूर्ण साठ दिनों में से प्रथम मास की शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ करके द्वितीय मास की कृष्ण अमावस्या तक तीस दिनों में अधिमास के निमित्त का उपवास या

1. भविष्योत्तरपुराण।

नक्त अथवा एकभुक्त व्रत करके यथासामर्थ्य दान-पुण्यादि करना अधिमास व्रत कहलाता है। यदि मासपर्यन्त का सामर्थ्य न हो या उतना अवसर ही न मिले तो पुण्यप्रद किसी भी दिन में दोनों स्त्री-पुरुष प्रातः स्नानादि नित्यकर्म करके भगवान् वासुदेव को हृदय में रखकर व्रत या उपवास करें और अव्रण (अच्छिद्र) कलश पर लक्ष्मी और नारायण की मूर्त्ति का स्थापन करके उनका सप्रेम पूजन करें। पूजन के अनन्तर-

देवदेव महाभाग प्रलयोत्पत्तिकारकः
कृष्ण सर्वेश भूतेश जगदानन्दकारक।
गृहाणार्घ्यमिमं देव दयां कृत्वा ममोपरि॥

से अर्घ्य दें और

स्वयम्भुवे नमस्तुभ्यं ब्रह्मणेऽमिततेजसे।
नमोऽस्तु ते श्रितानन्द दयां कृत्वा ममोपरि॥

से प्रार्थना करें। नैवेद्य में घी, गेहूँ और गुड़ के बने हुए पदार्थ, दाख, केले, नारियल, कूष्माण्ड (भतुआ) और दाडिमादि (अनार) फल और बैंगन, ककड़ी, मूली और अदरक आदि शाक अर्पण करके अन्न, वस्त्र, आभूषण और अन्य प्रकार से पृथक-पृथक् पदार्थों का दान दें।

यह[1] व्रत मनुष्यों के सम्पूर्ण पापों का हरण करने वाला है। इसमें एकभुक्त, नक्त या उपवास और भगवान् भास्कर का पूजन तथा कांस्यपात्र में भरे हुए अन्न-वस्त्रादि का दान किया जाता है। प्राचीन काल में नहुष राजा ने इन्द्रत्वप्राप्ति के मद से अपने नरयान (पालकी) को वहन करने में महर्षि अगस्त्य को नियुक्त करके 'सर्प-सर्प' (चलो-चलो) कह दिया था। उस धृष्टता के कारण वह राजा स्वयं सर्प हो गया था। अन्त में व्यास जी के आदेशानुसार अधिमास का व्रत करने से वह सर्पयोनि से मुक्त हुआ। व्रत का विधान यह है कि अधिमास आरम्भ होने पर प्रातः स्नानादि नित्यकर्म करके विष्णुस्वरूप 'सहस्रांशु' (हजार किरणवाले) सूर्यनारायण का पूजन करें। विभिन्न प्रकार के घी,

---
1. हेमाद्रि।

गुड़ और अन्न का नित्य दान करें तथा घी, गेहूँ और गुड़ के बनाये हुए तैंतीस अपूपों (पूओं) को कांस्यपात्र में रखकर

'विष्णुरूपी सहस्त्रांशुः सर्वपापप्रणाशनः।
अपूपान्नप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु॥'

से प्रतिदिन दान करें ओर

यस्य हस्ते गदाचक्रे गरुडो यस्य वाहनम्।
शङ्खः करतले यस्य स मे विष्णु प्रसीदतु॥

से प्रार्थना करें तो कुरुक्षेत्रादि के स्नान, गौ भू–हिरण्यादि के दान और अगणित ब्राह्मणों को भोजन कराने के समान फल होता है तथा सब प्रकार के धन, धान्य, पुत्र और परिवार बढ़ते हैं।

1.2 पुरुषोत्तममासव्रत[1]

पुरुषोत्तममासव्रत के विषय में श्रीकृष्ण ने कहा है कि इनका फलदाता, भोक्ता और अधिष्ठाता–सब कुछ मैं हूँ। (इसी कारण से इसका नाम पुरुषोत्तम है) इस महीने में केवल ईश्वर के उद्देश्य से जो व्रत, उपवास, स्नान, दान या पूजनादि किये जाते हैं उसका फल अक्षय होता है और व्रती के सम्पूर्ण अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं। इस मास में काम्य व्रत का विधान नहीं मिलता है।

मलमासव्रत[2] में दान, पुण्य या शरीर पोषण – जो भी किया जाये, उसका अक्षय फल होता है। यदि सामर्थ्य न हो तो ब्राह्मण एवं साधुओं की सेवा सर्वोत्तम है। इसमें तीर्थस्नानादि के समान फल होता है। पुण्य के कामों में व्यय करने से धन क्षीण नहीं होता, बल्कि बढ़ता है। जिस प्रकार अणुमात्र बीज के दान करने से वट–जैसा दीर्घजीवी महान वृक्ष होता है, वैसे ही मलमास में दिया हुआ दान अधिक फल देता है।

---

1. भविष्योत्तरपुराण।
2. भविष्योत्तरपुराण।

1.3 अधिमासीयार्चनव्रत

अधिमासीयार्चनव्रत[1] में भगवान की पूजन–विधि की यह विशेषता है कि गन्धयुक्त पुष्प सहित श्रीसूक्त के मन्त्र एवं भगवान के नामों का एक–एक करके उच्चारण करता हुआ उनको पुष्प अर्पण करना चाहिए। ये नाम इस प्रकार हैं–1. कूर्माय, 2. सहस्रशीर्ष्णे, 3. देवाय, 4. सहस्राक्षपादाय, 5. हरये, 6. लक्ष्मीकान्ताय, 7. सुरेश्वराय, 8. स्वयम्भुवे, 9. अमिततेजसे, 10. ब्रह्मप्रियाय, 11. देवाय, 12. ब्रह्मगोत्राय। इन सभी नामो के आगे नमः शब्द लगा कर पुष्प अर्पण करना चाहिये। पुनः लक्ष्म्यै नमः, कमलायै नमः, श्रियै नमः, पद्मवासायै नमः, हरिवल्लभायै नमः, क्षीराब्धितनयायै नमः, इन्दिरायै नमः – इन नामों से पुष्प अर्पण करके–

पुराणपुरुषेशान सर्वशोकनिकृन्तन।
अधिमासव्रते प्रीत्या गृहाणार्ध्यं श्रिया सह॥

पुराणपुरुषेशान जगद्धातः सनातन।
देवदेव महाभाग प्रलयोत्पत्तिकारक।

कृपया सर्वभूतस्य जगदानन्दकारक।
गृहाणार्ध्यमिमं देव दयां कृत्वा ममोपरि॥

इन मन्त्रों से तीन अर्घ्य दें यानी एक–एक श्लोक से एक–एक अर्घ्य दें तो महाफल होता है।

---

1. पूजापङ्कजभास्कर।

2. संक्रान्ति व्रतों का वर्णन

सूर्य जिस राशि पर स्थित हो उसे छोड़कर जब दूसरी राशि में प्रवेश करता है तब उस समय का नाम संक्रान्ति है। कुल राशियाँ बारह है, इसलिए एक वर्ष में बारह संक्रान्तियाँ होती हैं। ऐसी बारह संक्रान्तियों में मकरादि छः और कर्कादि छः राशियों के भोगकाल में क्रमशः उत्तरायण और दक्षिणायन – ये दो अयन होते हैं अर्थात् छः महीने का उत्तरायण एवं छः महीने का दक्षिणायन होता है। इनके अतिरिक्त मेष और तुला की संक्रान्ति की विषुवत्, वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ की संक्रान्ति की 'विष्णुपदी' और मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन की संक्रान्ति की षडशीत्यानन' संज्ञा होती है। अयन या संक्रान्ति के समय व्रत, दान या जपादि करने के विषय में पुण्य काल के सन्दर्भ में 'हेमाद्रि' के मत से संक्रमण होने के समय से पहले और बाद की 15-15 घड़ियाँ, बृहस्पति के मत से दक्षिणायन के पहले और उत्तरायण के बाद की 20-20 घड़ियाँ पुण्यकाल की होती हैं। पुण्य काल इसलिए आवश्यक है क्योंकि संक्रान्ति में तो उतना ही समय लगता है जितना एक कमल दल को सूई के नोक से छेदन करने में लगता है। इसलिए पुण्य काल के बिना जप, दान हो ही नहीं सकेगा। इनमें वसिष्ठ के मत से 'विषुव' के मध्य की विष्णुपदी और दक्षिणायन के पहले की तथा षडशीतिमुख और उत्तरायण के पीछे की उपर्युक्त घड़ियाँ पुण्यकाल की होती हैं। वैसे सामान्य मत से सभी संक्रान्तियों की 16-16 घड़ियाँ अधिक फलदायक हैं। यह विशेषता है कि दिन में संक्रान्ति हो तो पूरा दिन, अर्धरात्रि से पहले हो तो उस दिन का उत्तरार्ध, अर्धरात्रि से पीछे हो तो आने वाले दिन का पूर्वार्ध, ठीक अर्धरात्रि में हो तो पहले और पीछे तीन-तीन प्रहर और उस समय अयन का परिवर्तन हो तो तीन-तीन दिन पुण्य के होते

हैं। उस समय दान देने में भी यह विशेषता है कि अयन अथवा संक्रमण समय का दान उनके आदि में और दोनों ग्रहण यानी सूर्य ग्रहण एवं चन्द्र ग्रहण तथा षडशीतिमुख नामक संक्रान्ति के निमित्त का दान अन्त में देना चाहिए।

संक्रान्तिव्रत में मेषादि किसी भी संक्रान्ति का जिस दिन संक्रमण हो उस दिन प्रातः स्नानादि से निवृत्त होकर **मम ज्ञाताज्ञात समस्तपातकोपपातकदुरितक्षयपूर्वकं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त पुण्यफलप्राप्तये श्रीसूर्यनारायणप्रीतये च अमुकसंक्रमणकालीन समयकालीनं वा स्नान-दान-जप-होमादि कर्माहं करिष्ये।** इस संकल्प में अपने द्वारा किये जाने वाले कर्म जोड़े जायेगें। यह संकल्प करके वेदी या चौकी पर लाल कपड़ा बिछाकर चावलों का अष्टदल बनाकर उसमें सुवर्णमयी सूर्यनारायण की मूर्ति स्थापन करके उनका पञ्चोपचार (स्नान, गन्ध, धूप, पुष्प और नैवेद्य) से पूजन और निराहार, साहार, अयाचित, नक्त या एकभुक्त व्रत करें तो सब प्रकार के पापों का क्षय, सब प्रकार की आधि-व्याधियों का निवारण और सब प्रकार की हीनता अथवा संकोच का निपात होता है तथा प्रत्येक प्रकार की सुख-सम्पत्ति, सन्तान और सहानुभूति की वृद्धि होती है।

संक्रमणव्रत[1] में मेषादि किसी भी अधिकृत राशि को छोड़कर सूर्य दूसरी राशि में प्रवेश करे अथवा सौम्यायन या याम्यायन की प्रवृत्ति हो तो, उस समय दिन-रात्रि, पूर्वाह्ण, अपराह्ण, पूर्वापरनिश्यर्द्ध या अर्धरात्रि का कुछ भी विचार न करके तत्काल स्नान करें और सफेद वस्त्र धारण करके अक्षतादि के अष्टदल पर स्थापित किये हुए सुवर्णमय सूर्य का उपरोक्त प्रकार से पूजन करें। साथ ही ३ॐ आकृष्णेन'. '३ॐ नमो भगवते सूर्याय' अथवा '३ॐ घृणिः सूर्याय नमः' का जप और आदित्यहृदयादि का पाठ करके घी, शक्कर और मेवा मिले हुए तिलों का हवन करें और अन्न-वस्त्रादि देय वस्तुओं का दान देना चाहिये। इनमें से एक-एक कृत्य पावन करने वाला होता है। स्मृत्यन्तर में रात्रि को स्नान और दान

1. गर्ग-मालव गौतमादि।

वर्जित किये हैं। इनका स्मृतिकार 'विष्णु' ने यह समाधान किया है ।९। विवाह, व्रत, संक्रान्ति, प्रतिष्ठा, ऋतुस्नान, ग्रहण, उद्वाह (विवाह), संक्रान्ति, यात्रा, प्रसवपीड़ा और इतिहासों का श्रवण – इनके निमित्त का 'रात्रिदान' वर्जित नहीं है। यही नहीं यदि कोई ग्रहणादि उक्त अवसरों में रात्रि के विचार से स्नान और दान नहीं करे तो वह चिर काल (कई वर्षों) तक रोगी और दरिद्री रहता है। इस व्रत में यह विशेषता है कि वृद्धवसिष्ठ के मतानुसार अयन (मकर-कर्क संक्रमण) और विषुव (मेष-तुला-संक्रमण) इनमें तीन रात्रि का और आपस्तम्ब के मतानुसार अयन, विषुव और दोनों ग्रहण इनमें सूर्योदय से सूर्योदयपर्यन्त का उपवास करने से सब पाप छूट जाते हैं। परन्तु पुत्रवान गृहस्थी के लिए रविवार, संक्रन्ति, चन्द्रादित्य के ग्रहण और कृष्णपक्ष की एकादशी का व्रत करने का आदेश नहीं है। अतः इनको चाहिए कि वह व्रत की अपेक्षा स्नान और दान अवश्य करें। इनके करने से दाता और भोक्ता दोनों का कल्याण होता है। षडशीति (कन्या, मिथुन, मीन और धनु) तथा विषुवती (तुला और मेष) संक्रन्ति में दिए हुए दान का अनन्त गुना, अयन में दिए हुए का करोड़ गुना, विष्णुपदी में दिए हुए का लाख गुना, षडशीति में हजार गुना, इन्दुक्षय (चन्द्रग्रहण) में सौ गुना, दिनक्षय (सूर्यग्रहण)में हजार गुना और व्यतीपात में दिये हुए दानादि का अनन्त गुना फल होता है। देय के विषय में भी यह विशेषता है कि–

1- 'मेष' संक्रान्ति में मेढा का दान करना चाहिए।

2- 'वृष' में गौ का दान किया जा सकता है।

3- 'मिथुन' में अन्न-वस्त्र और दूध दही जो भी सम्भव हो दे सकते हैं।

4- 'कर्क' में धेनु के दान का विधान है।

5- 'सिंह' में सुवर्णसहित छत्र (छाता) का दान करना चाहिए।

6- 'कन्या' में वस्त्र और गायें देनी चाहिए।

7- 'तुला' में अनेक प्रकार के धान्य-बीज (जौ, गेहूँ और चने आदि) का दान करना उत्तम है।

8- 'वृश्चिक' में घर–मकान या झोपड़ें (पर्णकुटी) का दान किया जा सकता है।

9- 'धनु' में बहुवस्त्र और सवारियाँ दी जा सकती है।

10- 'मकर' में काष्ठ और अग्नि का दान कर सकते हैं।

11- 'कुम्भ' में गायों के लिए जल और घास दान का विधान है।

12- 'मीन' में उत्तम प्रकार के माल्य (तेल–फुलेल पुष्पादि) का दान करना चाहिए।

और स्थान का दान करने से सब प्रकार की कामनाएँ सिद्ध होती है। ऐसा कहा गया है कि संक्रान्ति आदि के अवसरों में हव्य–कव्यादि जो कुछ दिया जाता है, सूर्यनारायण उसे जन्म–जन्मान्तर पर्यन्त उस दान दाता को प्रदान करते रहते हैं।

किसी महीने की कोई भी संक्रन्ति यदि शुक्लपक्ष की सप्तमी और रविवार को हो तो वह 'महाजया'[1] होती है। उस दिन प्रातः स्नानादि के पश्चात् अक्षतों के अष्टदल पर सुवर्णमय सूर्यमूर्ति की अथवा पूर्वप्रतिष्ठित सूर्यप्रतिमा को स्थापित करके गाय के घी और दूध से पूर्ण स्नान कराये तथा पञ्चोपचार से पूजन करके सोपवास जप, तप, हवन, देवपूजा, पितृतर्पण और दान करे तथा ब्राह्मण भोजन करायें। ऐसा करने से अश्वमेधादि के समान फल होता है और व्रत करने वाले को सूर्यलोक की प्राप्ति होती है।

2.1 धनसंक्रान्तिव्रत[2] का वर्णन

धनसंक्रान्तिव्रत में संक्रान्ति के समय मनुष्य अछिद्र (बिना छेद के) कलश में जल, फल, सर्वोषधि और दक्षिणा रखकर उसको अष्टदल पर स्थापित करके उसके मध्य में सुवर्णमय सूर्य का गन्धादि से पूजन कर एकभुक्त व्रत करे। चौबीस घण्टे में केवल मध्यान्ह के

---

1. ब्रह्मपुराण
2. स्कन्दपुराण

समय भोजन करने वाला एक भुक्त व्रती कहलाता है। इस प्रकार वर्षपर्यन्त करके उद्यापन करें तो धन से संयुक्त रहता है।

2.2 धान्यसंक्रान्ति[1]

धान्यसंक्रान्ति में मेषार्क के समय स्नान करके सूर्य का ध्यान करे–

करिष्यामि व्रतं देव त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः।
तदा विघ्नं न मे यातु तव देव प्रसादतः॥

इस श्लोक से संकल्प करके व्रत करें। तत्पश्चात् अष्टदल पर पूर्व में भास्कर, अग्निकोण में रवि, दक्षिण में विवस्वान्, नैर्ऋत्य में पूषा, पश्चिम में वरुण, वायव्य में दिवाकर, उत्तर में मार्तण्ड, ईशान में भानु और मध्य में विश्वात्मा देवताओं का नाम मन्त्रों से पूजन करें। इस प्रकार बारह महीने करने के बाद पूजन करके व्रत करें। बारह महीने करने के बाद पूजनसामग्री और 16 किलो अन्न सत्पात्र को दें तो धान्य की वृद्धि होती है। सत्पात्र को ही दान देने का विधान है।

2.3 भोगसंक्रान्ति[2] व्रत का वर्णन

भोगसंक्रान्ति में संक्रान्ति के समय सपत्नीक (पत्नी के साथ) ब्राह्मण को बुलाकर उत्तम पदार्थों का भोजन करावें। कुंकुम, कज्जल, कौस्तुभ, सिन्दूर, पान, पुष्पफल और तण्डुल देकर दोनों को दो–दो वस्त्र और अलग–अलग दक्षिणा दें तो यथारुचि भोग मिलते हैं।

2.4 रूपसंक्रान्ति[3]

रूपसंक्रान्तिव्रत में संक्रान्ति के समय तैलमर्दन के अनन्तर शुद्धस्नान करके सोने, चाँदी, ताँबे या पलाश के पात्र में घी और सोना रखकर उसमें अपने शरीर का छायावलोकन (अपनी छाया को या मुख को देखना) करें और ब्राह्मण को देकर व्रत करें तो रूप बढ़ता है।

---

1. स्कन्दपुराण।
2. स्कन्दपुराण।
3. मत्स्यपुराण।

2.5 तेज:संक्रान्ति व्रत[1] का वर्णन

तेज:संक्रान्तिव्रत में संक्रान्ति के पुण्यकाल में पूजित कलश को चावलों से भरकर उस पर घी का दीपक रखें और उसके समीप में मोदक रखकर, **'ममाखिलदोषप्रशमनपूर्वकतेजः प्राप्तिकामनयेदं पूर्णपात्रं गन्धपुष्पाद्यर्चितं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृजे।'** से जल छोड़कर सम्पूर्ण सामग्री ब्राह्मण को दें तो इससे तेज बढ़ता है। इन ब्राह्मण का नाम एवं गोत्र का वर्णन करना चाहिए।

2.6 आयु:संक्रान्ति व्रत[2] का वर्णन

आयु:संक्रान्ति व्रत में संक्रान्ति के समय काँसे के पात्र में यथासामर्थ्य घी, दूध और सुवर्ण रखकर गन्धादि से पूजन करके **क्षीरं च सुरभी जात पीयूषममलं घृतम्। आयुरारोग्यमैश्वर्यमतो देहि द्विजार्पितम्** से इसका दान करें तो तेज, आयु और आरोग्यता की वृद्धि होती है। घी एवं दूध सुरभी गाय का होना चाहिए।

2.7 मेषादिगत सूर्य व्रत[3] का वर्णन

मेषादि सूर्यव्रत में व्रती को चाहिए कि मेष संक्रान्ति में सूर्य रहे तब प्रत्येक रविवार को तीन बूँद 'गोबरजल' पीकर व्रत करें। इसी प्रकार वृष की संक्रान्ति में केवल तीन अञ्जलि जल; मिथुन की संक्रान्ति में तीन काली मिर्च, कर्क की संक्रान्ति में तीन मुट्ठी गोधूमसत्तू, सिंह में तीन बूँद गोश्रृङ्ग का धोया हुआ जल; कन्या राशि की संक्रान्ति में तीन पल अन्न; तुला राशि की संक्रान्ति में केवल प्राणायाम की वायु का भक्षण; वृश्चिक राशि की संक्रान्ति में तीन तुलसीदल, धनु राशि की संक्रान्ति में तीन पल गो घृत; मकर राशि की संक्रान्ति में तीन मुट्ठी तिल, कुम्भ राशि की संक्रान्ति में तीन पल गौ का दही और मीन राशि की संक्रान्ति में तीन पल गोदुग्ध पीकर उपवास करें तो सब प्रकार के अरिष्ट, कष्ट या व्याधियाँ दूर हो जाती हैं।

---

1. मत्स्यपुराण।
2. स्कन्दपुराण।
3. लक्ष्मीनारायणसंग्रह

3. अयनव्रतों का वर्णन[1]

एक संवत्सर यानी एक वर्ष में दो अयन होते हैं जिन्हें दक्षिणायन एवं उत्तरायण के रूप में जाना जाता है। कर्क राशि से धनु राशि पर्यन्त सूर्य दक्षिणायन एवं मकर राशि से मिथुन राशि पर्यन्त सूर्य उत्तरायण कहलाता है। अर्थात् श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष एवं पौष मास को दक्षिणायन एवं माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ मास को उत्तरायण कहा जा सकता है। अयन का संबंध संक्रान्ति से होने के कारण मासों में कुछ दिन आगे पीछे होकर अयन प्रारम्भ हो सकता है। इस प्रकार उत्तरायण एवं दक्षिणायन में विशिष्ट व्रतों या नियमों को अयन व्रतों के नाम से जाना जाता है। अयन में उत्तरायण दक्षिणायन से प्रशस्त माना गया है इसलिये उत्तरायण में किये जाने वाले कृत्य अधिक फलदायी माने गये हैं।

उत्तरायण की प्रवृत्ति के समय जो व्यक्ति गौ के दो सेर घृत से श्री विष्णु को स्नान कराता है वह सब पापों से मुक्त होकर विष्णुसायुज्य को प्राप्त करता है। इसमें पुरुषसूक्त का पाठ या विष्णु सहस्रनाम का पाठ करना अत्यन्त श्रेयष्कर माना गया है। रोग निवृत्ति हेतु सभी प्रकार के पापों का विनाश अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि रोगोत्पत्ति का कारण पाप को ही बतलाया गया है। कहा गया है–

रोगाः कर्मोद्भवाः केचित्केचिद्दोषसमुद्भवाः।
कर्मदोषोद्भवाः केचिदेवं रोगास्त्रिधाः स्मृताः॥[2]

अर्थात् रोग तीन प्रकार के होते हैं जिन्हें कर्मोद्भव, दोषोद्भव एवं

---

1. विष्णुधर्मोत्तर।
2. विष्णुधर्मोत्तर।

कर्मदोषोद्भव के रूप में जाना जाता है। जो रोग केवल धर्म कृत्य से ही उपशमित होते हैं उन्हें कर्मोद्भव रोग कहते हैं। जो रोग केवल औषधियों से उपशमित होते हैं उन्हें दोषोद्भव रोग कहते हैं तथा जो धर्म एवं औषधि दोनों से उपशमित होते हैं उन्हें कर्मदोषोद्भव रोग कहते हैं।

पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः ॥

उपरोक्त वचनानुसार पूर्व जन्म का पाप व्यक्ति को व्याधि रूप से बाधित करता है। उसकी शान्ति औषधियों से, दानों से, जपों से, हवन अर्चनादि से किया जा सकता है। इसीलिये असाध्य रोगों के उपशमनार्थ शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान भी प्रदत्त है। अतः व्यक्ति को यत्न करना चाहिये की उसके शरीर से पापकर्म न हो। यदि हो जाय तो उसका यथोचित उपशमन करना चाहिये।

उत्तरायण के समय[1] ब्राह्मण को दो सेर घी और सुपूजित घोड़ी दें तो सूर्यलोक की प्राप्ति होती है।

1. भविष्योत्तर।

4. पक्ष व्रतों का वर्णन

जिसका देव और पितृकार्यों के लिए पृथक्-पृथक् परिग्रहण किया जाय उस (कालविशेष) को पक्ष कहते हैं अथवा जिसमें चन्द्रमा की कलाएँ बढ़े अथवा क्षीण हों उसे पक्ष कहते हैं। ऐसे दो पक्ष 'शुक्ल' और 'कृष्ण' अथवा पूर्व और पर नाम से प्रसिद्ध है। ये दोनों पक्ष धर्मशास्त्र के अनुसार 'देव' निमित्त के जप, ध्यान, उपासना, होम, यज्ञ, प्रतिष्ठा अथवा सौभाग्य-वृद्धि के सदनुष्ठान आदि में और 'पितृ' निमित्त के श्राद्ध, तर्पण, हन्तकार या महालयादि के कार्यों में प्रयुक्त किये जाते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार सब प्रकार के शुभकार्य–यथा आभ्युदयिक श्राद्ध या माङ्गलिक महोत्सव और 'अशुभ' कार्य–यथा मृत मनुष्य तथा अज्ञात मृत्यु के अन्त्येष्टिकर्मादि या तन्निमित्तक तीर्थश्राद्ध अथवा गया यात्रा आदि कार्यों में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

पक्षव्रत[1] शुक्ल प्रतिपदा को आरम्भ करके पूर्णिमा पर्यन्त प्रतिदिन किया जाता है। उसमें प्रातः स्नानादि के अनन्तर सुवर्णमय सूर्य का पञ्चोपचार पूजा करके अञ्जलि में गन्ध, अक्षत, पुष्प और जल लेकर–

ऐहि सूर्य सहस्त्रांशों तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां देव गृहाणार्ध्य दिवाकर॥

से तीन बार अर्घ्य दें और मध्याह्न में हविष्यान्न का एक बार भोजन करें। कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से आरम्भ करके आमावास्यापर्यन्त प्रतिदिन प्रात:स्नानादि के पश्चात् चाँदी के बने हुए चन्द्रमा का पञ्चोपचार पूजन करें और अञ्जलि में यथापूर्व पुष्पादि लेकर **'सोमप्रकाशकाय सूर्याय एषोऽर्धः'** से अर्घ्य देकर–

---

1. मुक्तक संग्रह

आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने।
जन्मान्तरसहस्त्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते॥

से नमस्कार करें तो आयु, आरोग्य और सौभाग्य की वृद्धि होती है और ऋण हो तो वह उतर जाता है। यह प्रतिदिन किया जा सकता है।

5. रोगनिवारक व्रतों का वर्णन

सप्ताह में सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, भृगु और शनि – ये सात वार यथाक्रम से जाने जाते हैं और ये वार एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक रहते हैं। तिथ्यादि की क्षय–वृद्धि अथवा उनके मान का न्यूनाधिक्य होता है, उनके अधिष्ठाता सूर्यादि सातग्रह आकाश में प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। उनमें से सूर्य निरञ्जन निराकार ज्योतिःस्वरूप परमात्मा की प्रत्यक्ष प्रतिमूर्ति है और चन्द्रादि छः ग्रहों तथा अन्य सभी तारागणों को प्रकाशित करते हैं। इसी कारण शास्त्रकारों ने ग्रह–नक्षत्रादि सभी में परमेश्वर का अंश होना बतलाया है और इस कारण उनके निमित्त से जप, दान, प्रतिष्ठा, पूजा और व्रत आदि के विधान नियत किये हैं। अन्य देवी–देवताओं के व्रतों की भाँति सुख–सौभाग्यादि की उपलब्धि के हेतु से तो वारों के व्रत करते ही हैं, साथ ही जन्मलग्न, वर्षलग्न, मासलग्न, उनकी दशा–विदशा, अन्तर–प्रत्यन्तर और गोचराष्टक वर्गादि में कोई ग्रह अनिष्टकारी हो तो उसकी शान्ति के लिये भी व्रत किये जाते हैं। इसी विचार से यहाँ वारों के व्रत लिखे गये हैं। धर्मशास्त्रों ने जिस प्रकार ग्रहों में ईश्वर का अंश निर्धारित किया है उसी प्रकार सुवर्ण में भी ईश्वर का अंश सूचित किया है। इस कारण व्रतादि देवपूजा में सुवर्ण की मूर्ति स्थापित की जाती है। रस–शास्त्र में चाँदी को सुवर्ण के रूप में परिणत करने के विधान और ताँबा को सुवर्ण का सहयोगी कहा है, इस कारण सोने के अभाव में चाँदी और चाँदी के अभाव में ताँबा काम में लाया जाता है।

5.1 दाद, कोढ़, नेत्रपीड़ा और दीर्घ रोग विनाशक व्रत[1]

वारों के व्रतों का आरम्भ विशेषकर वैशाख, मार्गशीर्ष या माघ में

---

1. व्रतरत्नाकर

होता है। अतः मार्गशीर्ष शुक्ल के पहले रविवार को प्रातः स्नानादि करने के अनन्तर **'मम जन्म–वर्ष–मास–दिन–होरा–अष्टकवर्ग–दशा–विदशा–सूक्ष्म–दशादिषु येऽनिष्ट फलकारकास्तज्जनित जनिष्यमाण अखिलारिष्टादि अनिष्ट झटिति प्रशमन पूर्वक दीर्घायुर्बल-पुष्टि नैरुज्यादि सकल शुभफल–प्राप्त्यर्थं श्री सूर्यनारायण-प्रीति-कामनयाद्यारभ्य यावद्वर्षपर्यन्तं रविवासरे रविवारव्रतं करिष्ये।** यह संकल्प करके सुवर्णनिर्मित सूर्य मूर्ति का गन्ध पुष्पादि से पूजन करें और मध्याह्न में अलवण यानी नमक से रहित पदार्थों का एकभुक्त भोजन करें। इस प्रकार वर्ष पर्यन्त करके उद्यापन करें तो दाद, कोढ़, नेत्रपीड़ा और दीर्घरोग दूर होते हैं और आरोग्यता बढ़ती है। यह केवल रविवार को किया जाने वाला व्रत है।

5.2 अखण्ड सुख प्रदाता व्रत[1]

यह व्रत चैत्र, वैशाख, श्रावण, कार्तिक और मार्गशीर्ष मास में किया जाता है। विशेषकर श्रावण से व्रत का अधिक प्रचार है। व्रती को चाहिये कि सोमवार के दिन प्रातः स्नान करके **मम क्षेमस्थैर्यविजयारोग्यै–श्वर्याभिवृद्ध्यर्थं सोमव्रतं करिष्ये।** यह संकल्प करके–

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं।
रत्नाकपोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं।
विश्वाद्यं विश्वन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।।

से ध्यान करें। फिर **ॐ नमः शिवाय** से शिवजी का और **ॐ नमः शिवायै** से पार्वतीजी का षोडशोपचार पूजन करके समीप के किसी पुष्पोद्यान यानी फूल के बागीचे में जाकर एक भुक्त भोजन करें। इस प्रकार 14 वर्ष तक व्रत करके फिर उद्यापन करें तो उससे पुरुषों को स्त्री–पुत्रादि का और स्त्रियों को पति–पुत्रादि का अखण्ड सुख मिलता है। प्राचीनकाल में विचित्र वर्मा की पुत्री सीमन्तिनी का पति नल पुत्र चित्रांगद नाव के उलट जाने से जल में डूबकर नागलोक में चला गया

1. स्कन्दपुराण।

था। वह इसी व्रत के प्रभाव से वापस आकर विचित्रवर्मा का उत्तराधिकारी हुआ और बहुत वर्षों तक राज्य करके स्वर्ग में गया।

5.3 सम्पूर्ण कार्य सिद्धदायक व्रत[1]

जिस दिन व्रत करने की श्रद्धा हो, उस दिन सब सामग्री जुटाकर, स्नान करके, सफेद वस्त्र धारण कर काम क्रोधादि का त्याग करें और सुगन्धयुक्त श्वेत पुष्प लाकर मलयनाथ का पूजन कर नैवेद्य में अभिष्ट अन्न के पदार्थ अर्पण करें।

ॐ नमो दशभुजाय त्रिनेत्राय पञ्चवदनाय शूलिने।
श्वेतवृषभारूढाय सर्वाभरणभूषिताय।
उमादेहार्धर्धस्थाय नमस्ते सर्वमूर्तये।

इन मन्त्रों से पूजा करें और इन्हीं से हवन करें। ऐसा करने से सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं। ग्रहणादि में जप-ध्यान, उपासना और दान आदि सत्कार्यों से जो फल मिलता है, वही इस सोमवार के व्रत से मिलता है। पौष में अग्निष्टोम यज्ञ के समान, माघ में गो दुग्ध और इक्षुरस से स्नान करके ब्रह्महत्यादि से निवृत्त होने के समान, फाल्गुन में सूर्यादि के ग्रहणों में गोदान करने के समान, चैत्र में गङ्गाजल से सोमनाथ को स्नान कराने के समान, वैशाख में अपूपादि से पूजन कर कन्यादान करने के समान, ज्येष्ठा में पुष्कर स्नान करके गोदान करने के समान, आषाढ़ में वृहत् यज्ञों के समान, आश्विन में सूर्योपराग के समान, कुरुक्षेत्र में रसधेनु और कार्तिक में चारों वेदों के पढ़े हुए चार पण्डितों को चार-चार घोड़े जुते हुए रथ देने के समान फल होता है। भाव यह है कि किसी भी महीने में सोमवार का व्रत किया जाय तो वह निष्फल नहीं होता।

5.4 शिव सायुज्य व्रत

श्रावण मास के सोमवार में केदारनाथ जाकर उनका अनेक प्रकार के गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यादि उपचारों से पूजन करें और शक्ति

1. स्कन्दपुराण।

हो तो निराहार उपवास करें। शक्ति न हो तो नक्तव्रत (रात्रि में एक बार भोजन) करें। इससे शिवजी प्रसन्न होते हैं और शिवसायुज्य[1] प्रदान करते हैं।

5.5 भौमजनित सर्वदोष विनाशक व्रत

भौमवार[2] के दिन स्वाति नक्षत्र हो तो उस दिन प्रातः स्नानादि करके मंगल की मूर्त्ति का लाल पुष्पों से पूजन करें, लाल वस्त्र से आच्छादित करें। गुड़, घी और गोधूम का नैवेद्य भोग लगावें। नक्तव्रत (केवल सायं में एक बार भोजन) करें और भूशयन करें। इस प्रकार छः भौमवार करके सातवें भौम वार को सुवर्णमयी मूर्ति का पूजन करें। दो लाल वस्त्रों से आच्छादित करें। लाल गन्ध का लेपन करें। धूप, पुष्प, अक्षत और दीपक रखें तथा सफेद कंसार का भोग लगाये। घी, चीनी और तिलों का **'ॐ कुजाय नमः स्वाहा'** से हवन करें। पूजन के पश्चात् ब्राह्मण को भोजन कराकर मूर्ति आदि उसको दें तो भौम जनित सब दोष शान्त होते हैं और अनेक प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है। इससे सभी प्रकार के भौम जनित कष्टों का निवारण होता है।

5.6 परम सुखदाता व्रत

मङ्गलवार[3] के दिन सुवर्णमय भौम को ताम्र पात्र में स्थापन करके पूजन करें। ताँबे के पात्र को गुड़ से भरकर प्रत्येक मङ्गलवार को दान करते रहें और वर्ष की समाप्ति में यथाविधि गोदान करें तो परम सुख की प्राप्ति होती है। तांबा एवं गुड़ दोनों भौम के लिए प्रयुक्त किया गया है।

5.7 ऋणमुक्तिदाता व्रत

मङ्गलवार[4] के दिन प्रातः स्नानादि करके ताँबे के त्रिकोण पत्र में

---

1. शिवरहस्य।
2. मित्रोदय
3. भविष्यपुराण।
4. पद्मपुराण।

केशर, चन्दन या लाल चन्दन से मध्य में भौमाकृति का प्रतिबिम्ब बनाकर तीनों कोणों में आर, वक्र और भूमिज–ये तीनों नाम लिखें। फिर उनका लाल वर्ण के गन्ध, पुष्प और नाना कमल आदि से पूजन करें। रक्तधान्य (गेहूँ आदि) के बने हुए पदार्थों के बने नैवेद्य अर्पण करें और

प्रसीद देवदेवेश विघ्नहर्तृधनप्रद।
गृहणार्ध्यं मया दत्तं मम शान्ति प्रयच्छ हे॥

से अर्घ्य देकर व्रत करें एवं

मङ्गलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्ता धनप्रदः।
स्थिरासनो महाकायः सर्वकामार्थसाधकः॥

लोहितो लोहिताक्षश्च सामगानां कृपाकरः।
धरात्मजः कुजो भौमो भूमिजो भूमिनन्दनः॥

अङ्गारको यमश्चैव सर्वरोगापहारकः।
वृष्टिकर्तापहर्त्ता च सर्वकामफलप्रदः॥

इन 21 नामों का पाठ करें तो कर्त्ता सब प्रकार के ऋणों से उऋण होकर धनवान् होता है। ऋण के निवारण हेतु भौम संबंधी अनुष्ठान करना उत्तम माना गया है।

5.8 आपदा विनाशक व्रत

मङ्गलवार के दिन लाल अक्षतों के अष्टदल पर सुवर्णमय भौम की मूर्ति स्थापित करके लाल रंग के गन्ध, पुष्पादि से पूजन करें और

भूमिपुत्रा महातेजाः कुमारो रक्तवस्त्रकः।
गृहाणार्ध्यं मया दत्तमृणशान्तिं प्रयच्छ मे॥

से अर्घ्य दें तथा पूजन के स्थान में चार बत्तियों का दीपक जलावें। ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनको यथाशक्ति सुवर्ण का दान करें और स्वयं किसी एक पदार्थ का भोजन करके एक भुक्त व्रत करें तथा वायन में लाल बैल का दान करें। इस प्रकार इक्कीस व्रत करके उद्यापन करने से सब प्रकार की आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं और जीवन पर्यन्त पुत्र, पौत्र, धनादि से युक्त रहकर अन्त में सूर्यादि के लोक में वह व्रतकर्त्ता चला

जाता है। (अधिकांश मनुष्य मङ्गलवार के दिन किसी भी पदार्थ का भोजन न करके इस व्रत को सम्पन्न करते हैं।)

5.9 बुद्धिवर्धकव्रत[1]

आरम्भ के व्रत में विशाखायुक्त बुधवार को प्रातः स्नानादि करके सुगन्ध युक्त गन्ध, पुष्प आदि से पूजन करें। दो सफेद वस्त्र धारण करें। गुड़, दही और भात का नैवेद्य अर्पण करके उसी पदार्थ का ब्राह्मणों को भोजन करावें और

बुध त्वं बुद्धिजनको बोधदः सर्वदा नृणाम्।
तत्त्वावबोधं कुरुषे सोमपुत्र नमो नमः॥

से बुध की प्रार्थना करें। इस प्रकार सात व्रत करने से बुध जनित सम्पूर्ण दोष दूर होकर सुख शान्ति मिलती है और बुद्धि बढ़ती है। बुद्धि का देवता बुध को माना गया है।

5.10 मेधावर्धक ग्रहणव्रत[2]

दिन के पूर्व भाग में होने वाले ग्रहण के पहले दिन प्रातः स्नान आदि करके अनन्तर सद्वैद्य की सम्मति के अनुसार ब्राह्मी का सेवन करके व्रत करें। उसके दूसरे दिन ग्रहण के समय सोने की शलाका या कुशा के मूल अथवा दूर्वा के अङ्कुरों से जीभ पर छोटी मक्खियों के शहद से 'ऐं' लिखें और इसी का जप करें। तदनन्तर अग्निस्थापन करके गाय के घी की 8, 28 या 108 आहुतियाँ देकर गाय के दूध की खीर में हवन से बचा हुआ घी मिला दें और **'ॐ प्राणाय स्वाहा- 'ॐ अपानाय स्वाहा- 'ॐ व्यानाय स्वाहा' 'ॐ उदानाय स्वाहा'** और **'ॐ समानाय स्वाहा'**इन पाँचों मन्त्रों से एक-एक करके पाँच-पाँच प्राणाहुतियाँ देकर (अर्थात् पाँच ग्रास भक्षण करके) व्रत करें तो इससे छोटी अवस्था के छात्रों की बुद्धि विकसित होती है और उनका शास्त्र ज्ञान बढ़ता है। मेधा से ही विवेक विकसित होता है।

---

1. भविष्योत्तर।
2. प्रयाग-बैभव

5.11 गुरु ग्रह शान्ति व्रत[1]

किसी महीने के शुक्ल पक्ष के दिन अनुराधा और गुरुवार हो उस दिन बृहस्पति की सुवर्ण निर्मित मूर्ति को सोने के पात्र में स्थापित करके पीतवर्ण के गन्ध, पुष्प, पीताम्बर और अक्षतादि से पूजन करें। छत्र, उपानह, पादुका और कमण्डलु अर्पण करें। फिर पीत रंग के फल, पुष्प और यज्ञोपवीत ग्रहण करके–

धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ज्ञानविज्ञानपारग।
विविधार्तिहराचिन्त्य देवाचार्य नमोऽस्तु ते॥

से प्रार्थना करके ब्राह्मणों को पीली गौ के घी में बनाये हुए पीतधान्य (चने) के पदार्थों का भोजन करावें, सुवर्ण की दक्षिणा दें और फिर स्वयं भोजन करें। इस प्रकार सात व्रत करने से गुरु ग्रह से उत्पन्न होने वाला अनिष्ट नष्ट होकर स्थायी सुख मिलता है। विष्णु-सहस्त्रनाम स्तोत्र का पाठ भी गुरु के लिये उत्तम है।

5.12 शुक्र (वीर्य) व्याधि निवारक व्रत[2]

(क)

शुक्रवार और ज्येष्ठा नक्षत्र के योग में सुवर्ण निर्मित शुक्र की मूर्ति को चाँदी के या काँसे के पात्र में स्थापित करके सुश्वेत गन्धपुष्पादि से पूजन करें। दो सफेद वस्त्र धारण करावें और

'भार्गवो भृगुशिष्यो वा श्रुतिस्मृतिविशारदः।
हत्वा ग्रहकृतान् दोषानायुरारोग्यदो भव॥'

से प्रार्थना करके नक्तव्रत (रात्रि-भोजन) करें। इस प्रकार सात शुक्रवारों का व्रत करके शुक्र के नाम मन्त्र **ॐ शुं शुक्राय नमः** से हवन करें। ब्राह्मणों को खीर का भोजन कराकर मूर्ति सहित पूजन-सामग्री का दान करें और नक्तव्रत करके उसे समाप्त करें तो शुक्रजनित सम्पूर्ण व्याधियाँ शान्त होकर सब प्रकार का सुख मिलता है। वीर्य का देवता शुक्र को माना गया है।

1. भविष्यपुराण।
2. भविष्योत्तर पुराण।

(ख)

चतुर्दशी, भृगुवार और श्रवण हो या अष्टमी और पुनर्वसु हो तो शिव पूजन करके 'शुक्रव्रत' के निमित्त शहद का प्राशन करें तो महाफल मिले। शुक्र की प्रसन्नता से सुख की भी प्राप्ति होती है।

5.13 सकलारिष्टविनाशक व्रत[1]

शनिवार को लोहमयी कृष्ण शनि मूर्ति[2] की कृष्ण[3] राहु[4] और केतु की तीन मूर्तियाँ बनवायें। उनमें कृष्ण वर्ण, कृष्ण वस्त्र, दो भुजाओं में दण्ड और अक्षमाला, कृष्ण वर्ण के आठ घोड़ों वाले शीशे के रथ में बैठे हुए शनि[5], करालवदन, खड्ग, चर्म और शूल से युक्त, नील सिंहासन में विराजमान, वरप्रद राहु[6] और धूम्रवर्ण, भुजदण्डों में गदादि आयुध, गृधासन पर विराजे हुए विकटानन और वरप्रद 'केतु'[7] की मूर्ति हो। ऐसी न हो तो गोलकाकार बनवायें। फिर उनको कृष्ण वर्ण के अक्षतों से बनाये हुए चौबीस दल के कमल पर मध्य में शनि, दक्षिण भाग में राहु और वाम भाग में केतु को स्थापित करें तथा कृष्ण वर्ण के गन्ध-पुष्पादि से पूजन करें। रक्त चन्दन में केशर मिलाकर 'कृष्ण अक्षत', काकमाची (कागलहर) कृष्ण पुष्प', कस्तूरी आदि का 'कृष्णरंग धूप' और तिलविशिष्ट पदार्थों का 'कृष्ण नैवेद्य' सम्पन्न करके अर्पण करें एवं

---

1. भविष्योत्तर पुराण।
2. मत्यस्यपुराण भविष्यपुराण।
3. शनैश्चरं राहु केतु लोहपात्रे व्यवस्थितान्।
4. कृष्णवासस्तथा कृष्णः शनिः कार्यः शिरातलः।
   कृष्ण गुरुः स्मृतो धूपो दक्षिणा चात्मशक्तितः (भविष्योत्तर पुराण)
5. दण्डाक्षमालासंयुक्तः करद्वितयभूषणः।
   कार्ष्णायसे रथे कार्यस्तथैवाष्टमतुरंग मे।। (भविष्योत्तर)
6. करालवदनः खड्गचर्मशुली वरप्रदः।
   नीलसिंहासनयुतो राहुरत्र प्रशस्यते।। (मत्स्यपुराण)
7. धूम्रादिबाहवः सर्वे पदिनो विकटाननाः।
   गृधासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः।। (मत्स्यपुराण)

शनैश्चर नमस्तुभ्यं नमस्ते त्वथ राहवे।
केतवेऽथ नमस्तुभ्यं सर्वशान्तिप्रदो भव॥

से प्रार्थना करके व्रत करें। इस प्रकार सात शनिवारों का व्रत करके शनि के निमित्त **'शन्नोदेवी'** मन्त्र से शमी की समिधाओं से राहु के निमित्त **'कयानश्चि'** मन्त्र से दूर्वा की समिधाओं से और केतु के निमित्त **'केतुकृण्वन्न'** मन्त्र से कुश की समिधाओं से कृष्ण गौ के घी और काले तिलों की प्रत्येक की 108 आहुति देकर हवन करें। उसके बाद यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराकर व्रत का विसर्जन करें तो सब प्रकार के अरिष्ट कष्ट या आधि-व्याधियों का सर्वथा नाश होता है और अनेक प्रकार के सुख साधन एवं पुत्र पौत्रादि का सुख प्राप्त होता है।

5.14 शनिराहुकेतुकृतदोष विनाशक व्रत[1]

श्रावण के महीने में श्रेष्ठ शनिवार के दिन लोहनिर्मित शनि को पञ्चामृत से स्नान कराकर अनेक प्रकार के गन्ध, पुष्प, अष्टाङ्ग धूप, फल और उत्तम प्रकार के नैवेद्य आदि उपचारों से पूजन करें तथा **कोणस्थः**[2] **'पिङ्गलो'** आदि शनि, राहु एवं केतु के दस नामों का उच्चारण करके पहले शनिवार को उड़द का भात और दही, दूसरे को केवल खीर, तीसरे को अपूप और चौथे को घृतपक्व पूरियों का नैवेद्य अर्पण करें और तिल, यव (जौ), उड़द, गुड़, लौह और नीले वस्त्रों का दान करके व्रत का विसर्जन करें तो शनि, राहु और केतु कृत दोष दूर होते हैं।

5.15 पुत्रादिसहितारोग्य व्रत[3]

चतुर्दशी रविवार और रेवती हो या अष्टमी और मघा हो तो 'रविव्रत' करके अनेक प्रकार के गन्ध पुष्पादि से शिवजी का पूजन कर

---

1. मदनरत्न।
2. मदनरत्न।
3. कालोत्तरागम।

तिलों का प्राशन करें तो पुत्रादिसहित आरोग्य रहे। आरोग्य हेतु रविवार का विशेष महत्त्व बतलाया गया है।

5.16 सर्वाभीष्टदाताव्रत

अष्टमी, सोमवार और रोहिणी हो तो शिवपूजन करके घी–खीर का भोजन कर सोम व्रत करें तो सम्पूर्ण कामों में सफलता मिले।

5.17 साम्राज्यदाता व्रत

चतुर्दशी, मङ्गलवार और भरणी हो तो शिवजी का पञ्चोपचार पूजन करके रक्तोत्पल (लाल कमल) का प्राशन कर 'भौम' व्रत करें तो साम्राज्य मिले। इच्छित फल बिनु शिव अवराधे कहकर श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसी दास जी ने स्पष्ट किया है कि इच्छानुसार फल बिना शिव जी की आराधना के नहीं मिल सकता।

5.18 धनपुत्रदारापशुवृद्धिव्रत

(क)

चतुर्दशी बुधवार और रोहिणी हो या बुधाष्टमी हो तो महाभिषेक से शिवपूजन करके घी-खीर का भोजन कर 'बुध' व्रत करें तो धन, पुत्र, दारा (स्त्री) और पशुओं की वृद्धि होती है। अभिषेक के लिए चारो वेदों में मन्त्र किये गये हैं। अपनी शाखा के अनुसार उनका प्रयोग किया जा सकता है।

(ख)

लोकहित[1] अथवा आत्मोद्धार के निमित्त से अश्विनी आदि नक्षत्रों का या तदधिष्ठातृ अश्विनी कुमारादि देवों का व्रत करना हो तो–

1–अश्विनी में अश्विनी कुमारों का,

2–भरणी में यम का,

---

1. भविष्यपुराण।

3-कृत्तिका में अग्नि का,

4-रोहिणी में ब्रह्मा का,

5-मृगशिरा में चन्द्रमा का,

6-आर्द्रा में शिव का,

7-पुनर्वसु में अदिति (देवताओं की माता) का,

8-पुष्य में बृहस्पति का,

9-श्लेषा में सर्प का,

10-मघा में पितरों का,

11-पूर्वाफाल्गुनी में भग का,

12-उत्तराफाल्गुनी में अर्यमा का,

13-हस्त में सूर्य का,

14-चित्रा में त्वष्टा का,

15-स्वाति में वायु का,

16-विशाखा में इन्द्र और अग्नि का,

17-अनुराधा में मित्र का,

18-ज्येष्ठा में इन्द्र का,

19-मूल में राक्षसों का,

20-पूर्वाषाढा में जल का,

21-उत्तराषाढा में विश्वेदेवों का,

22-अभिजित में ब्रह्मा का,

23-श्रवण में विष्णु का,

24-धनिष्ठा में वसु का,

25–शतभिषा में वरुण का,

26–पूर्वाभाद्रपदा में अजैकपाद का,

27–उत्तराभाद्र पदा में अहिर्बुध्न्य का और

28–रेवती में पूषा का

उत्तम प्रकार के गन्ध, पुष्प, फल, भक्ष्य, भोज्य और दूध, दही आदि से पूजन करें एवं एकभुक्त या नक्तव्रत करें तो धन, दारा, सुत, सम्मान, आरोग्यता और आयु वृद्धि आदि सुख प्राप्त होते हैं। इसमें नक्षत्रों के आगे दिये गये नाम के ही देवता उन नक्षत्रों के देवता बतलाये गये है।

5.19 वागीशत्वप्राप्ति व्रत

चतुर्दशी गुरुवार और रेवती हो या अष्टमी या पुष्य हो तो शिव का पूजन करके गो घृत के योग से ब्राह्मी रस का प्राशन करें तो वागीशत्व की प्राप्ति हो। वाचा शक्ति को पुष्ट करने का यह प्रबल उपाय है।

5.20 सर्वोत्तम फल प्राप्ति व्रत

चतुर्दशी, शनिवार[1] को भरणी या आर्द्रा और अष्टमी हो तो पूर्वोक्तप्रकार से शिवपूजन करके 'शनिव्रत' के निमित्त शस्य (अन्न) का भोजन करें तो सर्वोत्तम फल की प्राप्ति हो। सूर्यादि में जो अनिष्टकारी हो या जिनका व्रत अभीष्ट हो उपर्युक्त प्रकार के योग में उनका व्रत करें और सोना, चाँदी, मूँगा, मोती, शङ्ख और लोहा–इनको यथोचित प्रकार से यथाविधि धारण करें। देवज्ञ से अपेक्षित राय लेकर योग्य कार्य सम्पन्न करना चाहिए।

5.21 शान्ति एवं उपलब्धि दायक व्रत[2]

तिथि, वार और नक्षत्रों के साथ विष्कुम्भादि का सहयोग होने से विशेष प्रकार के शुभाशुभ प्राप्त होते हैं। इनकी शान्ति और उपलब्धि के

---

1. वाराहपुराण
2. हेमाद्रि।

लिये योगों के व्रत और दान आवश्यक होते हैं। व्रती को चाहिये कि अभीष्ट योग के दिन साक्षात् सूर्य का अथवा सुवर्ण निर्मित सूर्य मूर्ति का पञ्चोपचार से पूजन करके व्रत करें और अभीष्ट योग के पदार्थों का दान करें।

पदार्थ ये हैं– विष्कुम्भ में घी, प्रीति में तैल, आयुष्मान में गेहूँ, सुकर्मा में चने, धृति में निष्पाव (हलुवा), शूल में शालि (चावल), गण्ड में लवण, वृद्धि में दही, ध्रुव में दूध, व्याघात में वस्त्र, हर्षण में सुवर्ण, वज्र में कम्बल, सिद्धि में गौ, व्यतीपात में वृष, वरीयान् में क्षेत्र, परिघ में दो उपानह (जूते), शिव में कपूर, सिद्धि में कुंकुम, साध्य में चन्दन, शुभ में पुष्प, शुक्ल में लौह, ब्रह्म में ताँबा, ऐन्द्र में काँसा और वैधृति में चाँदी दें तो यथोचित फल होता है।

5.22 तीर्थादि के समान फल प्रदाता व्रत[1]

पूर्व की पंक्ति में योगों का नाम आया है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा के गणित से व्यतिपात का आरम्भ और समाप्ति होती है। पुराणों में इसकी उत्पत्ति सूर्य और चन्द्रमा के क्रोधपात से प्रकट की गयी है। लिखा है कि एक बार सूर्य नारायण ने चन्द्रमा को गुरुपत्नि (तारा) के त्याग की आज्ञा दी, उसको शशि ने स्वीकार नहीं किया। इस कारण दोनों में परस्पर क्रोध बढ़ गया और उसके संतप्त अश्रु पृथ्वी पर गिर गये। उनसे व्यतिपात उत्पन्न हुआ। यही कारण है कि क्रोधपात से उत्पन्न होने के कारण विवाहादि शुभ कार्यों में इसका त्याग किया गया है और लोकोपकार एवं आत्मोद्धार के दान-पुण्य और व्रतादि में ग्रहण किया गया है। व्रती को चाहिये कि किसी शुभ दिन के व्यतीपात को प्रातः स्नानादि से निवृत्त होकर **'मम करिष्यमाण उपवासजनित अनन्त फल प्राप्ति कामनया सवितृ प्रीतये व्यतीपात व्रतं करिष्ये।'**– यह संकल्प करके सुवर्ण के सूर्य और चन्द्रमा को शक्कर से भरे हुए कलश

---

1. हेमाद्रि।

के शीर्षस्थानीय पूर्ण पात्र में स्थापित करें और आवाहनादि उपचारों से पूजन करके उपवास करें। दूसरे दिन पारण करके प्रथमावृत्ति समाप्त करें। इस प्रकार बारह महीने तक प्रत्येक व्यतीपात का व्रत करके तेरहवीं आवृत्ति के दिन उद्यापन करें। उसमें सर्वतोभद्र-मण्डल पर सुवर्णमय विष्णु का पूजन, तिलादि का हवन, गौ, शय्या, सुवर्ण, अन्न, धन, आभूषण और यथोचित वस्त्र आदि दान करके खीर, आदि पदार्थों से ब्राह्मणों को भोजन कराकर यथासामार्थ्य दक्षिणा देकर व्रत को समाप्त करें एवं बन्धुवर्गादि को साथ लेकर भोजन करें तो गङ्गादि तीर्थों, कुरुक्षेत्रादि सुक्षेत्रों और अयोध्या आदि पुरियों में ग्रहण संक्रान्ति, मलमास और पञ्चाङ्गजनित सुयोगों के समय दान, जप और व्रतादि करने से जो फल होता है उससे अनेक गुना अधिक फल व्यतिपात के व्रतादि से होता है। इसकी कथा का सार यह है कि प्राचीन काल में हर्यश्व राजा ने बहुत दिनों तक उक्त व्रत किया था। एक बार उसने शिकार के प्रयोजन से गहन वन में जाकर जले हुए अङ्ग वाले एक शूकर से पूछा कि तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? तब उसने कहा कि पूर्व जन्म में मैं पुराणादि धर्मशास्त्रों को सुनाने वाला महाधी वैश्य था। परन्तु किसी को कुछ देता न था। ऐसी अवस्था में एक आशार्थी ब्राह्मण ने मुझसे याचना की तो मैंने उसे कुछ भी नहीं दिया, तब उसने कहा कि तुमने मेरी आशाओं को जलाया है, इस कारण आगे तुम्हारे भी ये अङ्ग जल जायेंगे। इसी कारण मेरी यह दशा हुई है। अब यदि आप अपने किये हुए व्यतीपात के व्रतों का फल मुझे दे दें तो मैं अपनी पूर्व अवस्था को प्राप्त कर सकता हूँ। तब राजा ने वैसा ही किया और शूकर यथापूर्व होकर सुख भोगने लगा। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि व्रत फल का आदान-प्रदान सम्भव हो सकता है।

5.23 यज्ञ समान फल प्रदाता व्रत[1]

माघ महीने के शुक्ल में जिस दिन बव करण हो, उस दिन

---

1. भविष्योत्तरपुराण।

उपवास करके ताँबे के पात्र में तण्डुल भरकर उन पर कलश स्थापन करें और उसके पूर्णपात्र में सुवर्ण की बनी हुई अच्युत भगवान् की मूर्ति रखकर उसका सन्ध्यादि उपचारों से पूजन करें और अष्टाक्षर **'ॐ नमो नारायणाय'** मन्त्र का जाप करें। इस प्रकार छः बार करके सातवें में उद्यापन करें। उसमें सात ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा दें और इसी प्रकार बालव आदि शेष करणों के व्रत करें तो यज्ञ के समान फल होता है।

5.24 भूतप्रेतादि–भवविनाशकव्रत[1]

सम्पूर्ण करणों में ग्यारहवाँ करण भद्रा है। इसमें प्रायः सभी प्रकार के मङ्गल और महोत्सवादि न तो आरम्भ होते हैं और न समाप्त। यदि प्रमादवश किये जायें तो उनमें बड़े विघ्न होते हैं और वे दुखदायी बन जाते हैं। पुराणों में भद्रा को मार्तण्ड (सूर्य) की पुत्री और शनि की बहन नियत किया है और सब प्रकार के माङ्गलिक या अभ्युदायकारी कार्यों में इसकी उपस्थिति निषिद्ध बतलायी है। विशेषता यह है कि इसके निमित्त से जो व्रत, दान या जपादि किये जाते हैं उनका उत्तम फल होता है। व्रती को चाहिये कि जिस दिन उदय की भद्रा हो उस दिन नदी, तालाब या गृहमध्य में सर्वोषधि से स्नान करके देवताओं का पूजन कर पितरों का श्राद्ध (मातृका पूजन और आभ्युदयिक श्राद्ध) करें। तत्पश्चात् भीगी हुई कुशा (डाभ) की त्रिकोण (या तीन ग्रन्थि) युक्त भद्रा बनाकर उसको अक्षतों के अष्टदल पर विराजमान कर ऋतुकाल के गन्ध, पुष्प, फल, धूप, दीप और तिलयुक्त खीर के नैवेद्य आदि से पूजन करके

छायासूर्यसुते देवि विष्टे इष्टार्थनाशिनि।
पूजितासि मया शक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव॥

से प्रार्थना करें। फिर भी, तिल और शर्करा से ॐ भद्रं कर्णेभिः या **'ॐ भद्राय नमः'**– इन मन्त्रों से 108 आहुति देकर ब्राह्मणों को तिल और खीर का भोजन कराकर दक्षिणा दें और स्वयं तेल और

---

1. भविष्योत्तरपुरण।

खिचड़ी का एक भुक्त भोजन करें। इस प्रकार सात या दस बार क्रमशः करके उद्यापन करें तो व्रती को भूत-प्रेत-पिशाचादि से कोई भय नहीं हो और न अन्य प्रकार की रोग पीड़ा या भय चिन्ता आदि की बाधा हो।

5.25 सर्वव्याधिविनाशक व्रत[1]

मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थी को प्रातः स्नानादि के अनन्तर–

भद्रे भद्राय भद्रं हि करिष्ये व्रतमेव ते।
निर्विघ्नं कुरु मे देवि कार्यसिद्धिं च भावय॥

यह संकल्प करके विद्वान् ब्राह्मण का पूजन करें। साथ ही लौह, पाषाण या काष्ठ की भद्रा बनवाकर उसे अष्टदल के आसन पर प्रतिष्ठित करें और पूर्वोक्त प्रकार से पूजन, हवन, ब्राह्मण भोजन तथा दान आदि करके व्रत करें। इस प्रकार वर्ष पर्यन्त करने के पश्चात् उद्यापन करके विसर्जन करें। इस अवसर में–

'अज्ञानादथवा दर्पात् त्वामुल्लङ्घ्य कृतं यत्।
तत् क्षमस्वाशुभं मातर्दीनस्य शरणार्थिनः॥'

से प्रार्थना करके ब्राह्मण के किये हुए अभिषेक से अभिषिक्त हो तो सब प्रकार की व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं एवं उत्तम प्रकार के सुख और उनके साधन उपस्थित रहते हैं। इस व्रत को वृत्तासुर को मारने के लिए इन्द्र ने, त्रिपुरासुर को मारने के लिये शिव ने, विमान के लिये वरुण ने और पाञ्चजन्य (खड्ग) के लिए विष्णु ने किया था। इससे उनके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हुए थे।

5.26 मनोरथदाताव्रत[2]

इसके निमित्त चन्दन की शिवमूर्ति (अण्डाकार शिवलिङ्ग) बनवायें। इसका गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोघृत, गोदधि और गोरोचन नाम की औषधि के जल से प्रोक्षण करें। फिर शिवमन्दर के शान्तिकारी एकान्तस्थान

1. भविष्योत्तरपुराण।
2. शिवधर्म।

में शुभासन पर बैठकर सुगन्धयुक्त गन्ध, पुष्प, गोरोचन, धूप, दीप, नैवेद्य और नीराजनादि से पूजन करके हाथ, पैर और मस्तक को भूमि में लगाकर प्रणाम करें। यदि सामर्थ्य हो तो मन्दिर के मध्य भाग में शिवजी के आगे सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, काँसा और लोहा – इनमें से किसी भी धातु का सबके यथोचित योग का विजयघंट बनवाकर लगावें। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को भी, सब्जी और मण्डक (रोटी विशेष) का भोजन करवाकर दक्षिणा देकर और चन्दन की उक्त मूर्ति को ताम्र पात्र में स्थापित कर मस्तक पर धारण करके घर आवे और वहाँ उनको मध्यस्थ देव के दक्षिण भाग में प्रतिष्ठित करके गन्ध, पुष्प आदि से पुनः पूजन करें। इसके बाद काम, क्रोधादि का त्याग करके स्थिरासन से उपविष्ट होकर (भली भाँति बैठकर) मौनव्रत धारण करें। उस अवस्था में किसी प्रकार के शब्द संकेत या बातचीत को सुनकर हाँ-हाँ हूँ-हूँ- जैसे स्वीकृति और निषेध के अक्षरों का उच्चारण भी न होने दें। ऐसा हो जाये मानो नेत्रों से कोई भी दृश्य दीखता नहीं (या देखना नहीं)। इस प्रकार बारह, छः, तीन या एक महीने अथवा इससे भी कम पंद्रह, बारह या छः, तीन या एक दिन – जैसा सामर्थ्य और अवकाश हो, वैसा ही व्रत करें तो सब प्रकार के अभिलीषित अर्थ स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं और शरीर की बाह्य तथा अभ्यान्तरिक दोनों परिस्थितियाँ अनुकूल बन जाती हैं। ऋषि-मुनियों ने इसी मौनव्रत के प्रभाव से शास्त्र रचना के द्वारा संसार का महान् उपकार किया था और अमिट तपोवन का अमृत संचय करके स्वर्ग में गए थे।

5.27 शत्रुनाशक व्रत[1]

जिस दिन भरणी या कृतिका हो, उस दिन श्वेत रंग के गन्ध युक्त गन्ध पुष्पादि से वासुदेव का पूजन करके सर्षप का हवन करें और ब्राह्मणों को भोजन, वस्त्र और आयुध देकर व्रत करें तो दाता विजयी होता है। वैसे शत्रु नाश हेतु पीली सरसों के हवन का विधान है।

---

1. विष्णुधर्मोत्तर पुराण।

5.28 गोहत्यादिदोषविनाशक व्रत[1]

किसी महीने की चतुर्दशी को प्रातः स्नानादि के पश्चात् रात्रि के आरम्भ में पुनः स्नान करके यथोचित गुणों से युक्त और वर्जित दोषों से विमुक्त विद्वान् का वरण कर स्त्री और पुत्रसहित पूजा का आरम्भ करें। उसके लिए मालती, केतकी, चमेली, टेसू (लास-कुसुम), पाटल (गुलाब) और कदम्बादि के जितने पुष्प मिल सकें लाकर सुविधा के स्थान में रख दें अथवा विविध प्रकार के अन्न और अखण्डित अक्षत (चावल) लेकर साम्ब शिव का विधिवत् पूजन करें एवं ॐ नमः शिवाय के उच्चारण के साथ एक-एक पुष्प उनको अर्पण करें। उनमें दस-दस हजार की दस आवृत्तियाँ करके प्रत्येक आवृत्ति के पश्चात् स्वर्णपुष्प अर्पण करें। इस प्रकार एक ही दिन में या दो दिन में अथवा तीन दिन में या जिस प्रकार पुष्प प्राप्त हों, उतने दिन में लक्ष पुष्प अर्पण करके समाप्ति में सुवर्ण का एक बिल्वपत्र शिव को और सोने का एक पुष्प शिवा को अर्पण करें। इसके बाद–

'विरुपाक्ष महेशान विश्वरूप महेश्वर।
मया कृतां लक्षपूजां वरदो भव कृपाकर॥'

से प्रार्थना करके–

मृत्युञ्जयाय यज्ञाय देवदेवाय शम्भवे।
आश्विनेशाय शर्वाय महादेवाय ते नमः॥

से नमस्कार करें। इसके करने से गौहत्या, ब्रह्महत्या, गुरुस्त्रीगमन, मद्यपान और परधन का अपहरण आदि पापों का नाश हो जाता है और मनुष्य सब प्रकार से सुखी रहता है। इसके उद्यापन में यह विशेषता है कि हवन में विष्णुसहस्रनाम से आहुति दें।

5.29 सर्वपापविनाशकव्रत[2]

कार्तिक या माघ में भगवान को तुलसी दल अर्पण करें और माघ

1. ब्रह्माण्ड पुराण।
2. भविष्यपुराण।

या वैशाख में (अथवा कार्तिक का माघ में और माघ का वैशाख में) उद्यापन करें। प्रमाण–

1. **श्रावणे श्रीधरप्रीत्यै दातव्यानि दिने दिने। (वामनपुराण)**
2. **मासि भाद्रपदे दद्यात् पायसं मधुसर्पिषा।**
   हृषीकेशप्रीणनार्थे लवणं सगुडोदनम्॥ (वामनपुराण)
3. **घृतमाश्वयुजे मासि नित्यं दद्यात् द्विजातये।**
   प्रीणयित्वाश्विनौ देवौ रूपभागभिजायते॥ (यम)
4. **रजतं काञ्चनं दीपान् मणिमुक्ताफलादिकम्।**
   दामोदरस्य प्रीत्यर्थं प्रदद्यात् कार्तिके नरः॥

   (वामनपुराण)
5. **मार्गशीर्षे तु यो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।**
   भोजयेत्तु द्विजान् भक्त्या मुच्यते व्याधिकिल्विषैः॥

   (महाभारत)
6. **घृतं द्विजेभ्यो दद्याच्च घृतमेव निवेदयेत्।**
   पौषे .... ॥ (वामनपुराण)

पत्रार्पण की क्रिया यह है कि वृन्दा (तुलसी) के वन में जाकर तुलसी के उत्तम और समान आकार के एक हजार पत्र लायें। इनमें गन्ध से विष्णु का नाम लिखें, पीछे शालग्रामजी का तथा नामाङ्कित तुलसीपत्रों का गंधाक्षत से पूजन करें। उस समय स्नान कराकर गन्ध और अक्षत अर्पण करें और पुष्पार्पण के पहले विष्णुसहस्रनाम के एक-एक नाम से एक-एक तुलसीपत्र भगवान को अर्पण करें तो इससे सम्पूर्ण प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं।

5.30 पुण्योदयकारकव्रत[1]

आषाढ़ शुक्ल एकादशी को प्रातः स्नान के पश्चात् भगवान का

---

1. वशिष्ठाम्बरीषसंवाद।

विधिवत् पूजन करें। विनयावनत् होकर भगवान के नामस्मरण सहित एक-एक करके जितना बन सकें प्रणाम करें और एकभुक्त व्रत करके अतिथि आदि का सत्कार करें। इस प्रकार चार महीने में एक लाख नमस्कार करके कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को उद्यापन करें तो अभक्ष्यभक्षण, अगम्यागमन, अदृश्य-दर्शन, अपेयपान और अनृतभाषण आदि से उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्य का उदय होता है।

5.31 त्रिजन्मपापविनाशक व्रत[1]

आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्त्तिक शुक्ल एकादशीपर्यन्त प्रतिदिन प्रातः स्नानादि के पश्चात वेदमन्त्रों (पुरुषसूक्त के मन्त्रों) से पूजन करके '**कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने**' या '**केशवाय नमः**'आदि किसी नाम के उच्चारण से भगवान की प्रदक्षिणा करें। यथा क्रम एक लाख पूर्ण होने के पश्चात् उद्यान, ब्राह्मण-भोजन और विसर्जन करें तो पूर्वजन्म, वर्तमानजन्म और पुनर्जन्म (इन तीन जन्मों) के पाप दूर हो जाते हैं और सुख शान्ति के साथ सानन्द जीवन व्यतीत होता है। ऐसा विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है।

5.32 देवलोकप्रदाताव्रत[2]

जिस समय श्रद्धा, सुविधा और अवकाश हो उस समय कपास की एक लाख बत्तियाँ बनाकर तैलपूर्ण दीपकों में एक-एक रखें और उनका पंक्तिरूप में प्रज्वलन करके शिव, केशव या हनुमान आदि किसी भी अभीष्ट देव के मन्दिर में सुचारुरूप से स्थापित करके नक्त व्रत करें। कूर्म पुराण के अनुसार नक्त की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है-

नरस्य द्विगुणा छायामतिक्रामेद्यदा रविः।
तदा सौरं भवेन्नक्तं न नक्तं निशि भोजनम्॥

1. विष्णुधर्मोत्तरपुराण।
2. भविष्यपुराण।

अर्थात् सूर्यास्त से पूर्व सायान्ह का काल नक्त कहलाता है। उक्त वचन के अनुसार मनुष्य की छाया उसकी आकृति की दुगुनी हो जाय तो वह काल नक्त कहलाता है।

इस प्रकार एक, तीन या पाँच आवृत्तियों में लक्ष दीपदान पूर्ण करके उद्यापन करें। इससे देवलोक की प्राप्ति होती है।

प्रमाण—

1. **माघे मासि तिलाः शस्ताः कामधेनुश्च दानतः।**
   इध्मं धनादयश्चान्ये माधवप्रीणनाय तु॥ (वामनपुराण)
2. **फाल्गुने व्रीहयो गावो वस्त्रं कृष्णाजिनान्वितम्।**
   गोविन्दप्रीणनार्थाय दातव्यं पुरुषर्षभैः॥ (वामनपुराण)

इस व्रत का वर्णन भविष्यपुराण में मिलता है।

5.33 जीवनपर्यन्तसुख प्रदाता व्रत[1]

आषाढ़ शुक्ल एकादशी को प्रातः स्नानादि के पश्चात् गौ के निवास स्थान को गोबर से लीपकर उसमें 33 पद्म (कमल) स्थापन करके उनका गन्ध पुष्पादि से पूजन करें और 33 अपूप (पूए) भोग लगाकर उतने ही अर्घ्य, प्रदक्षिणा और प्रणाम अर्पण करें। इस प्रकार कार्तिक शुक्ल एकादशीपर्यन्त प्रतिदिन करने के पश्चात् द्वादशी को पहले वर्ष में पूए, दूसरे में खीर और पूए, तीसरे में मँडके, चौथे में गुड़ और मँडके और पाँचवें में घृतपाचित (घी में पकाये हुए) मँडकों से पारण करके उद्यापन करें तो जीवनपर्यन्त सुख-सम्पत्ति से युक्त रहता है और परलोक में स्वर्गीय सुख प्राप्त होते हैं। यह भविष्योत्तर पुराण का कथन है।

5.34 ब्रह्महत्याविनाशक व्रत[2]

देवशयनी से देवप्रबोधनी पर्यन्त (चतुर्मास्य के चार महीने) प्रतिदिन

1. भविष्यपुराण।
2. शौनक।

प्रातः स्नानादि के पश्चात् भगवान का स्तवन, पूजन या स्मरण करके **'ॐ नमो नारायणाय'** अथवा **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** का मानसिक जप करें और धारण के दिन (जितक्रोधादि होकर) उपवास करें और पारण के दिन एकभुक्त भोजन करें। मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदातिथिः आचार्य बौधायन के इस वचन के एक भक्त व्रत में मध्यान्ह व्यापिनी तिथि ग्रहण की जाती है। एक भक्त व्रत में मध्याह्न काल का बोध होता है।

इस प्रकार कार्तिक पूर्णिमापर्यन्त करके उद्यापन करें तो ब्रह्महत्या जैसे महापाप भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसा महर्षि शौनक का कथन है।

5.35 कुलोद्धारकव्रत[1]

कुलोद्धारक का मतलब कुल का उद्धार करने वाला व्रत। वृक्षारोपण के शुभ दिवस में पुरुष जाति के पीपल वृक्ष का रोपण करें। उसको आठ वर्ष पर्यन्त जल आदि पोषणों से दीर्घजीवी करें फिर ज्योतिषशास्त्रोक्त उत्तम मुहूर्त्त में अश्वत्थ का उपनयन (यज्ञोपवीत संस्कार) करें। उसके लिए वेदपाठी ब्राहणों का वरण करके गणपतिपूजन, मातृकापूजन, नान्दीश्राद्ध और पुण्याहवाचन करके गायन, वादन तथा नृत्य के साथ-साथ स्त्री, समाज और बन्धु-बान्धवों सहित अभिष्ट पीपल को ईशान कोण में बिठाकर पुण्याहवाचन करें। पीपल को पञ्चामृत (दूध, दहि, घी, शहद और शक्कर) से स्नान करायें। धोती और अँगोछा धारण करायें। उसके पीछे मूँज की मेखला से अश्वत्थ को तीन बार लपेटें और **"यज्ञोपवीत."** से यज्ञोपवीत धारण कराकर दण्ड और कृष्णाजिन उसके समीप रखें। फिर उसके पश्चिम में उपस्थित होकर गन्ध, पुष्पादि से उसका पूजन करें और उससे पूर्व अपनी शाखा के विधान से हवन करें। इनमें **'इन्द्राय'**, **'अग्नये'**, **'सोमाय'**, **प्रजापतये'**, आदि के अनन्तर **"अश्वत्थेवो."** **'ॐ या ओषधी.'** और **'वनस्पतये.'** इन मन्त्रों से तीन-तीन आहुतियाँ और दें। फिर अश्वत्थ से पश्चिम में पूर्वाभिमुख

---

1. शौनक।

बैठकर दाहिने हाथ से अश्वत्थ को स्पर्श करके उसको तीन बार गायत्रीमन्त्र श्रवण करावें। पीछे हवन को समाप्त कर सवत्सा गौ, अन्न और पूजन 'सामग्री' आदि का दान करें एवं ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयं भोजन करें तो लक्ष्मी की प्राप्ति और कुल का उद्धार होता है। शौनक जी ने इस व्रत को बतलाया है।

5.36 सर्वरोग विनाशक व्रत[1]

सभी प्रकार के रोगों को विनाश करने वाले व्रत को सर्व रोग विनाशक व्रत कहते हैं। किसी शुभ दिन में प्रातः स्नानादि करने के पश्चात् **'ममाखिलपापक्षय–पूर्वकमायुरारोग्यैश्वर्यवृद्धयर्थं विष्णु-स्वरूपमश्वत्थ-तरुममुकसंख्यकाभिः प्रदक्षिणाभिः सेविष्ये'**। यह संकल्प करके अश्वत्थ के समीप विष्णु की मूर्ति स्थापित करके दोनों का षोडशोपचार पूजन करें। दो वस्त्र (धोती और दुपट्टा) ओढ़ावें। ब्रह्मचर्य का पालन करें। काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सरता, बहुभोजन ओर मन्दोत्साह न होने दें। दान, मान और उपस्करसहित ब्राह्मणों को भोजन करावें। फिर

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां राजा ब्राह्मणवर्णकः।
अश्वत्थः पूजितो येन सर्वं सम्पूजितं भवेत्॥

से प्रार्थना करके–

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिण पदेपदे॥

इस श्लोक से चार प्रदक्षिणा करके मौन धारण करें। फिर यथाक्रम लक्षपरिक्रमा आरम्भ करें। उनमें यह ध्यान अवश्य रक्खें कि पहले दिन जितनी बन सके उतनी ही प्रतिदिन करें और आगे यथाक्रम एक-दो-तीन-चार-पाँच लाख या अधिक गौरव का कार्य हो तो बारह लाख परिक्रमा करके तदंगीभूत ब्राह्मण भोजनादि करायें तो इस व्रत से

1. अद्भुतसागर।

श्वास, काश, उदरशूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, कोढ़, अग्निमान्द्य और राजयक्ष्मा या सर्वज्वर–जैसे घातक रोग, प्रत्येक प्रकार के महापाप और राज–भयादि जैसे अरिष्ट, कष्ट या संकट आदि का निवारण होकर सब प्रकार के सुख और उनके साधन प्राप्त होते हैं। अद्‌भुत सागर में यह व्रत वर्णित है।

5.37 श्रेष्ठकुलजन्मदाताव्रत

ऊँचे खानदान में जो व्रत जन्म प्रदान कराता है उसे श्रेष्ठ कुल जन्म दाता व्रत कहते हैं। यह व्रत प्रत्येक महीने में यथाविधि स्नान, दान, देवार्चन और ब्राह्मण भोजनादि करने से सम्पन्न होता है। विधि यह है कि चैत्र में एक ही प्रमाण का एकभुक्त व्रत करें तो सुवर्ण और मुक्ताफल आदि से युक्त कुल में जन्म होता है।

5.38 आरोग्यतावर्धक व्रत

जिस व्रत को करने से व्यक्ति को निरोगी शरीर मिलती है उसे आरोग्यता वर्धक व्रत कहा गया है। वैशाख में गन्ध–पुष्प का दान करें तो आरोग्यता बढ़ती है।

5.39 सौभाग्यशालीव्रत

(क)

जब भाग्य दुर्भाग्य में न बदलकर सौभाग्य में बदल जाये तो ऐसे नियम को सौभाग्यशाली व्रत के नाम से जाना जाता है। ज्येष्ठ में जलपूर्ण कुम्भ, सवत्सा गौ, पंखा और चन्दन दें तो सौभाग्यशाली होता है। दान वाला व्रत है।

(ख)

आश्विन में अश्विनीकुमारों की प्रसन्नता अर्थात् घी का दान देने से रूप और सौभाग्य बढ़ता है। स्मृति कौस्तुभ में तो पूरे आश्विन मास भर घी का दान करने को कहा गया है।

5.40 धनधान्यवर्धक व्रत

धन एवं धान्य को बढ़ाने वाले व्रत नियम को धन धान्य वर्धक व्रत कहते हैं। आषाढ़ मास में एकभुक्त भोजन, ब्रह्मचर्य का पालन और भगवान का स्मरण रक्खें तो धन-धान्य और पुत्रादि का सुख मिलता है।

5.41 श्रीधरप्रसन्नकर्त्ताव्रत

श्री को धारण करने वाले भगवान विष्णु का नाम श्रीधर' है। इनके प्रसन्न होने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है इसलिए इस व्रत को इस प्रकार करना चाहिए। श्रावण में घी-दूध मिली हुई खीर और नमक तथा गुड़ ओदन का दान करें तो हृषीकेश भगवान का अनुग्रह प्राप्त होता है।

5.42 विष्णुप्रसन्नकर्त्ता व्रत

श्रीधर प्रसन्नकर्त्ता व्रत को विष्णु प्रसन्नकर्त्ता व्रत के नाम से भी जाना जाता है।

5.43 दामोदरप्रसन्नकर्त्ता व्रत

यह व्रत भी भगवान श्री विष्णु को प्रसन्न करने वाला है। इसमें कार्तिक में चाँदी, सोना, दीप, मणि, मोती और वस्त्रादि का दान करें तो दामोदर भगवान् की प्रसन्नता होती है।

5.44 व्यधिपीड़ाविनाशक व्रत

किसी रोग से उत्पन्न होने वाले कष्ट के दर्द को विनाश करने वाले व्रत को व्याधि-पीड़ा विनाशक व्रत कहते हैं। मार्गशीर्ष में एक महीने तक एकभुक्त व्रत करके ब्राह्मणों को भोजन कराये तो व्याधि–पीड़ा और पाप दूर होते हैं।

5.45 उत्तमफलप्राप्तकर्त्ता व्रत

किसी भी कर्म का उत्तम फल मिले इस कामना से उत्तम फल प्राप्त कर्त्ता व्रत करना चाहिए। पौष में ब्राह्मणों को घृतविशिष्ट भोजन

करायें, घी का दान दें और मास समाप्त होने पर घी, सोना और पात्र सत्पात्र को देकर तीन दिन का उपवास करें तो उत्तम फल प्राप्त होता है।

5.46 शीतबाधाविनाशक व्रत

शीतलता के कारण शरीर में कोई दीर्घ रोग हो गया हो तो शीतबाधा विनाशक व्रत करने से दूर होता है। माघ में तिल धेनु का दान और गरीबों की शीतबाधा मिटाने के लिए ईंधन और धन का दान करें तो धनी होता है। कम्बल का दान भी इसी श्रेणी में आता है।

5.47 गोविन्दप्रसन्नकर्त्ताव्रत

यह व्रत गोविन्द भगवान को प्रसन्न करने वाला है इसलिए इसका नाम गोविन्द प्रसन्न कर्ता व्रत है। फाल्गुन में गौ, वस्त्र, चावल और कृष्णाजिन (काले मृग का चर्म) दान करके व्रत करें तो गोविन्द भगवान् प्रसन्न होते हैं।

इतिहास, पुराणों, धर्मशास्त्रों, निबन्ध–ग्रन्थों तथा व्रतराज, व्रतार्क एवं जयसिंकल्पद्रुप आदि में कुछ ऐसे व्रतों के भी अनुष्ठानों का उपदेश किया गया है, जो तत्तत्कामनाओं के अनुसार विशेष अवसरों पर विशेष प्रकार से किये जाते हैं। जैसे जन्मलग्न आदि से ज्ञात हुए वैधव्ययोग आदि के परिहार के लिए **'सावित्री'** और **'अश्वत्थ'** व्रत, शरीरसम्भूत शुभ लक्षणों की सफलता के लिये "सौभाग्यलक्ष्मी" और 'श्री' तथा पातक, उपपातक एवं महापातक आदि की निवृत्ति के लिये 'प्राजापत्य' और 'चन्द्रायण' व्रत आदि। इसका निर्धारण तत्तद ग्रन्थों के अनुसार करके सम्पादित किया जा सकता है।

5.48 अचलश्रीप्रदाताव्रत

अचल श्री की प्राप्ति के लिए यह व्रत किया जाता है। यह व्रत[1] एक–एक कलावृद्धि से सोलह वर्षों में पूर्ण होता है। व्रती को चाहिये कि आरम्भ के शुभ दिन में प्रातः स्नान आदि से निवृत्त होकर

---

1. सौभाग्य लक्ष्मीसंग्रह।

'ममाखिलपापक्षयपूर्वकमचलसम्पत्तिकामनया श्रीव्रतमहं करिष्ये' यह संकल्प करके सोने, चाँदी या ताँबे के पात्र में दाड़िम (अनार) की लेखनी और केसर-चन्दन से **'श्री'** लिखें और उसका 1 **ईश्वरी**, 2. **कमला**, 3. **लक्ष्मी**, 4. **चला**, 5. **भूति**, 6. **हरिप्रिया**, 7. **पद्मा**, 8. **पद्मालया**, 9. **सम्पद्**, 10. **उच्चैः**, 11. **श्री**, और 12. **पद्मधारिणी**– नामों से पूजन करके 'श्री' मन्त्र के पाँच या दस हजार जप करें। इस प्रकार प्रतिदिन वर्षपर्यन्त करने से एक कला सम्पन्न होती है। यदि वह सोलह वर्ष तक किया जाये तो सोलह कलाएँ पूर्ण हो जाती है और उसका अमित फल होता है। स्मरण रहे कि जप करते समय सुपूजित **'श्री'** को हृदयङ्गम रखकर या उस पर दृष्टि स्थिर करके जप करने से अचल श्री प्राप्ति होती है। सौभाग्य लक्ष्मी संग्रह नामक ग्रन्थ में इसका वर्णन मिलता है।

5.49 सुतप्रदाताव्रत[1]

(क) सुत या पुत्र को प्रदान करने वाले इस व्रत को सुत प्रदाता व्रत कहा गया है। संकल्प में तो केवल पुत्र न कहके सत्पुत्र कहा गया है। जन्म-लग्न आदि में बृहस्पति से पाँचवें घर का स्वामी त्रिक (6-8-12) में हो और पञ्चम, सप्तम तथा नवम का स्वामी छठें, आठवें और बारहवें में हो तो पुत्र-प्राप्ति के निमित्त धर्ममूलक उपाय करने चाहिये। यथा (1) शुक्लपक्ष की सप्तमी, रविवार को प्रातः स्नान आदि के बाद **'सत्पुत्रप्राप्ति-कामनयासूर्यसप्तमीव्रतमहं करिष्ये'**– यह संकल्प करके सूर्य की सुवर्णमयी मूर्ति का या आकाशस्थ साक्षात् सूर्य का 'गन्ध, पुष्प आदि से पूजन कर अलवण एकभुक्त व्रत करें और वर्षपर्यन्त करके उसकी समाप्ति करें। इसका वर्णन शुक्र पातक में विस्तार से मिलता है।

(ख) शिवजी के समीप शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर उनका विधिवत् पूजन करें और पञ्चाक्षरी शिवमन्त्र **(ॐ नमः शिवाय)** का एक लाख या दस हजार जप व्रतपूर्वक नौ मासपर्यन्त करें।

1. शुकजातक।

(ग) प्रारम्भ में शुक्लपक्ष की दशमी गुरुवार को प्रातः स्नान आदि नित्यकर्म से निवृत्त होकर **'मम सकलपापतापक्षयपूर्वकं सत्पुत्रप्राप्ति-कामनया 'देवकीसुत गोविन्द.' इति संतान गोपालमन्त्रस्य जपं स्तोत्रपाठं वाऽहं करिष्ये।'** यह संकल्प करके न्यासादिपूर्वक-

देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥

इस मन्त्र का प्रतिदिन एक या पाँच हजार जप करें और ब्रह्मचर्यधारणपूर्वक परिमित हविष्यान्न का एकभुक्त भोजन करें। इसी प्रकार प्रतिदिन के हिसाब से बीस दिन में एक लाख जप अथवा सौ दिन में ग्यारह सौ स्तोत्रपाठ करके समाप्ति के समय तद्दशांश का हवन करें।

(घ) अपने मकान के आँगन में मण्डप बनवाकर उसको ध्वजा, पताका और बन्दनवार आदि से भूषित करके किसी पुराणपाठी सत्पात्र विद्वान् से हरिवंश पुराण का श्रद्धापूर्वक श्रवण करें और समाप्ति के दिन हवन, पूजन और ब्राह्मण-भोजन आदि करके उसे समाप्त करें। इस प्रकार चार प्रयोगों को एक साथ या यथाक्रम पृथक्-पृथक् अथवा किसी भी एक को करें तो उससे प्रभावशाली पुत्र प्राप्त होता है।

5.50 अनिष्टहर ग्रहण व्रत[1]

यह सर्वविदित है कि सूर्य एवं चन्द्रमा को ग्रहण होता है। उस ग्रहण के कारण विभिन्न राशियों पर विभिन्न प्रकार के फलों की चर्चा मिलती है। कहीं उस ग्रहण से किसी राशि को सुख एवं किसी राशि को दुःख की प्राप्ति होती है। दुःख रूपी अनिष्ट को हरण करने हेतु यह व्रत किया जाता है। जिसके जन्म नक्षत्र (या राशि) पर स्थित हुए सूर्य या चन्द्रमा का ग्रहण हो तो उससे उस राशि वाले नगर, ग्राम या मनुष्यों को पीड़ा होती है। अथवा किसी राजा के राज्याभिषेक के नक्षत्र पर ग्रहण हो तो उस राजा और राज्य का ह्रास होता है, अतः उस निमित्त सुवर्ण के सर्प को तिलों से भरे हुए ताँबे के पात्र में रखकर गन्ध, पुष्पादि से पूजन करें और वस्त्र आदि से भूषित करके श्रोत्रिय ब्राह्मण को दें। उस समय

1. वसिष्ठ भृगुसंहिता।

तपोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन।
हेमनागप्रदानेन मम शान्ति प्रदो भव॥

इस मन्त्र से प्रार्थना करें और सूर्यग्रहण में सोने के तथा चन्द्रग्रहण में चाँदी के वृत्ताकार बिम्ब का गन्धाक्षत से पूजन करके दान करें तो उपरागजनित[1] सभी संताप शान्त होते हैं। दैवज्ञ मनोहर नामक ग्रन्थ इस बात को प्रमाणित करता है कि उपराग यानी ग्रहण से जनित क्लेश नष्ट हो जाते हैं।

5.51 वैधव्य–योग–नाशक व्रत[2]

सावित्रीव्रत[3] (हेमाद्रि, व्रत–खण्ड)– किसी कन्या की कुण्डली में विधवा योग बनता है तो उसके माता–पिता उससे एकान्त में सावित्री व्रत अथवा पिप्पलव्रत करायें ओर फिर उसका दीर्घायु योगवाले वर के साथ विवाह करें। मुहूर्तचिन्तामणि में स्पष्ट रूप से बतलाया गया है कि बाल्यकाल में ही विधवा योगों को देखकर सावित्री इत्यादि व्रतों को करना चाहिए। व्रतविधि यह है कि ज्योतिष शास्त्रोक्त शुभ मुहूर्त में प्रातः स्नानादि के पश्चात् शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर **मम वैधव्यादि–सकल–दोषपरिहारार्थं ब्रह्मसावित्रीप्रीत्यर्थं च सावित्रीव्रतमहं करिष्ये।'** यह संकल्प करके तीन दिन उपवास करें। यदि सामर्थ्य न हो तो प्रथम दिन रात्रि भोजन, द्वितीय दिन अयाचित और तृतीय दिन उपवास करके चतुर्थ दिन समाप्त करे। यह व्रत वट के समीप बैठकर करने से विशेष फलदायी होता है। अतः उस जगह बाँस के पात्र में सप्तधान्य भरकर उस पर सुवर्णनिर्मित सावित्री की स्थापना करके उसका गन्ध, पुष्प आदि से पूजन करें। साथ ही वट वृक्ष को सूत्र से वेष्टित करके उसका पञ्चोपचार पूजा कर परिक्रमा करें। तत्पश्चात्।

---

1. सौवर्णे राजतं वापि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तितः।
   उपरागोद्भवक्लेशच्छिदे विप्राय कल्पयेत्॥ (दैवज्ञमनोहर)
2. हेमाद्रि–व्रतखण्डः।
3. सावित्र्यादिव्रतादीनि भक्त्या कुर्वन्ति याः स्त्रियः।
   सौभाग्यं च सुहृत्वं च भवेत् तासां सुसङ्गतिः॥ (व्रतखण्ड)

अवैधव्यं च सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते।
पुत्रान् पौत्राश्च सौख्यं च गृहाणार्ध्यं नमोऽस्तु ते।।

से सावित्री को अर्घ्य देकर अहिवात (सौभाग्य) की रक्षा के लिए भक्ति, श्रद्धा और नम्रता सहित प्रार्थना करें तथा

वटं सिञ्चामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः।
यथा शाखाप्रशाखाभिर्वृद्धोऽसि त्वं महीतले।
तथा पुत्रैश्च पौत्रैश्च सम्पन्नां कुरु मां सदा।।

इससे वट की प्रार्थना करें तो वैधव्य दोष का सुतरां परिहार हो जाता है। वैसे यह व्रत विधवा–सधवा, बालिका, वृद्धा, अपुत्रा या सपुत्रा–सभी के करने का है और विशेष कर ज्येष्ठ की अमावस्या को सार्वजनिक रूप से किया भी जाता है। ज्योतिषशास्त्र में वैधव्य योग इस प्रकार निश्चय किया गया है कि कन्या के जन्मलग्न में सप्तमेश पापी हो, पापदृष्टा हो या पापयुक्त होकर अनिष्टकारी (छठे, आठवें, बारहवें) स्थान में बैठा हो या शत्रु के घर में हो तो पति के सुख को हीन करता है। इसी प्रकार लग्न में क्रूरग्रह हों और उससे सातवें भौम हों या लग्न में चन्द्रमा और सातवें मङ्गल हो, अथवा चौथे, सातवें, आठवें, बारहवें या लग्न में मङ्गल हो तो पति के सुख को हीन करता है।

5.52 वैधव्यहर अश्वत्थव्रत[1]

जिस कन्या को बलवान् वैधव्य–योग हो, उसके माता-पिता उससे अश्वत्थव्रत करायें। कन्या को चाहिये कि वह ज्योतिषशास्त्रोक्त श्रेष्ठ मुहूर्त्त में स्नान करके रंग बिरंगे वस्त्र धारण कर पिता के घर से बाहर पीपल (और वह न हो तो शमी या बेर के वृक्ष) के समीप जाकर चारों ओर की मिट्टी से थाल्हा बनाये और विद्वान् ब्राह्मण को आचार्य बनाकर **'मम प्रबलवैधव्यदोषनिरसनपूर्वकं पतिपुत्रादिभिः सह सुखप्राप्ति-कामनया अश्वत्थव्रतमहं करिष्ये।'** – यह संकल्प करके जलपूर्ण करवे (मिट्टी के पात्र) से उस थाल्हे को जल से भर कर पीपल को

---

1. ज्ञानभास्कर।

प्रतिदिन सींचे। विशेष कर चैत्र कृष्ण या आश्विन कृष्ण या तृतीया को अश्वत्थ के समीप बैठकर उपर्युक्त प्रकार से संकल्प करके उसका सेवन, पूजन और व्रत करें। इस प्रकार आगामी कृष्ण तृतीयापर्यन्त प्रतिदिन करके 31वें दिन सपत्नीक ब्राह्मणों का पूजन करें और बाँस के पात्र में सुवर्णनिर्मित शिव पार्वती को स्थापित करके चन्दन, अक्षत, दूर्वा, बिल्वपत्र, पुष्प और धूप दीप आदि से विधिपूर्वक पूजन करे। इस प्रकार एक महीने तक प्रतिदिन करने से कन्या को पूर्ण पतिसौख्य प्राप्त होता है। यह व्रत ज्ञान भास्कर में विधि सहित वर्णित है।

5.53 वैधव्यहर कर्कटीव्रत

सूर्यनारायण[1] के कर्कराशि में प्रवेश होने पर कन्या को चाहिये कि वह स्नान करके शुद्ध हो। अन्न पूर्ण बाँस के पात्र या अक्षतों के अष्टदलपर स्वर्णनिर्मित कर्कटी (ककड़ी) को स्थापित कर उसका गन्ध, पूष्प आदि से पूजन करें और विधिवत् व्रत करके ग्यारह फल (ऋतु काल की ककड़ी) सहित स्वर्ण कर्कटी का दान करके ब्राह्मणों को भोजन कराये तो इससे वैधव्य योग की शान्ति होती है। उक्त तीनों व्रतों के अतिरिक्त मार्कण्डेय पुराण में **'कुम्भविवाह'**, **'विष्णु विवाह'**—ये तीन परिहार और लिखें हैं। तत्त्वदर्शी महर्षियों के निश्चित किये हुए होने से प्रसङ्ग वश यहाँ उनका दिग्दर्शन करा देना आवश्यक है। व्रतराज में यह व्रत विशद् रूप से वर्णित है।

5.54 वैधव्यहर विवाहव्रत[2]

वैधव्य योग की सम्भावना होने से लौकिक विवाह से पहले वैवाहिक मुहूर्त्त में कन्या के माता-पिता सुस्नात कन्या को (1) कुम्भ—विवाह के लिये पीठ के दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बिठाकर स्वयं उत्तराभिमुख बैठे हुए गणपतिपूजन, मातृकापूजन, नान्दी का श्राद्ध और पुण्याहवाचन करके **'भूरसि'**—आदि से कुम्भ—स्थापन करें ओर उनके

---

1. व्रतराज।
2. व्रतराज।

ऊपर सुवर्ण मय वरुण का पूजन करके कुंभ और कन्या के गले में दस तारों से बनाया हुआ यज्ञोपवीत–सदृश्य सूत्र पहनायें और दोनों को पीतवस्त्र से वेष्टित करके अग्नि स्थापनपूर्वक कन्यादान करें। फिर **'प्रजापतये'** आदि से और **'भूः स्वाहा'** आदि से आहुतियाँ देकर

वरुणाङ्गस्वरूपस्त्वं जीवनानां समाश्रय।
पति जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रान् सुखं वरम्।
देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः॥

से प्रार्थना करके विसर्जन करें। इसी प्रकार (2) पिप्पल–विवाह के निमित्त सुस्नात कन्या को अश्वत्थ के समीप पूर्वाभिमुख बैठाकर उसके माता–पिता उत्तराभिमुख बैठें और गणपति, मातृका आदि का पूजन करके विष्णु–प्रतिमा और पीपल का पूजन करें। यथापूर्व दस तन्तुमय सूत्र और पीत वस्त्र से कन्या और अश्वत्थ को वेष्टित करें, फिर अग्निस्थापन करके यथोक्त विधि से कन्या दान संकल्प करें ओर **'प्रजापतये'** आदि से 4 तथा **'भूः स्वाहा'** आदि से 9 आहुतियाँ देकर

नमो निखिलपापौघ नाशनाय नमो नमः।
पूर्वजन्मभवं पापं बालवैधव्यकारकम्॥

इसी प्रकार (3) **विष्णुविवाह**–के लिये कन्यादाता सुवर्णनिर्मित विष्णुमूर्ति को वस्त्राच्छादित पीठ के अष्टदल कमल पर स्थापित करके इसके समीप दक्षिण भाग में शुभासन पर कन्या को पूर्वाभिमुख बिठायें और स्वयं उत्तराभिमुख बैठकर गणपतिपूजन, मातृका पूजन, नान्दी श्राद्ध और पुण्याहवाचन करके विष्णु प्रतिमा का षोडशोपचार पूजन करें। फिर विष्णु तथा कन्या को तन्तु विधान के उपवीत–सदृश्य सूत्र से वेष्टित और पीताम्बर से आच्छादित करके अग्निस्थापनपूर्वक हवन करें। फिर अग्नि में यथापूर्व 'प्रजापतये' आदि से 4 और भूः स्वाहा आदि से 9 आहुतियाँ देकर–

वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशाय सुखलब्धये।
बहुसौभाग्यलब्ध्यै च महाविष्णोरिमां तनुम्॥

से प्रार्थना करके विसर्जन करें। स्मरण रहे कि उक्त तीनों विवाहों में कन्यादान का संकल्प करने के समय दाता अपने गोत्र का उच्चारण करके कन्या को अपने प्रपितामह की प्रपौत्री, पितामह की पौत्री और अपनी पुत्री सूचित करता हुआ संकल्प करे। इसमें कुम्भ, अश्वत्थ और विष्णु के पिता, पितामह आदि के नामोच्चारण और राष्ट्रभृतादि आहुतियों की आवश्यकता नहीं है और न ही इन विवाहों में पुनर्भूत्व दोष होता है, क्योंकि–

स्वर्णाम्बुपिप्पलानां च प्रतिमा विष्णुरूपिणी।
तया सह विवाहे च पुनर्भूत्वं न जायते।।

अर्थात् सोना, जल, पीपल और विष्णुप्रतिमा के साथ कन्या का विवाह करने में पुनर्भूत्व नहीं होता। शान्ति विधानं में भगवान विष्णु के पिता पितामहादियों का नाम दिया गया है। यदि उचित हो तो उसका भी उच्चारण किया जा सकता है।

6. प्रायश्चित्तव्रत

पाप और पुण्य—दोनों का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है। इनमें अज्ञानवश पाप और ज्ञानवश पुण्य स्वतः संचित होते हैं और समय पाकर बढ़ जाने से दोनों प्रत्यक्ष देखने में आ जाते हैं। उस समय पाप का बुरा और पुण्य का अच्छा फल होता ही है।[1] उसमें भी मनुष्य स्वभावतः अच्छे की इच्छा और बुरे से ग्लानि करता है। इसी कारण त्रिकालदर्शी महर्षियों ने मनुष्य को पापमुक्त रखने के लिये प्रायश्चित्त निश्चित किये हैं। इनके करने से सद्भावना वाले मनुष्य तो अपने अज्ञानवशात् किये गये पापों से मुक्त होकर सुप्रकाशित प्रतिभा से युक्त होते हैं, किन्तु असद्भावना वाले मनुष्यों के ज्ञानपूर्वक किये हुए पाप भी यथोचित प्रायश्चित्तों से दूर हो जाते हैं ऐसा **अङ्गिरा**[2] ने बतलाया है। **हारीत**[3] के मत से शुद्धि द्वारा संचित पापों के नाश का नाम 'प्रायश्चित्त' है। किसी प्रकार से किये गये पाप से अन्तःकरण में ग्लानि होने (या

---

1. लक्ष्मीरूपा सदा कन्या हरिरूपं सदा जलम्। हरेर्दत्तं च यद्-दानं दातुः पापहरं सदा।। लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै या दत्ता कन्यका बुधैः। तारयेत् सकलं दातुः कुलं पूर्वापरं सदा।। चन्द्रगन्धर्ववह्नयम्बुशिवसोमस्मराः इमे। पतयः कन्यकानां च बाल्यात् सन्ति सदैव ते।। तदुद्वाहविधिं यो यत्नात् कृतो नो जनयेद्बुधम्। यथालिभुक्तं कमलं देवानां पूजनाय वै। अहं भवति सर्वत्र तथा कन्या नृणां भवेत्।। (हेमाद्रि) यत्किञ्चित् कथितं शास्त्रं शान्तिकं यतिरक्षणे। तत्पापमपि नो पापं येन धर्मोऽभिरक्ष्यते। (धर्मशास्त्र) मन्थया भास्करो यत्नात् कृतवान् दुहितुर्विधिम्। रेणुकोऽपि स्वकन्यायास्तदुद्वाहं साक्ष्यं कृत्वा सोद्वाहिता भवेत्।। (कात्यायन)
2. प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते। तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्। (अङ्गिरा)
3. 'प्रयतत्वाद्वोपचितमशुभं नाशयतीति प्रायश्चित्तम्।। (हारीत)

पछताने) और उसके मिटाने का शास्त्र-सम्मत (या परम्परागत) कर्म करने का नाम भी प्रायश्चित्त ही है। पाप और पुण्य के अनेक भेद, अनेक लक्षण, अनेक कारण और अनेक नाम, होने पर भी वेदव्यास जी ने इनका लक्षण दो शब्दों में स्पष्ट कह दिया है। उनका मत है कि दूसरे का उपकार करना पुण्य[1] और दूसरे को पीड़ित करना पाप[2] है। शास्त्रकारों ने पाप तीन प्रकार के बतलाये हैं– (1) धर्मशास्त्रों ने जिस जाति के लिए जो कर्म बतलाया है, उसको न करना, (2) शास्त्रों में जिस कर्म को बुरा बतलाया है उसको करना, और (3) इन्द्रियों को वश में न रखकर मनमाने कर्म (खान-पान, परिधान या दुर्व्यवहार) करना – इन तीनों प्रकार के पापों में पीछे जाकर प्रकीर्णक, जातिभ्रंशकर, संकरीकरण, अपात्रीकरण, मलिनीकरण, उपपातक, अनुपातक और महापातक बन जाते हैं इनके करने से मनुष्य निजपद से गिर जाता है। अतः शास्त्रकारों ने जिस कर्म का निषेध किया है, उसका त्याग और जिसको ग्राह्य बतलाया है, उसका ग्रहण करना मनुष्य मात्र के लिये श्रेयस्कर है। कदाचित् कुसङ्गवश कोई पापी बन जाये तो उसकी निवृत्ति के निमित्त यथोचित प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। यदि प्रायश्चित न किया जाय तो दूसरे जन्म में दूषित योनि प्राप्त होती है या अङ्ग-भङ्ग, भगन्दर आदि दोषों से युक्त मनुष्य योनि मिलती है। किस पाप से मनुष्य किस योनि में उत्पन्न होता है अथवा अङ्गों में किस प्रकार की विकृति होती है – ये सब विषय प्रायश्चित्तेन्दुशेखर' आदि में विस्तार से वर्णित है। प्रायश्चित्त के अनेक भेद हैं। जैसा पाप हो, वैसा ही प्रायश्चित्त होता है। इसमें भी ज्ञात, अज्ञात, अवस्था-भेद और तत्काल या कालातिक्रमण आदि के विचारानुसार यथोचित प्रायश्चित्त में कमी-वेशी भी की जाती है। यथा – सामान्य के लिये जप या हवन, विशेष के लिये (पूर्वाङ्ग में लिखे हुए) एकभुक्त, नक्त, अयाचित या विभिन्न भेदों से सम्पन्न होते हैं। इनमें भी पापों की गुरुता और लघुता के अनुसार कठोरता और सरलता की जाती है यथा–उपवास और तापन-मारण आदि के लिए

1. परोपकायः पुण्याय।
2. पापाय परपीडनम्। (वेदव्यास)

कृच्छ या अतिकृच्छ नियत किये जाते हैं। इस विषय में 'प्राजापत्य' और –चान्द्रायण' का विशेष प्राधान्य है। अधिकांश पापों से प्रायश्चित्त प्रायः इन्हीं के (कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र आदि) विभिन्न भेदों से सम्पन्न होते हैं। इनमें भी पापों की गुरुता और लघुता के अनुसार कठोरता और सरलता की जाती है।

6.1 प्राजापत्यव्रत[1]

इसमें तीन दिन प्रातःकाल (कुक्कुटाण्ड के बराबर 26 या 15 ग्रास); तीन दिन सायंकाल (वैसे ही 25 या 12 ग्रास) और तीन दिन अयाचित (बिना माँगे जो कुछ जिस समय जितना मिल जाये, उसके चौबीस ग्रास) भोजन और तीन दिन उपवास करने से एक प्राजापत्य होता है। इस प्रकार न हो सके तो एकभुक्त, नक्त, अयाचित और उपवास – ये यथाक्रम 3–3 दिन करें। उपवास निराहार न हो सके तो जल, फल या दुग्धपान से करें। जपशील को बारह हजार जप, तपशील को एक हजार होम तथा समर्थ को 12 ब्राह्मणों का भोजन और दो गो–दान या गोमूल्य रूप से कुछ द्रव्य का दान करना चाहिए। इस व्रत से **'अनादिष्ट'** (जिनके लिये प्रायश्चित्त का विधान नहीं है उन) पापों की निवृत्ति होती है। यह प्राजापत्य नामक प्रायश्चित्त का व्रत धर्मशास्त्रों में वर्णित है।

6.2 पादकृच्छ्व्रत[2]

इस प्रायश्चित्त के अन्तर्गत कृच्छ्र का अत्यन्त महत्त्व बतलाया गया है। परन्तु उस कृच्छ्र व्रत का कोई एक चौथायी भी आचरण कर ले तो वह पाद कृच्छ्र के अन्तर्गत आता है। इसमें दो दिन प्रातःकाल, दो दिन सायंकाल, दो दिन अयाचित भोजन और दो दिन उपवास करें। यह न बने तो कुछ सोना दान दें। यह विधान धर्मशास्त्रों में वर्णित है।

---

1. मन्वादि धर्मशास्त्र।
2. मन्वादि धर्मशास्त्र।

6.3 अर्द्धकृच्छ्रव्रत[1]

अर्द्ध कृच्छ्र का मतलब आधा कृच्छ्र का व्रत। इसमें एक दिन प्रातःकाल एक दिन सायंकाल, दो दिन अयाचित भोजन और दो दिन उपवास करें। यह न बने तो सोने चाँदी का दान दें। इस व्रत से ऋतुकाल में स्त्री का सहवास त्याग देने – जैसे पापों की निवृत्ति होती है।

6.4 पादकृच्छ्रव्रत[2]

पाद कृच्छ्र का एक स्वरूप पूर्व में वर्णित है तथा दूसरा यह स्वरूप भी वर्णित है। इसमें एक दिन प्रातःकाल, एक दिन सायंकाल, एक दिन अयाचित भोजन और एक दिन उपवास करने से 'पादकृच्छ्र' होता है।

6.5 अतिकृच्छ्रव्रत[3]

इसके नाम से ही इसके स्वरूप का बोध होता है कि नौ दिन एक–एक ग्रास भोजन और तीन दिन उपवास करने और 3 या 2 गौ देने से **'अतिकृच्छ'** होता है। यह न बन सके तो **'पाणिपूरान्न'** (हथेली में आये उतना) भोजन और तीन दिन दूध आदि से उपवास करें। यह व्रत ब्राह्मण के लकुट–प्रहार करने – जैसे पापों की निवृत्ति के निमित्त किया जाता है।

6.6 कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत[4]

इसमें कृच्छ्र एवं अतिकृच्छ्र दोनों को मिलाकर कृछातिकृच्छ्र बनता है। प्रातःकाल, सायंकाल और मध्याह्नकाल – इनमें एक–एक बार जल पीकर 21 दिन व्रत करने से कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत होता है। यम का मत है कि यह न बने तो अतिकृच्छ्र करें।

---

1. धर्मशास्त्र।
2. धर्मशास्त्र।
3. धर्मशास्त्र।
4. अब्भस्तु त्रिभिः कालैः कृच्छ्रातिकृच्छ्रकः स्मृतः। (गौतम)

6.7 तप्तकृच्छ्रव्रत[1]

तप्त का मतलब ही होता है ताप। ऐसा कृच्छ्र व्रत जिसमें ताप का सेवन किया जाता है उसे तप्त कृच्छ्र व्रत कहते है। 3 दिन 6 पल (छः छटाँक) गर्म जल, 3 दिन 3 पल गर्म दूध, 3 दिन 1 पल गर्म घी और तीन दिन गर्म वायु (उबलते हुए जल की भाप) पीने से या 3 पल गर्म जल, 3 पल गर्म दूध और 1 पल गर्म घी 3-3 दिन पीने और 3 उपवास करने से, अथवा तीनों को एक साथ गर्म करके 1 दिन पीने और 1 दिन उपवास करने से 'तप्तकृच्छ्र' होता है। इसमें पहला मत मनु का है। यह प्रायश्चित किसी संताप प्रदान करने वाले पाप के प्रायश्चित के रूप में वर्णित है।

6.8 शीतकृच्छ्रव्रत[2]

इस व्रत में शीतल वस्तुयें सेवन की जाती है। इसमें 3 दिन उक्त प्रमाण का ठंडा जल, 3 दिन ठंडा दूध और तीन दिन ठंडा घी पीने से और यदि सामर्थ्य न हो तो 1-1 दिन पीने से 'शीतकृच्छ्र' होता है। ऐसा यम का कथन है।

6.9 पर्णकूर्चव्रत

पर्ण का अर्थ होता है पत्ता पलाश, गूलर, पद्म, बेलपत्र और कुशपत्र–इन सबको एक साथ उबालकर 3 दिन पीने से पर्णकूर्च[3] होता है। ऐसा यम का वचन है।

---

1. तप्तकृच्छ्रं चरन् विप्रो जलक्षीरघृतानिलान्। प्रत्यहम् पिबेदुष्णान् सकृत्स्नायी समाहितः।। (मनु)
2. त्र्यहं शीतं पिबेत्तोयं त्र्यहं शीतपयः पिबेत्। त्र्यहं शीतं घृतं पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम्।। (यम)
3. पालाशादीनि पत्राणि त्रिरात्रोपोषितः शुचिः। क्वाथयित्वा पिबेदद्भिः पर्णकूर्चोऽभिधीयते।। (यम)

6.10 ब्रह्मकूर्चव्रत[1]

पहले 3 दिन उपवास करके फिर पलाश, गूलर, पद्म, बेलपत्र और कुश इनके उबलते हुए भाप को पीने से ब्रह्मकूर्च होता है। इनके भाप का सेवन आसान नहीं है। जितने तरह के पत्ते उतने प्रकार का भाप होता है। प्रायश्चित्त में ब्रह्मकूर्च के प्रयोग में यह मिलता है कि हरे कुशे की कूँची को ब्रह्मकुर्च कहते हैं। इससे पञ्चगव्य से हवन का विधान भी पाप विनाशक होता है।

6.11 पर्णकृच्छ्र

इसमें पञ्चगव्य का प्रयोग किया जाता है। दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र पंचगव्य है। नित्य स्नान से पहले पञ्चगव्य–स्नान करके पहले 3 दिन उपवास करके फिर 5 दिन तक प्रतिदिन पलाश, गूलर, पद्म, बेल और कुश – इनके पत्तों को जल में उबालकर या इनमें से एक–एक को प्रतिदिन उबालकर पीने से पर्णकृच्छ्र[2] होता है। यह व्रत मार्कण्डेय ऋषि के द्वारा प्रदत है।

6.12 पद्मकृच्छ्र

पद्म के पत्तों को उबालकर एक मास पीने से 'पद्मकृच्छ्र[3] होता है। पद्म कमल को कहा जाता है। इस पानी में कमल के पत्ते को उबाला जाता है।

6.13 पुष्पकृच्छ्र

इसमें किसी एक पुष्प को नहीं अपितु कई पुष्पों को प्रयोग में लाया जाता है। पुष्पों को उबालकर एक मास पीने से पुष्पकृच्छ्र[4] होता है।

---

1. धर्मशास्त्र।
2. पत्रैर्मत: पर्णकृच्छ्र:। (मार्कण्डेय)
3. पद्मपत्रै: पद्मकृच्छ्र:। (मार्कण्डेय)
4. पुष्पैस्तत्कृच्छ्र: उच्यते। (मार्कण्डेय)

6.14 फलकृच्छ्र

फलों को उबालकर उसका जल एक मास पीने से 'फलकृच्छ्र'[1] होता है। फल में कई फलों का प्रयोग किया जाता है।

6.15 मूलकृच्छ्र

पर्णकृच्छ में वर्णित वृक्षों के मूलों का इसमें प्रयोग किया जाता है। उक्त वृक्षों के मूल को उबालकर उसका जल एक मास तक पीने से 'मूलकृच्छ्र'[2] होता है। इन पर्ण, पद्म, पुष्प, फल और मूलों का जल प्रतिदिन तैयार करना चाहिए। यह नहीं कि एक दिन इकट्ठा उबालकर पात्र में भर लें और प्रतिदिन पीता रहे।

6.16 श्रीकृच्छ्र

यह तीन प्रकार से किया जाता है। यथा बेल का फल उबालकर, उन का जल एक मास पीने से 'श्रीकृच्छ्र'[3] या आँवले उबालकर उनका जल पीने से दूसरा 'श्रीकृच्छ्र' होता है। नारियल का जल उबालकर पीने से तीसरा श्रीकृच्छ्र होता है।

6.17 जलकृच्छ्र

शुद्ध जल को उबालकर प्रतिदिन प्रातःस्नान आदि नित्यकर्म के पीछे एक मास तक पीने से 'जलकृच्छ्र'[4] होता है।

6.18 सांतपन

सांतपन एक महत्त्वपूर्ण प्रायश्चित है। छः रात्रि का उपवास करने से 'सांतपन'[5] होता है।

---

1. फलैर्मासेन कथितः फलकृच्छ्रो मनीषिभिः। (मार्कण्डेय)
2. मूलकृच्छ्र स्मृतो मूलैः। (मार्कण्डेय)
3. श्रीकृच्छ्र श्रीफलैः प्रोक्तः। जलकृच्छ्रव्रत (मार्क.) मासेनामलकैरेवं श्रीकृच्छ्रमपरं स्मृतम्।
4. तोयकृच्छ्रो जलेन तु।
5. विश्वकोश।

6.19 कृच्छसांतपन

एक दिन गोमूत्र, एक दिन गोबर, एक दिन दही, एक दिन दूध, एक दिन घी और एक दिन कुशोदक पीने और एक दिन उपवास करने से 'कृच्छ्रसांतपन'[1] होता है। ऐसा महर्षि जाबाल का कथन है।

6.20 महासांतपन

तीन दिन गोमूत्र, तीन दिन गोबर, तीन दिन दही, तीन दिन घी और तीन दिन कुशोदक पीने और तीन दिन उपवास करने से सम्पूर्ण पापों को निवारण करने वाला 'महासांतपन'[2] होता है। यह कथन याज्ञवल्क्य जी का है।

6.21 अतिसांतपन

उपयुक्त पदार्थों यानी गोमूत्र, गोबर, दही, घी एवं कुशोदक को दो-दो दिन पीने से 'अतिसांतपन'[3] होता है। यह यम का कथन है।

6.22 ब्रह्मकूर्चव्रत[4]

इसमें ताम्रवर्ण की गौ के 8 माशे गोमूत्र को गायत्री-मन्त्र से, सुश्वेत रंग की गौ के 16 माशे गोबर को **'गन्धद्वारा.'** से, नीली गौ के 10 माशे दही को **'दधिक्राव्णो.'**से, सुनहरे रंग की गौ के 12 माशे दूध को **'आप्यायस्व.'** से, काले रंग की गौ के 9 माशे घी को **'देवस्य त्वा.'**से ग्रहण करके पञ्चगव्य बनाकर **'इरावती.'**, **'इदं विष्णु.'**, **'मानस्तोके.'** और **'शंवती.'** इन 20 ऋचाओं से हवन करें। फिर बने हुए पञ्चगव्य को प्रणव (ॐ) से मिलाये, ॐ से ही उठाये और ॐ से ही ढाक के

---

1. गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। एकैकं प्रत्यहं पीत्वा त्वहोरात्रमभोजनम्। कृच्छ्रं सांतपनं नाम सर्वपापप्रणाशनम्।। (जाबालि)
2. याज्ञवल्क्य।
3. एतान्येव यदा पेयादेकैकं तु द्वयहं द्वयहम्। अतिसांतपनं नाम श्वपाकमपि शोधयेत्।। (यम)
4. मिताक्षरी।

मध्यपत्र या सुवर्णपात्र अथवा ताम्रपात्र या 'ब्रह्मतीर्थ (हथेली) में लेकर चरणामृत की भाँति मणिबन्धन के ऊपर से पीये और पीते समय–

यत्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके।
ब्रह्मकूर्चोपवासस्तु दहत्वग्निरिवेन्धनम्॥

इस मन्त्र का उच्चारण करें। इस प्रकार तीन बार पीने से 'ब्रह्मकूर्च' सम्पन्न होता है। इसमें यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ जिस वर्ण की गौ का विधान मिलता है उसी प्रकार की गौ का गव्य पदार्थ लेना चाहिए।

6.23 यतिसांतपन

उक्त प्रकार से तैयार किये हुए (गोमूत्र, गोबर, दूध, दही और घी) के पञ्चगव्य को तीन दिन तक पीने से 'यतिसांतपन' होता है। जाबालि के मत से उक्त पञ्चगव्य को कुशोदक में मिलाकर सात दिन पीने से **'कृच्छ्रसांतपन'**[1] होता है। उक्त प्रकार से तात्पर्य यह है कि जहाँ जिस वर्ण की गाय का प्रयोग है वहाँ उसी प्रकार की गाय को समझना चाहिए।

6.24 पराकव्रत

निरन्तर बारह अहोरात्र का उपवास करने और 2, 3 या 5 गोदान अथवा तन्मूल्योपकल्पित द्रव्य देने से **'पराकव्रत'** सम्पन्न होता है। यहाँ अहोरात्र मतलब चौबीस घण्टा मानना है।

6.25 सौम्यकृच्छ्रव्रत

व्रत आरम्भ करके पहले दिन प्राणरक्षाप्रमाण पिण्याक (जितने से प्राण रह सकें, उतने तिलों की खली) दूसरे दिन आचाम (उबाले हुए चावलों का पानी–माँड़), तीसरे दिन तक्र (छाछ–मट्ठा), चौथे दिन जल और पाँचवें दिन सत्तू पीयें। फिर तीन दिन उपवास करें तब

---

1. जाबालि।

'सौम्यकृच्छ्रव्रत'[1] होता है। इन सब की मात्रा में एक समानता होनी चाहिए।

6.26 तुलापुरुषव्रत

उपर्युक्त खली, माँड़, छाछ, जल और सत्तू – इन पाँचों में से प्रत्येक को 3-3 दिन क्रम से 15 दिन पीकर 6 दिन उपवास करने से **'तुलापुरुषव्रत'**[2] होता है। यहाँ खली से तात्पर्य तिलों की खली से है। तुला पुरुष में व्यक्ति पाप के अनुसार तौल कर प्रायश्चित्त करता है। दानमयूख में तुलापुरुष दान का वृहद् प्रयोग मिलता है।

6.27 यावकश्रीकृच्छ्र व्रत

3 दिन गोमूत्र, 3 दिन गोबर और 3 दिन यावक (जौ उबालकर तैयार किया हुआ जल) पीने से **'यावकश्रीकृच्छ्रव्रत'**[3] होता है। यह कुल नव दिन का कृच्छ्र व्रत है।

6.28 यावककृच्छ्रव्रत

प्रतिदिन नियमित जलों में जौ उबालकर 7 दिन या पन्द्रह दिन पीने से **'यावककृच्छ्रव्रत'**[4] होता है। किसी के मत से 1 मास पीने से होता है। जौ को पाप शमनार्थ और प्रायश्चित्तार्थ अधिक प्रयोग किया जाता है।

6.29 अपरजलकृच्छ्र

बिना खाये-पीये एक दिन के प्रातःकाल से लेकर दूसरे दिन के प्रातःकाल तक गले तक पहुँचे जल में खड़े रहने से **'जलकृच्छ्रव्रत'** सम्पन्न होता है। यह दूसरा **जलकृच्छ्रव्रत**[5] है। प्रायश्चित्तेन्दुशेखर में

---

1. धर्मशास्त्र।
2. धर्मशास्त्र।
3. धर्मशास्त्र।
4. प्रायश्चित्तेन्दुशेखर।
5. वही।

इसका वर्णन मिलता है। गले तक जल में खड़े होकर प्रायश्चित्त का विधान मिलता है।

6.30 वज्रकृच्छ्र

गोबर और यावक (जौ का पूर्वोक्त प्रकार से निकाला हुआ जल) मिला कर पीने से **वज्रकृच्छ्रव्रत**[1] होता है।[2] इसको जल कृच्छ्र व्रत के नाम से जाना जाता है। यहाँ व्रत का तात्पर्य नियम से है।

6.31 सांतपन व्रत

पहले दिन केवल पञ्चगव्य के एक-एक पदार्थ के पीने से और छठे दिन उपवास और हवन करने से यति सांतपन व्रत होता है।

6.32 षाडाहिकसांतपन

पञ्चगव्य के पाँच पदार्थों को एक-एक करके यथाक्रम पाँच दिन पीने और छठे दिन कुशोदक पीकर सातवें दिन उपवास करने से षाडाहिक सांतपन[3] सम्पन्न होता है। पञ्चगव्य में गाय का गोबर, गोमुत्र, गोदधि, गोघृत एवं गो दुग्ध आता है।

6.33 एकविंशदिनात्मक सांतपन

कुशोदक, गोबर, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि और गोघृत में से एक-एक को तीन-तीन दिन तक सेवन से **'सांतपनव्रत'**[4] होता है। इसमें तीन दिन का उपवास भी होता है। क्रमशः छः पदार्थों को तीन-तीन दिन तक सेवन करने से अट्ठारह दिन और तीन दिन उपवास करने से इक्कीस दिन का यह सांतपन होता है।

---

1. जलकृच्छव्रत।
2. व्रज्रकृच्छव्रत।
3. प्रायश्चित्तेन्दुशेखर।
4. प्रायश्चित्तेन्दुशेखर।

6.34 चान्द्रायणव्रत

यह व्रत चन्द्रकला की ह्रास वृद्धि के अनुसार भक्ष्य-भोजन की ग्रास संख्या को घटा-बढ़ाकर किया जाता है जिस प्रकार कृष्णप्रतिपदा से चन्द्रमा एक-एक कला से हीन होकर अमावास्या को पूर्ण रूप से क्षीण हो जाता है और शुक्लप्रतिपदा से एक-एक कला की वृद्धि होकर पूर्णिमा को पुनः वह पूर्ण हो जाता है, उसी प्रकार चान्द्रायण में कृष्ण प्रतिपदा से एक-एक ग्रास घटा कर अमावस्या को लङ्घन (उपवास) किया जाता है और शुक्लप्रतिपदा से एक-एक ग्रास बढ़ाकर चान्द्रायणव्रत सम्पन्न होता है। चान्द्रायण का अर्थ है 'चन्द्र के अयन (ह्रास-वृद्धि) के समान आहार को घटा-बढ़ाकर किया जाने वाला व्रत।' उपर्युक्त नियम से करने में इसकी ह्रास-वृद्धि के सम्पूर्ण ग्रास दो सौ चालीस होते हैं और इसी व्रत के जो अन्यान्य विधान बतलाये हैं, उन सब में भी दो सौ चालीस ही ग्रास होते हैं। परन्तु 'यवमघयतनु' और 'पिपीलिकातनु' में (शुक्लपूर्णिमा और कृष्ण प्रतिपदा के 15-15 होने के बदले केवल प्रतिपदा के 14 ग्रास होते हैं। 225 ही ग्रास होते हैं। इस विषय में वशिष्ठादि का यही मत है कि पूर्णिमा को 15 और प्रतिपदा को 14 ग्रास भक्षण करें तथा समाप्ति में अमावस्या को उपवास करें। यथा (1) 'यवमघयतनु' चान्द्रायण में शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाता हुआ पूर्णिमा को पन्द्रह ग्रास भक्षण करें और फिर कृष्ण प्रतिपदा को चौदह ग्रास का भोजन और अमावस्या को उपवास करें। तथा (2) 'पिपीलिकातनु' में कृष्णप्रतिपदा को चौदह ग्रास से आरम्भ करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास घटाता हुआ कृष्ण चतुर्दशी को एक ग्रास का भोजन और अमावस्या को उपवास करें तथा शुक्लप्रतिपदा से एक-एक ग्रास बढ़ाता हुआ पूर्णिमा को पन्द्रह ग्रास भक्षण करके पूर्ण करें। इस भाँति दोनों प्रकार का चन्द्रायण सम्पन्न होता है।

व्रतारम्भ के विषय में गौतम ऋषि ने यह विशेष बतलाया है कि प्रायश्चित्त के निमित्त से चान्द्रायण[1] करना हो तो पहले दिन व्रत रखकर

1. तिथिवृद्धया चरेत् पिण्डान् शुक्ले शिख्यण्डसम्मितान्।
एकैकं ह्रासयेत् कृष्णे चान्द्रायणं चरेत्। (याज्ञवल्क्य)

मुण्डन[1] करायें और शुद्ध स्नान करके दूसरे दिन प्रातः स्नानादि नित्यकर्म करें। फिर देवपूजा, पितृपूजा और 'यद्देवा देवहेडनं.' आदि चार मन्त्रों से हवन करके 'यवमध्य' में शुक्लप्रतिपदा का एक अथवा 'पिपीलिकातनु' में कृष्ण प्रतिपदा के चौदह ग्रासों को ढाक के पत्ते आदि के पात्र में रखकर '**ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ॐ यशः ॐ श्रीः ॐ अर्क ॐ इट् ॐ ओजः ॐ तेजः ॐ पुरुषः ॐ धर्मः ॐ शिवः**' – इन मन्त्रों से अभिमन्त्रित करें और फिर जितने ग्रास भक्षण करने हों, प्रत्येक ग्रास से मनसे स्वाहा' कहकर भक्षण करें। इस प्रकार प्रतिदिन करता रहे। भक्ष्य[2] पदार्थों में जो कुछ अन्नपानादि लिये जाय, हविष्य (होम करने योग्य) होने चाहिये। यथा – चरु (हुतशेष खीर), भैक्ष्य (भिक्षा – प्राप्त अन्न पानादि), सत्तु (भुने हुए जौ का सूखा चूना), कण (चावल), यावक (जौ की लप्सी), शाक (मेथी, बथुआ, ककड़ी या पालक आदि), पय (गोदुग्ध), दधि (गाय की दही), घृत (गोघृत), मूल (भूगर्भ में उत्पन्न होने वाले भक्ष्य-कन्द, शकरकन्द आदि) और उदक (शुद्ध जल) – इनमें जो अभीष्ट हो, उसका भक्षण करें। ग्रास आँवले[3] के फल के बराबर अथवा जो सुगमता पूर्वक मुँह में आ सके, इतना होना चाहिये। मिताक्षराकार ने लिखा है कि पत्तों के छोटे दोनों में दुग्ध आदि लेकर उनसे ग्रास-संख्या की पूर्ति की जाये तो उससे भी चान्द्रायण-व्रत सम्पन्न होता है।

6.35 यतिचान्द्रायण

यतियों अर्थात् सन्यासियों के समान आहार लेकर चान्द्रायण करने के कारण इसका नाम यति चान्द्रायण है। प्रतिदिन मध्याह्न के समय

एकैकं वर्द्धयेत् पिण्डं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्।
इन्दुक्षये न भुञ्जीत् एष चान्द्रायणे विधिः।। (वसिष्ठ)

1. कक्षलोमशिखावर्जं श्मश्रुकेशादि वापयेत्।। (वसिष्ठ)
2. चरुभैक्ष्यसक्तुयावकशाकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि। (गौतम)
3. तथाऽऽमलकसम्मितं यथासुखमुखं चेति। (स्मृतिसंग्रह)

पूर्वोक्त हविष्यान्न के आठ-आठ ग्रास भक्षण करने से तीन दिन में **'यतिचान्द्रायण'**[1] होता है। हविष्यान्न से तात्पर्य हविष्य के लिए विहित समस्त प्रकार के अन्नों से है। केवल मध्याह्न में भक्षण करने के कारण यह एक भुक्त भी हो गया है।

6.36 शिशुचान्द्रायण

चार ग्रास प्रात:काल और चार ग्रास सूर्यास्त के बाद भक्षण करें। तीन दिन इस प्रकार करने से **'शिशुचान्द्रायण'**[2] होता है। शिशु शब्द से यह स्पष्ट होता है कि शिशुओं के समान ग्रास का ग्रहण किया जाए तथा चान्द्रायण का पालन किया जाए।

6.37 ऋषिचान्द्रायण

व्रत में दृढ़ रहने वाला कोई भी सत्पुरुष प्रतिदिन तीन ग्रास तीस दिन तक भक्षण करने से नब्बे ग्रास का **'ऋषिचान्द्रायण'**[3] कर सकता है। इसमें ऋषिवत् आचरण एवं व्यवहार का विधान प्राप्त होता है। दृढ़व्रती पुरुष ही इसका सम्पादन कर सकता है।

6.38 सोमायनव्रत

सात दिन गाय के चारों स्तनों का, सात दिन तीन स्तनों का, सात दिन दो स्तनों और छ: दिन एक स्तन का दूध पीये और तीन दिन उपवास करें तो सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला **'सोमायनव्रत'**[4] सम्पन्न होता है। सोमायनव्रत धारोष्ण दुग्ध पान करने से सम्पन्न होता है। यह चान्द्रायण के समान ही माना गया है। यह व्रत कुल तीस दिनों वाला

---

1. अष्टावष्टौ समश्नीयात् पिण्डान् मध्यंदिनस्थिते।
   नियतात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं चरेत्।।
2. मनुस्मृति।
3. चतुर: प्रातरश्नीयात् पिण्डान् समश्नीयन्नियतात्मा दृढ़व्रत:।
   हविष्यान्नस्य वै मास ऋषि चान्द्रायणं स्मृतम्।।
4. मनुस्मृति।

है। इसमें केवल दुग्धाहार ही ग्रहण करने का विधान मिलता है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि केवल गो दुग्ध का आहार लेना है अन्य दुग्ध का नहीं।

6.39 विलोमसोमायने व्रत

कृष्णपक्ष की चतुर्थी से प्रारम्भ करके[1] गोक्षीरं सप्तरात्रं तु पिबेत् स्तनचतुष्टयात्। स्तनत्रयात् सप्तरात्रं सप्तरात्रं स्तनद्वयात्।

तीन दिन गाय के चार स्तनों का, तीन दिन तीन स्तनों, तीन दिन दो स्तनों का और तीन दिन एक स्तन का दूध पीये। फिर तीन दिन एक स्तन का, तीन दिन दो स्तनों का, तीन दिन तीन स्तनों का और तीन दिन चार स्तनों का दूध पीये। इस प्रकार कृष्णचतुर्थी से शुक्ल द्वादशीपर्यन्त चौबीस दिन में इस व्रत को पूर्ण करें। यह अशक्त मनुष्यों के करने का 'सोमायन' है। इससे सोमलोक की प्राप्ति होती है। यद्यपि उपर्युक्त व्रत पाप-नाश के निमित्त किये जाते हैं, तथापि यदि इनका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया जाये तो इनके प्रभाव से जीवन में अपूर्व परिवर्तन दिखायी देता है। वर्षों से दुःख भोगने वाले मनुष्यों को भी इन व्रतों के आचरण से ऐसे साधन मिल जाते हैं, जिनके प्रभाव से उसके सम्पूर्ण दुःख-दारिद्र्य स्वप्न की भाँति विलीन हो जाते हैं और उसे मनोवाञ्छित सुखों की प्राप्ति होने लगती है। व्रत करने वाले पुरुष को चाहिए कि वह व्रतारम्भ के पहले दिन सायंकाल में जब तारे दिखायी देने लगे, तब व्रत की दीक्षा ले और अपने किये हुए पापों के लिये सच्चे हृदय से पश्चाताप करते हुए उनको जनता के सामने स्पष्ट रूप से प्रकट करें। फिर दूसरे दिन प्रातः स्नान आदि के बाद देवपूजा, पितृपूजा, घृतहोम और गायत्री-जप करके मौनावलम्बनपूर्वक मन, वाणी और क्रिया के

---

1. गोक्षीरं सप्तरात्रं तु पिबेत् स्तनचतुष्टयात्।
स्तनत्रयात् सप्तरात्रं सप्तरात्रं स्तनद्वयात्।
स्तनेकैकेन षाड्रात्रं त्रिरात्रं वायुभुग्भवेत्।
एतत् सोमायनं नाम सव्रतं कल्मषनाशनम्।। (मार्कण्डेय)

द्वारा व्रत में संलग्न हो जाये तथा उसे सावधानी के साथ पूर्ण करें। यहाँ प्रसंगवश कुछ ऐसे पाप, जो प्रमादवश सहज ही हो जाते हैं और उनके कुछ ऐसे प्रायश्चित्त, जो सुगमता पूर्वक किये जा सकते हैं, बतलाये जा रहे हैं।

6.40 अन्य प्रायश्चित्त व्रत

अन्य विविध प्रायश्चित्तों का वर्णन इस प्रकार है—फल[1] और फूल देने वाले वृक्ष, लता या गुल्म आदि के छेदन का पाप वेद की सौ ऋचाओं का जप करने से दूर होता है। इसीलिए वृक्षों के काटने का पाप बतलाया गया है। वानर, गधा, कुत्ता, ऊँट और कौआ काट ले तो जल में प्राणायाम करके घी खाने से शुद्धि[2] होती है। ब्राह्मण को कुत्ता[3] काट खाये तो वह समुद्रगामिनी नदी में स्नान करके सौ प्राणायाम करने तथा घृतपान करने से शुद्ध होता है। ब्राह्मणी[4] को कुत्ता, सियार या भेड़िया काट ले तो वह तारा देखने से शुद्ध होती है। यदि रजस्वला[5] स्त्री को कुत्ता सियार या गधा काट ले तो पाँच रात्रि पञ्चगव्य पीने से उसकी शुद्धि होती है। वर्तमान में इस प्रकार की घटना होने पर चौदह सूई लगानी पड़ती है यह भी तो दोष निवारण है। यदि ब्राह्मण[6] के शरीर में घाव होकर रुधिर और पीब निकले तथा उसमें कीड़े पड़ जायें तो दो

---

1. फलदानां तु वृक्षाणां छेदसे जप्यमृक्शतम्।
   गुल्मवल्लीलतानां तु पुष्पितानां च वीरुधाम्। (या. स्मृ.)
2. वानरखरैर्द्रष्ट: श्वोष्ट्रादिवायसैः।
   प्राणायाम जले कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्धयति।। (या.स्मृ.)
3. ब्रह्मणस्तु शुना दष्टो नदीं गत्वा समुद्रगाम्।
   प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्धयति।। (वसिष्ठ)
4. ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जम्बुकेन वृकेन च।
   उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत्।। (पराशर)
5. रजस्वला यदा दष्टा शुना जम्बुकरासभैः।
   पञ्चरात्रनिराहारा पञ्चगव्येन शुद्धयति।। (पुलस्त्य)
6. ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसम्भवे।
   कृमिरुत्पद्यते यस्य युग्मगव्येन शुद्धयति। (मनु)

गव्य – गोबर एवं गोमूत्र का प्राशन करने से शुद्ध होता है। यह गोबर गोमूत्र इत्यादि बीमारी कारक कीड़ों को बढ़ने नहीं देते विनष्ट कर देते है। यदि गृहस्थ[1] पुरुष काम वश वीर्य को भूमि पर डाले तो तीन प्राणायाम करके एक हजार गायत्री जप करने से वह शुद्ध होता है। स्वप्न[2] में ब्रह्मचारी द्विज का अकाम से भी वीर्य गिर जाये तो वह स्नान करके तीन बार सूर्य को प्रणाम करें और **'पुनर्मामेत्विन्द्रियम्'** इस ऋचा को जपे तभी उसकी शुद्धि होती है। क्योंकि वीर्य ही बल है, वीर्य ही जीवन है। यदि कोई यज्ञोपवीतधारी द्विज बिना यज्ञोपवीत[3] के भोजन कर ले या मल–मूत्र का त्याग करें तो वह प्राणायाम पूर्वक आठ हजार गायत्री का जप करने से पवित्र होता है। बिना यज्ञोपवीत धारण किये उपवीती व्यक्ति को एक घूंट जल भी पीने का निषेध है। स्त्री[4] बेचने से बड़ा पाप होता है, उसकी चान्द्रायण व्रत से शुद्धि होती है। स्त्री विक्रय को महान पाप की संज्ञा दी गयी है। बाग[5] बगीचे, तालाब, तलाई, कुआँ और प्याऊँ – इनके बेचने से तथा सुकृत और पुत्र का विक्रय करने से भी पाप होता है। उससे छूटने के लिये त्रिकाल स्नान करके पृथ्वी पर शयन करें और एक दिन उपवास करके दूसरे दिन अन्न ग्रहण करें। शास्त्र कहते हैं कि ये सब जन कल्याणार्थं हैं। इसे स्वार्थ हेतु विक्रय नहीं करना चाहिए।

सर्प[6] और नेवले, बकरें और बिल्ली, चूहे और ऊँट, मेंढक और स्त्री के बीच में होकर निकलने का पाप स्नान, दान, जप या व्रतरूप

---

1. मनुस्मृति।
2. स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
   स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रि पुनर्मामित्यृचं जपेत्। (मनु)
3. ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते विण्मूत्रं कुरुतेऽथवा।
   गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्धयति।। (मरीचि)
4. नारीणां विक्रयं कृत्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम्। (चतुर्विंशति मतसंग्रह)
5. आरामतडागोदपानपुष्करिणीसुकृतसुतविक्रयेति. (पैठीनसि)
6. सर्पस्य नकुलास्याथ अजमार्जारयोस्तथा।
   मूषकस्य तथोष्ट्रस्य मण्डूकस्य च योषितः।
   अन्तरागमने सद्यः प्रायश्चित्तेन शुद्धयति। (यम)

तात्कालिक प्रायश्चित्त करने से दूर होता है। सनातन धर्म में स्त्री पुरुष सहित समस्त जीवों के साथ मर्यादित आचरण का आदेश है। उसका अपालन पापोत्पादक है। किसी[1] प्रकार का असत् दान ग्रहण कर लिया जाये तो तीन हजार गायत्री जपने से शुद्धि होती है। इससे स्पष्ट होता है कि आँख मूँदकर दान नहीं लेना चाहिए। सोच विचारकर दान लेना चाहिए भेड़[2] का, गर्भिणी तथा बिना बछड़े वाली गौ का और वन के मृग, सूअर एवं नीलगाय आदि का दुग्ध पान करने से अशुद्धि होती है। महिषी के दूध का शास्त्रों में निषेध नहीं है। आपत्तिकाल[3] में ब्राह्मण यदि शूद्र के घर में भोजन कर ले तो मानसिक पश्चात्तापपूर्वक 'द्रुपदादिव' मन्त्र का सौ बार जप करने से शुद्ध हो जाता है। आपत्तिकाले मर्यादानास्ति का विचार भी शास्त्रों में दिया गया है। लेकिन काल विचार कर प्रयोग करना चाहिए। दीपक[4] जलाने से बचा हुआ तैल, लगाने से बचा हुआ उबटन और गली में होकर लाया हुआ भोजन काम में लिया जाये तो नक्तव्रत करने से शुद्धि होती है। इसीलिए परम्परा में हम देखते हैं कि दीपक में तेल उतना ही डालो जितना जलाना है, इत्यादि का निर्देश वृद्ध लोग देते हैं। यदि अनजान में चाण्डाल[5] के कुएँ अथवा बर्तन का जल पी लिया गया हो तो तीन दिन का उपवास करने से पवित्रता होती है। इसका मतलब समझ में आता है कि जब तक वह पदार्थ शरीर में है तब तक दोष है। इसलिए उपवास से वह पदार्थ पूर्णतया शरीर से बाहर हो जाता है। जो वाणी से दूषित किया गया हो, जिसमें किसी की

---

1. जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः।
   ....मुच्यतेऽसत्परिग्रहात्।। (मनु)
2. आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः।
   अरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां महिषीं विना।। (मनु)
3. द्रुपदादिव मन्त्र का पाठ सन्ध्या प्रकरण में भी वर्णित है।
4. दीपोच्छिष्टं तु यत्तैलं रात्रौ रथ्याहृतं तु यत्।
   अभ्यङ्गाच्चैव यच्छिष्टं भुक्त्वा नक्तेन शुद्धयति।। (षट्त्रिंशत्)
5. चाण्डालकूपभाण्डस्य अज्ञानादुदकं पिबेत्।
   स तु त्र्यहेण शुद्धयेत् शूद्रस्त्वेकेन शुद्धयति।। (आपस्तम्ब)

दूषित भावना हो गयी हो तथा जो भावदूषित पात्र में रखा गया हो, यदि सींग, हाड़, दाँत, शङ्ख, सीप और कौड़ी से बनाये हुए पात्र में भर कर नवीन जल (वर्षा का तात्कालिक जल) पीया गया हो तो पञ्चगव्य पीने से शुद्धि होती है। बिना मौसम की वर्षा का जल दस दिनों तक नहीं ग्रहण करें। असमय वृष्टि को उत्पात के अन्तर्गत रखा गया है इसलिए वह जल ग्रहणीय नहीं है। यदि इसके विपरीत पी ले तो उपवास से शुद्धि होती है। धान (चावल), दही और सत्तू इनको लक्ष्मी की कामना वाला पुरुष रात में न खाय। यदि खा ले तो उसकी शुद्धि करनी होती है। असल में ये सभी शीतकारी है और रात्रि में चन्द्रमा का सम्पर्क होने से उसमें अधिकता होती है। इसलिए स्वास्थ्य की दृष्टि से भी नहीं खाना चाहिए। प्राणायाम[1] एक ऐसा उत्कृष्ट साधन है, जिसकी सौ आवृत्तियाँ करने से पाप और उपपाप सब नष्ट हो जाते हैं। वट,[2] आक, (मदार) पीपल, कुम्भी (तरबूज), तिन्दुक (तेंदू), कदम्ब और कचनार के पत्तों में भोजन नहीं करना चाहिये; क्योंकि उनमें भोजन करने से जो दोष होता है, उसकी चान्द्रायण व्रत से शुद्धि होती है। आजकल लोगों में यह प्रवृत्ति बनती जा रही है कि पत्तल यानी किसी पत्ते से बना दी गयी वस्तु, परन्तु भोजनार्थ जो पत्तल है उसके लिए धर्मशास्त्र में बहुत विचार किया गया है क्योंकि जब हम पत्तल पर भोज्य पदार्थ रखते हैं तो उन पदार्थों में आपस में रासायनिक अभिक्रिया होने लगती है। परिणामस्वरूप उसका प्रभाव खाने वाले व्यक्ति के ऊपर पड़ता है। इसलि॒ किस पत्ते पर भोज्य पदार्थ रखना एवं किस पर नहीं रखना इसका विचार करना चाहिए। मधु[3] गुड़ की बनी हुई वस्तु, शाक, गोरस, नमक और घी को

---

1. प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापापनुत्त्ये।
उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि।। (मनु)
2. वटार्काश्वत्थपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकपत्रयोः।
कोविदारकदम्बेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।। (स्मृत्यन्तर)
3. माक्षिकं फाणितं शाकं गोरसं लवणं घृतम्।
हस्तदत्तानि भुक्त्वा तु दिनमेकमभोजनम्।। (पाराशर)

हाथ से उठाकर परोसना नहीं चाहिए। जो हाथ से उठाकर दी हुई उपर्युक्त वस्तुओं को खाता है, वह एक दिन उपवास करने से शुद्ध होता है। इसीलिए परम्परा के अनुसार बच्चों से परिवेषण का कार्य कराकर उनको प्रशिक्षित किया जाता है कि कौन सी वस्तु प्रत्यक्ष हाथ से नहीं देना चाहिए। अब तो बफे सिस्टम ने सब कुछ नष्ट कर दिया है लेकिन विचारणीय विषयों का विचार अपेक्षित है। यदि कोई आसन[1] पर उँकडू बैठकर अथवा आधी धोती ओढ़कर भोजन करें या अधिक गर्म अन्न लेकर उसे फूँक-फूँक कर खाय तो वह कृच्छ्रसांतपन व्रत से शुद्ध होता है। इस प्रकार से भोजन करने का निषेध मिलता है। ब्राह्मण[2] यदि अनजान में मृताशौच अथवा जननाशौच वाले के यहाँ भोजन कर ले तो सौ प्राणायाम करने से शुद्ध होता है। यदि जान बूझकर करें तो उसके लिए अधिक प्रायश्चित की आवश्यकता है। सदाचारहीन[3] एवं निन्दित आचरण वाले विप्र का भी अन्न खाने से ब्राह्मण को एक दिन का उपवास करना चाहिये। जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन की उक्ति सर्वविदित है। यदि कोई स्वेच्छा से ऊँट[4] या गधे पर बैठे तो उसे वस्त्रों सहित जल में प्रवेश करके प्राणायाम करना चाहिए, तभी उसकी शुद्धि होती है उसको सचैल स्नान कहा गया है। यदि कोई इन्द्रधनुष[5] अथवा पलाश की आग दूसरे को दिखाये तो वह एक दिन और रात उपवास

---

1. आसनारूढपादो वा वस्त्रार्धप्रावश्तोऽपि वा।
   मुखेन धमितं भुक्त्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत्।। (क्रतु)
2. अज्ञानात् भोजने विप्राः सूतके मृतकेऽपि वा।
   प्राणायामशतं कृत्वा शुद्धयेयुः ....।। (छागल)
3. निराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च।
   अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद् दिनमेकमभोजनम्। (षट्त्रिंशत्)
4. उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः।
   सवासा जलमाप्लुत्य प्राणायामेन शुद्धयति। (मनु)
5. इन्द्रचापं पलाशाग्निं यद्यन्यस्य प्रदर्शयेत्।
   प्रायश्चित्तमहोरात्रं धनुर्दण्डश्च दक्षिणा।। (ऋष्यश्रृङ्ग)

करके ब्राह्मण को दक्षिणा दें, यही उसके लिये प्रायश्चित्त है। अपाङ्क्तेय[1] (पंक्ति में न बैठने योग्य) पुरुष के साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने वाला उत्तम द्विज दिन-रात का उपवास करके पञ्चगव्य पान करने से शुद्ध होता है। शास्त्रीय दृष्टि से पापी के साथ संलाप, स्पर्श, निःश्वास, सहयान, आसन, भोजन, यजन, अध्ययन, यौन संबंध पाप को देता है। कम्बल[2] और रेशमी कपड़ों में नील का रंग होना दोष की बात नहीं है, क्योंकि ये स्वतः शुद्ध होते हैं। प्रायः नीले रंग का वस्त्र धार्मिक कार्यों में वर्जित है, परन्तु इन दिये गये वस्त्रों को छोड़कर इसे समझना चाहिए। यदि किसी के द्वारा कुत्ते[3], बिल्ली, नेवले, मेंढक, साँप, छछूँदर और चूहे आदि जीवों की हत्या हो जाये तो वह बारह दिन का कृच्छ्व्रत करने से शुद्ध होता है। किसी भी जीव की हत्या करने का अधिकार व्यक्ति को नहीं है। फल, फूल, और अन्न, रस से उत्पन्न होने वाले जीवों की हत्या का प्रायश्चित्त है केवल घी खाकर व्रत रहना। यदि शूद्र[4] ब्राह्मण का अन्न और ब्राह्मण शूद्र का अन्न लेकर दान में दें अथवा ब्राह्मण[5] शूद्र के हाथ से भोजन कर ले तथा जल पी ले तो वह एक दिन-रात उपवास करके पञ्चगव्य पीने से शुद्ध होता है। दान में उन्हीं पदार्थों को देने के लिए कहा गया है जो स्वयं अपने परिश्रम से उत्पन्न किया गया है। नवश्राद्ध,[6] मासिक श्राद्ध, ऊनषाण्मासिक श्राद्ध, षाण्मासिक श्राद्ध और

---

1. अपाङ्क्तेयस्य यः कश्चित् पङ्क्तौ भुङ्क्ते द्विजोत्तम।
   अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति। (मार्कण्डेय)
2. कम्बले पट्टसूत्रे च नीलोरागो न दुष्यति। (स्मृतिसंग्रह)
3. श्वमार्जारनकुलमण्डूकसर्पदहरमूषकादीन् हत्वा कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत्। (वसिष्ठ)
4. ब्राह्मणान्नं यो भुङ्क्ते पानीयं वा पिबेत् क्वचित्।
   अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति। (क्रतु)
5. शूद्रहस्तेन यो भुङ्क्ते पानीयं वा पिबेत् क्वचित्।
   अहोरात्रोषितो भूत्वा पराको मासिके स्मृतः।
6. चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके स्मृतः।
   पक्षत्रयेऽतिकृच्छ्रः स्यादेकाहः पुनराब्दिके।। (शङ्ख)

वार्षिक श्राद्ध में भोजन करने वाला ब्राह्मण यथाक्रम चान्द्रायण, पराक, अतिकृच्छ्र, कृच्छ्र, पादकृच्छ्र और एकाहव्रत से शुद्ध होता है। इसी कारण श्राद्ध में केवल ब्राह्मण को भोजन करने का विधान दिया है क्योंकि वह यज्ञ स्वरूप होता है भोजन करके वह मृत आत्मा को आशीर्वाद देकर उसके पापों को क्षीण करता है और पुण्य प्रदान करता है। यदि कूआँ[1] आदि में किसी मरे हुए जीव की लाश गल आये और उसका जल पी लिया जाये तो तीन दिन केवल जल पीकर रहने से शुद्धि होती है। यदि मृत जीव मनुष्य हो तो छः दिन तक जल पीकर रहने से शुद्धि होती है। थोड़े जल वाले ताल, तलाई और कुण्ड आदि में यदि कोई अपद्रव्य पड़ जाये तो कुएँ आदि की शुद्धि के समान ही उनकी भी शुद्धि होनी चाहिए। बड़े-बड़े जलाशयों का जल अशुद्ध नहीं होता। जल इत्यादि ग्रहण से पूर्व शुद्धाशुद्ध का विचार अवश्य करना चाहिए। पोखरी या कुण्ड में घुटने से ऊपर पानी हो, तभी वह शुद्ध-ग्रहण करने योग्य होता है। घुटने से नीचे हो तो वह अपवित्र है। ऊन, रेशम, सन यानी पटसन और रक्तवस्त्र– ये थोड़े में ही शुद्ध हो जाते हैं, इनकी शुद्धि के लिए धूप में सुखाना और जल के छींटे आदि देना ही पर्याप्त है। गोहत्या, ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्ण की चोरी और गुरुपत्नी-गमन–इन पापों को करने वाले मनुष्य महापातकी[2] माने गये हैं।

उनसे वार्तालाप[3] करने, उनका स्पर्श होने, उनके श्वास की हवा लगने, उसके साथ एक सवारी या आसन पर बैठने, साथ-साथ भोजन करने, यज्ञ अथवा स्वाध्याय में उनके साथ सम्मिलित रहने तथा उनके यहाँ पुत्र या पुत्री का व्याह करने से उनका पाप फैलकर अपने ऊपर

---

1. क्लिन्नं भिन्नं शवं चैव कूपस्थं यदि दृश्यते।
   पयः पिबेत् त्रिरात्रेण मानुषे द्विगुणं स्मृतम्।। (देवल)
2. गोब्रह्महा सुरापी च स्वर्णस्तेयौ तथैव च।
   गुरुपत्न्यभिगामी च महापातकिनो नराः। (स्मृत्यन्तर)
3. संलापस्पर्शनिः श्वाससहयानासनाशनात्।
   यजनाध्ययनाद् यौनात् पापं संक्रमते नृणाम्।। (देवल)

आ जाता है। अतः ऐसे पुरुष के संसर्ग से बचना अत्यन्त आवश्यक है। प्रायश्चित विवेक में तत्संसर्गी कहते हुए इनके सम्पर्क में आने वालों को भी महापापी माना गया है। बीमार[1] गौ की चिकित्सा के लिये यदि उसे बाँधा जाये अथवा मरे हुए गर्भ को निकालने का प्रयत्न किया जाये और उस समय उस गौ की मृत्यु हो जाये तो उसका प्रायश्चित्त नहीं होता। इसी प्रकार किसी के प्राण बचाने के लिये यदि उसके शरीर में कहीं जल जाने, काटने या शिराभेदन करने (पस्त खोलने) की आवश्यकता हो और इस प्रयत्न में दैवात् वह मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो उसका भी पाप नहीं लगता। यहाँ लगता है कि मनुष्य की क्रिया के उद्देश्य को विचार कर पाप पुण्य का विचार किया गया है। लोक में भी यदि किसी आतंकवादी की कोई हत्या कर दे तो दोष नहीं दिया जाता तथा निर्दोष की हत्या से फाँसी हो जाती है। इसलिए यह स्पष्ट है कि पाप पुण्य का निर्धारण करते समय उद्देश्य को सामने रखना चाहिए। मदिरा[2] मनुष्य का सर्वनाश करने वाली मानी गयी है। पुलस्त्य जी मदिरा के प्रयोग करने वाले को भी अपवित्र मानते हैं।

---

1. बन्धने गोश्चिकित्सार्थे मृतगर्भविमोचने।
   यत्ने कृते विपत्तिश्चेत् प्रायश्चितं न विद्यते। (संवर्त)
2. पारसं द्राक्षमाधूकं खार्जूरं तालमैक्षवम्।
   मधूत्थसौरमारिष्टं मैरेयं नालिकेरजम्।।
   समानानि विजानीयान्मद्यान्येकादशैव तु।
   द्वादशं तु सुरा मद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम्। (पुलस्त्य)

7. रोग विनाशक व्रत (ज्वरव्रत)

शास्त्रकारों ने ज्वर को रोगों का राजा[1] देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली कहा है। सुश्रुत ने इसको रुद्रकोप[2] की अग्नि से उत्पन्न और सम्पूर्ण प्राणियों को तपाने वाला बतलाया है। पुराणों में इसको रुद्रसम्भूत 'रौद्री' (उष्णज्वर)[3] और विष्णुसम्भूत 'वैष्णवी' (शीतजवर) लिखा है। सूर्यारुणादि[4] ने इसको यम के समान भयकारी, महाकाय, ऊर्ध्वकेश, ज्वलत्कान्ति, दीर्घरूप और तीन नेत्रों वाला सूचित किया है। हरिवंश में इसके तीन मस्तक, छः भुजा, नौ-नौ नेत्र और तीन चरण निर्दिष्ट किये हैं। देवसम्भूत होने से विदेह[5] ने इसको पूजनीय बतलाया है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये तो ज्वर होने पर ऐसी ही परिस्थिति प्रतीत हुआ करती है। इस विषय में एक कथा भी है। उसमें कहा है कि 'बाणासुर के साथ अनिरुद्ध का युद्ध हुआ। उस समय इसी ज्वर ने बलराम को पराजित किया और श्रीकृष्ण को स्तम्भित बनाया था। इससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने इसके सर्वगत होने का वर दिया था। वास्तव में बहुत से रोगों का लय और उदय ज्वर से ही होता है। जन्म-मरण या जीवन में भी ज्वर रहता है। शरीर में भी कहा जाता है कि 96% ज्वर बना ही रहता है। उससे अधिक होता है तो लोग कहते हैं बुखार आ गया। दूसरे शब्दों

---

1. देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली।
   ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा।। (माधव)
2. रुद्रकोपाग्निसम्भूतः सर्वभूतप्रतापनः। (सुश्रुत)
3. प्रोक्तश्चोष्णज्वरो रौद्रः शीतलो वैष्णवज्वरः। (सविता)
4. ज्वरस्त्रिपादभव्यश्च दीर्घरूपो भयानकः।
   बृहत्त्रिनेत्रैर्वदनैस्त्रिभिश्च दशनैर्दृढः।।
5. ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति। (विदेह जनक)

में यह भी कहते हैं कि अधिकांश रोगी और रोग ज्वर से ही जीते और मरते हैं। ज्वर प्राणिमात्र का प्राणान्तक, देह, इन्द्रिय और मन का संतापक और बल, वर्ण, श्रम तथा उत्साह को शिथिल करने वाला है। पूर्वोक्त कथा के प्रसङ्ग में ही कहा गया है कि 'श्रीकृष्ण ने ज्वर को तीन भागों में विभाजित कर एक[1] भाग को चौपायों में, दूसरे भाग को स्थावरों (पर्वतादि) में और तीसरे भाग को मनुष्यों में विभक्त किया। विशेषता यह थी कि मनुष्यों के तीसरे भाग का चतुर्थांश ज्वर पक्षियों में नियुक्त किया। वृक्षों की जड़ों में कीड़ा, पत्तों में पीलापन, फलों में विकार, कमल में शीतलता, भूमि में ऊषरता, जल में संवाल या कुमुदिनी, मोरों में कलङ्गी, पर्वतों में गेरू और गोवंश (गाय, बैल एवं भैंस) में मृगी (या मूर्छा) – ये सब उसी (ज्वर) के रूप हैं। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी और पदार्थों में ज्वर की प्रवृत्ति होने से इसे रोगों का राजा बतलाया है। अस्तु, शरीरगत वात, पित्त और कफ के बिगड़ने, सुधरने या समान रहने के अनुसार, अनेक प्रकार का ज्वर होता है उसमें जो 'सतत'[2] (सात-दस या बारह दिन निरन्तर बना रहे), 'सतत'[3] (दिन-रात बना रहे), अन्येद्युष्क[4] (दिन-रात में एक बार हो), तृतीयक[5] (तीसरे दिन हो),

---

1. नाना तिर्यग्योन्यादिषु च बहुविधैः श्रूयते। (माधवी)
   पाकलः स तु नागानामभितापश्च वाजिनाम्।
   गवामीश्चरसंज्ञश्च मानवानां ज्वरो मतः।।
   आजीवानां प्रलापाख्यः करभे चालसो भवेत्।
   हरिद्रो माहिषाणां तु मृगरोगो मृगेषु च।
   पाक्षिणामभिधातस्तु मत्स्येष्विन्द्रे मदो मतः।
   पक्षपातः पतङ्गानां व्यालेष्वाक्षिकसंज्ञकः।। (माधवटिप्पणी)
2. संततः सततोऽह्यन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ
   सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा।
   संतत्या वो विसर्गी स्यात् संततः स निगद्यते।
3. अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते।
4. अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रमेककालं प्रवर्तते।
5. तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि।

और चातुर्थिक[1] (चौथे दिन) हो, वह 'विषम ज्वर' माना गया है। माधव ने इसको भूतावेश[2] बतलाया है और उसकी शान्ति के लिये पूजा और बलिदान निर्दिष्ट किये हैं। भूतावेश का मतलब भूत का आवेश उस व्यक्ति में प्रवेश कर जाता है। इसलिए उसका अपना स्वभाव परिवर्तन हो जाता है। जिन कारणों से ज्वर होता है, उनमें अभिघात, अभिशाप, अभिचार, अहिताचरण, अगम्यागमन, मिथ्याहारविहार, अनुपयुक्त पुष्प-गन्ध या औषधगन्ध, अनूक्त औषध, ऋतु विपर्यय, मिथ्याभय, महाशोक, बहुभोजन, विषव्रण, परिश्रम, मृतवत्सप्रसव, क्षय, अजीर्ण और दुग्धपूर्ण स्तन आदि मुख्य हैं। ऋतुओं का विपरीत या अचानक परिवर्तित होना भी ज्वर का एक कारण है। जवर और उसके वर्ण-भेद या उपाय आदि आयुर्वेद के मान्यतम ग्रन्थों में बहुत कुछ बतलाये गये हैं। अतः यहाँ उनके विषय में और कुछ लिखने की अपेक्षा व्रतोपवासादि के द्वारा ज्वरादि रोगों से मुक्त होने के साधन सूचित किये गये हैं। उनमें भी सर्वप्रथम ज्वर को ही लिया गया है।

7.1 ज्वरविनाशक व्रत[3]

दीर्घ काल के ज्वर से आकुल हुए आतुर को चाहिए कि वह **'रौद्री'**(उष्णज्वर) की निवृत्ति के लिये अष्टमी अथवा चतुर्दशी को और **'वैष्णवी'** (शीतज्वर) की निवृत्ति के लिये एकादशी या द्वादशी को अथवा रौद्री, वैष्णवी किसी के लिये भी महापर्व की किसी भी तिथि को यथासामर्थ्य (यथावत् मानसिक) प्रातः स्नानादि से निवृत्त होकर कम्बलादि के शुभासन पर पूर्व या उत्तर मुख होकर बैठे और हाथ में जल, फल, गन्ध, अक्षत और पुष्प लेकर **'मम पाप सम्भूत ज्वर जनित यद् अनिष्ट प्रशमन-पूर्वक दीर्घायुष्य बल पुष्टि नैरुज्यादि सकल शुभ फल प्राप्ति कामनया श्री महेश्वर या महाविष्णु प्रीतये**

---

1. चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः।
2. केचिद् भूताभिषङ्गोत्थं वदन्ति विषमज्वरम्। (माधव)
3. सूर्यारूण।

रुद्र विष्णु पूजनपूर्वक ज्वर पूजनं तद्व्रतं करिष्ये।' इस प्रकार संकल्प करके जितनी सामर्थ्य हो, उतने ही सुवर्ण का पत्र बनवाकर उसमें उपर्युक्त प्रकार के यमोपम जवरों का स्वरूप अङ्कित करावें और 'विष्णुमन्त्र' **इदं विष्णु.**' या '**सहस्त्रशीर्षा.**' आदि 16 मन्त्रों से विष्णु का और रुद्र–मन्त्र **नमः शम्भवाय.**' या '**नमस्ते रुद्र**' के 16 मन्त्रों से रुद्र का पूजन करके उपर्युक्त ज्वर–मूर्ति को उनके समीप में स्थापित करके उसका '**ॐ नमो महाज्वराय विष्णुरुद्रगणाय भीममूर्त्तये सर्वलोकभयंकराय मम तापं हर हर स्वाहा**' इस मन्त्र से पूजन करें। फिर इसी मन्त्र का जितना बन सके जप करके सफेद सरसों में उसका दशांश हवन करें। इसके पीछे सत्पात्र ब्राह्मणों को भोजन कराकर सुवर्ण की दक्षिणा दें और स्वयं एकभुक्त व्रत करें। इस प्रकार एक, तीन या सात बार करने से ज्वर शान्त हो जाता है। उष्ण ज्वर में केवल बुखार आता है। शीतज्वर में ठंढा देकर ज्वर आता है। प्रदत्त लक्षण को समझकर संकल्पादि में प्रयोग करके मन्त्र प्रयोग करना चाहिए।

7.2 सर्वज्वरहरव्रत

पूर्वोक्त शुभ समय यथापूर्व स्नानादि करने के अनन्तर व्रत धारण करके संकल्प करें और ताँबे का या मिट्टी का कलश लेकर उसको लाल वस्त्र से भूषित करके उसमें घी, चीनी, शहद या गुड़ भरें और यथासामर्थ्य पञ्चरत्न अथवा उनके प्रतिनिधि अक्षत रक्खें। जिस पदार्थ का अभाव हो उसके लिए उसके प्रतिनिधि द्रव्य को या उसके अभाव में अक्षत का प्रयोग किया जा सकता है। उसे रेशमी वस्त्र वेष्टित करके चावलों के पुञ्ज पर स्थापित करें। तदनन्तर विष्णु, रुद्र और ज्वर का गन्ध–पुष्पादि से पूजन करके उनके समीप बैठकर '**ॐ नमो महाज्वराय विष्णुरुद्रगणाय सर्वलोकभयंकराय मम तापं हरहर स्वाहा**' इस मन्त्र का जप करके इसी से हवने करें और ब्राह्मणों को भोजन कराकर–

भस्म प्रहरणो रौद्रः शिशिरस्त्रयं ऊर्ध्वलोचनः।
दानेनानेन सुप्रीतो ज्वरः पातु सदा मम॥
एकान्तरं संनिपातं तृतीयकं चातुर्थिकौ।

पाक्षिकं मासिकं वापि सांवत्सरिकमेव च।
नाशयेतां मम क्षिप्रं वासुदेव महेश्वरौ।।

इसका उच्चारण करके ज्वरमूर्ति का दान करें, तो ज्वर से उत्पन्न सभी उपद्रव शान्त होते हैं।

7.3 ज्वरहर बलिदानव्रत

चिरकालीन ज्वर की शान्ति के लिये अष्टमी[1] के अपराह्न में चावलों के चूर्ण से मनुष्य की आकृति का पुतला बनाकर उसको हल्दी का लेप करें। यह प्रयोग उस प्रकार के ज्वरों के लिए किया जाता है जो बहुत अधिक दिनों से लगा हो। मुख, हृदय, कण्ठ और नाभि में पीली कौड़ी लगावे, फिर खस के आसन पर विराजमान करके उसे चारों कोणों में पीले रंग की चार पताका लगावें तथा उनके पास हल्दी के रस से भरे हुए पीपल के पत्तों के चार दोने रक्खें और **'मम चिरकालीन ज्वर जनित पाप ताप आदि प्रशमनार्थं ज्वर हर बलिदानं करिष्ये'** यह संकल्प करके पुतले का पूजन करें। सायंकाल होने पर ज्वर वाले मनुष्य की **'ॐ नमो भगवते गरुड़ासनाय त्र्यम्बकाय स्वस्तिरस्तु स्वाहा। ॐ कं ठं यं सं वैनतेयाय नमः। ॐ ह्रीं क्षः क्षेत्रपालाय नमः। ॐ ठः ठः भो भो ज्वर शृणु शृणु हल हल गर्ज गर्ज नैमित्तिकं मौहूर्तिकं एकाहिकं द्वयाहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं पाक्षिकादिकं च फट् हल हल मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा**। इस मन्त्र से तीन या सात आरती उतारकर पूर्वोक्त पुतले की पूजा–सामग्री सहित किसी वृक्ष के मूल, चौराहे या श्मशान में रख आवे। यहाँ पूजा सामग्री से अभिप्राय यह है कि पुतले के पूजनार्थ जितनी सामग्रियाँ लायी गयी और चढ़ाई गई उन सभी सामग्रियों को श्मशान में रखना है। इस प्रकार तीन दिन करें और तीनों ही दिनों में नक्तव्रत (रात्रि में एक बार भोजन) करें। स्मरण रहे पुत्तल पूजन बीमार के दक्षिण भाग के स्थान में करना चाहिए। इससे ज्वरजात व्याधियाँ शीघ्र ही शान्त होती हैं।

---

1. सूर्यारुण।

7.4 ज्वहरतर्पणव्रत

ज्वरवाले मनुष्य को चाहिये कि वह दशमी[1] या सप्तमी के सुप्रभात में प्रातः स्नानादि करने के अनन्तर ताम्रपत्र में जल, तिल, रंगे हुए लाल अक्षत और लाल पुष्प डालकर डाभ के आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे और अर्घा में अथवा अञ्जलि में जल लेकर **'उष्ण'**ज्वर हो तो

योऽसौ सरस्वती तीरे कुत्सगोत्रसमुद्भवः।
त्रिरात्रज्वरदाहेन मृतो गोविन्दसंज्ञकः॥
ज्वरापनुत्तये तस्मै ददाम्येतत् तिलोदकम्॥

इस मन्त्र से जल छोड़े और इस प्रकार 108 बार तर्पण करें। यानी 108 बार यह मन्त्र पढ़ना है और तर्पण भी करना है। यदि शीतज्वर या रात्रि ज्वर हो तो–

गङ्गाया उतरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः।
रात्रौ ज्वर विनाशाय तस्मै दद्यात् तिलोदकम्॥

इस मन्त्र से तर्पण करें। ज्वर यदि सामान्य हो तो 108 बार और यदि विशेष हो अथवा बहुत दिनों का हो तो ज्वर के अनुसार 108 या 1001 अथवा 10001 अञ्जलि दें। इस प्रकार एक, तीन, पाँच या सात दिन करें और एकभुक्त व्रत रखें। एक भुक्त के बारे में पूर्व में बतलाया गया है कि केवल दोपहर में ही भोजन ग्रहण करने वाले व्रत को एकभक्त व्रत कहा गया है।

7.5 ज्वरार्तिहरतन्त्रव्रत

रविवार के प्रातःकाल में काँसे के पात्र[2] को जल में भरकर उसमें सात सुई डाले और उनका गन्ध–पुष्पादि से पूजन करके सातों को एकत्र कर–

ॐ वज्रहस्ता महाकाया वज्रपाणिर्महेश्वरी।
हरेत् स्ववज्रतुण्डेन भूमिं गच्छ महाज्वर॥

---

1. भैषज्यरत्नावली।
2. मन्त्रमहार्णव।

इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ सात बार घुमावे और फिर उनमें से एक सुई निकालकर भूमि में गाड़ दे। सम्पूर्ण सूई को भूमि में गाड़ना है सूई दिखनी नहीं चाहिए। यदि भूमि अत्यन्त सूखी हो तो उसको गीला करके भी गाड़ा जा सकता है। इस प्रकार दूसरे दिन दूसरी और तीसरे दिन तीसरी आदि निकाल सात दिनों में सातों सुइयाँ गाड़ दें और एकभुक्त व्रत करें। अथवा नागवल्लीदल में दाडिम की लेखनी और कर्पूर, अगरु एवं कस्तूरी मिले हुए केसर–चन्दन से–

वज्रदंष्ट्रों महाकायो वज्रपाणिर्महेश्वरः।
वज्रवत्सर्वदेहस्य भुवं गच्छ महाज्वरः॥

इस मन्त्र को लिखकर उसका गन्धादि से पूजन करें और ज्वर वाले को खिला दें। यहाँ ध्यान रहे नागवल्ली दल पान के पत्ते को कहा जाता है। दाडिम का मतलब अनार है। अर्थात् अनार की कलम का प्रयोग इसमें करना चाहिए। अथवा–

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतः क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः।

ॐ आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥

इन दोनों में से किसी एक के 108 या ज्वरानुसार न्यूनाधिक जप करें और

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

इसका उच्चारण कर तीन आचमन करें तो इन उपायों से एकान्तरा तीजरा, चौथिया नित्य रहने वाले – सभी ज्वर शान्त हो जाते हैं। एकाप्तरा ज्वर उस प्रकार का ज्वर है जो एक दिन का अन्तर देकर आता है। तीजरा ज्वर तीन दिन के अन्तर से आने वाला ज्वर होता है। उसी प्रकार चौथिया ज्वर चार दिन के अन्तर से आता है और नित्य का मतलब प्रतिदिन आने वाला ज्वर है। इनमें एकभुक्त व्रत करना चाहिये।

8. विविध व्रत

8.1 अतिसारहरव्रत[1]

यह रोग कर्मविपाक के[2] अनुसार जलाशयादि नष्ट करने के पाप से या आयुर्वेद के अनुसार प्रमाण से अधिक या गरिष्ठ अथवा अत्यन्त पतला या अत्यन्त स्थूल भोजन करने आदि से होता है। कर्म विपाक एक ऐसा प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है जो बतलाता है कि इस व्यक्ति को कोई रोग हुआ है तो उसका कारण क्या है? वह व्यक्ति पूर्व जन्म में क्या था कौन सा पाप किया जिसके कारण यह रोग उत्पन्न होने का योग हुआ। इसके साथ ही साथ निवारण पर भी इस ग्रन्थ में चर्चा मिलती है। अतिसारी को चाहिए कि वह शौचादि से निवृत्त होकर 'सोऽग्निरस्मी.' मन्त्र का यथाशक्ति जप करके उसी मन्त्र से दशांश हवन करे और एक भुक्त व्रत करके शक्ति के अनुसार सुवर्ण का दान दें।

8.2 संग्रहणीशमनव्रत[3]

प्रेमपूर्वक सद् बर्ताव करने वाली श्रेष्ठ स्त्री का त्याग करने या अतिसार में कुपथ्य करने से उदरगत छठीकला (ग्रहणी) के नष्ट होने से '**संग्रहणी**'[4] होती है। श्रेष्ठ स्त्री के त्याग का बहुत बड़ा दोष शास्त्रों में बतलाया गया है। इस त्याग का पाप पुरुष को संग्रहणी रोग के रूप

---

1. भवानीसहस्रनाम।
2. गुर्वतिस्निग्धतीक्ष्णोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः।
   विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चाति भोजनैः।। (माधव)
3. अनुष्ठान प्रकाश।
4. साध्वीं भार्यां च यो मर्त्यः परित्यजति कामतः।
   संग्रहणीरोगसंयुक्तः सदा भवति मानवः।। (शिवगीता)

में भोगना पड़ता है। इससे मुक्त होने के लिए किसी पुनीत पर्व में या शनिप्रदोष हो उस दिन प्रातः स्नानादि से निवृत्त होकर शिवजी का पूजन करें और वहीं उनके समीप में **'शिवसंकल्पसूक्त' (यज्जाग्रतो., येन कर्माण्य., यत्प्रज्ञान., येनेदं भूतं., यस्मिन्नृचः., सुखारथि. - इन छः मन्त्रों)** का 108 जप करके सौंफ, मिर्च, इलायची और मिश्री को घी में भिगोकर पलाश की समिधाओं में अट्ठाईस आहुतियाँ दें और शहद में सुवर्ण डालकर उसका दान करके नक्तव्रत करें। इस प्रकार दस दिन करने के अनन्तर ग्यारहवें दिन यथाशक्ति अन्नदान करें, तो संग्रहणी शमन होती है।

8.3 अर्शहरव्रत

जो मनुष्य वेतन लेकर अध्यापन यजन, हवन या जपादि करते हैं, उनको अर्शरोग[1] होता है। आयुर्वेद में इसको त्रिदोषजन्य और परम्परा से आने वाला बतलाया है। इसकी निवृत्ति के लिये चान्द्रायण व्रत करें और उन दिनों में प्रतिदिन आठ या अट्ठाईस पाठ आदित्यहृदय के करके शमी की समिधा और घी से हवन करें। आदित्य हृदय स्तोत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्तोत्र है। इससे भगवान सूर्य प्रसन्न होते है। इस प्रकार करने से अर्शरोग दूर होता है। एकभुक्त व्रत करना आवश्यक है।

8.4 अजीर्णहरव्रत[2]

अजीर्ण बहुत दिनों के[3] भुक्त पदार्थों के अपाचन, चिन्ता आदि कारणों से होता है। प्रायः यह देखा जाता है कि लोग भोजन करने में भूख का इन्तजार नहीं करते जिसके कारण अजीर्ण हो जाया करता है। इसके समाप्ति के लिये **अग्निरस्मि.** ऋचा के एक हजार जप और घृतप्लावित त्रिकुट (सोंठ, मिरच और पीपल) की एक सौ आहुति देकर उपवास करें और दूसरे दिन वेदज्ञ ब्राह्मण को हविष्यान्न का भोजन

---

1. वेतनमादाय योऽधपयत्यर्चयति जुहोति जपति सोऽर्शोरोगवान् भवति।
2. अनुष्ठान प्रकाश।
3. ऋग्वेदविधान।

कराकर पारण करें। पारण शब्द का अर्थ होता है जब उपवास के बाद सर्वप्रथम अन्न ग्रहण करते हैं तो उसे पारण कहा जाता है। लोग उसे व्रत खोलना भी कहते हैं।

8.5 मन्दाग्नि-उपशमनव्रत

प्रत्येक व्यक्ति के उदर में एक अग्नि होती है जो भोजन किये हुए अन्न को पकाती है उसे जठराग्नि कहते है। कालान्तर में यह अग्नि धीरे-धीरे मन्द पड़ने लगती है। उसे मन्दाग्नि कहते है। मन्दाग्नि होने से किया गया भोजन ठीक तरह से पचता नहीं है जिसके कारण शरीर में ऊर्जा की कमी हो जाती है। इसलिए मन्दाग्नि का उपचार समय रहते किया जाना चाहिए। यदि मिल सके तो[1] शुक्लपक्ष के सप्तमी पुष्यार्क को अथवा दशमी गुरुवार को अग्निसूक्त, 'श्रीसूक्त' अथवा 'जातवेदसे' ऋचा के जप और चाँदी के मेष (मेढा) का दान करके पलाश (छीलर) की समिधाओं में घी से हवन करें और एकभुक्त में किसी भी एक पदार्थ को भक्षण कर व्रत करें। इस प्रकार करने से मन्दाग्नि नष्ट हो जाती है। सूर्यारुण के कथनानुसार अभक्ष्य-भक्षण के दुष्प्रभाव से और आयुर्वेद के मतानुसार कफ-प्रकृति से मन्दाग्नि होती है। प्राय: व्यक्ति इतना विचार नहीं कर पाता है कि क्या भक्ष्य है क्या अभक्ष्य है? सब कुछ खाना प्रारम्भ कर देता है इसलिए अग्नि मन्द होने लगती है। शरीर में वात, पित्त एवं कफ तीनों प्रकृतियों का आनुपातिक रूप में होना आवश्यक है। जब कफ प्रकृति की अधिकता हो जाती है तो मन्दाग्नि हो जाती है।

8.6 विषूचिकोपशमनव्रत[2]

दुष्ट भोजन, दुष्टारम्भ,[3] दुष्टसंग, दुष्ट स्थिति और दुर्देशवास या

---

1. वृद्धपराशर।
2. दुर्भोजना दुरारम्भा मूर्खा दु:स्थितयश्च ये।
   दुर्देशवासिनो दुष्टास्तेषां हिंसां करिष्यति।। (यो.वा.)
3. योगवासिष्ठ

अजीर्ण की अवस्था में उर के अंदर सुई गड़ने[1]– जैसी पीड़ा होने से विषूचिका रोग (हैजा) होता है। इस रोग का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि यह शरीर में शूल चुभाने जैसा दर्द देता है। इसको रोकने के लिये मन्त्र–शास्त्री धर्मप्राण साधक को चाहिये कि वह विषूचिका वाले रोगी को प्राण–दान देने की कामना से तत्काल पवित्र होकर रोगी के उदर पर बायाँ हाथ रक्खें और दाहिने हाथ से **'ॐ हलीं ह्रीं रां रां विष्णुशक्तये नमः। ॐ नमो भगवति विष्णु शक्तये नमः। ॐ हर हर नय नय पच पच मथ मथ उत्सादय दूरे कुरु स्वाहा। हिमवन्तं यच्छ जीव सः सः सः चन्द्र मण्डल गतोऽसि स्वाहा।** इस मन्त्र से हिमालय के उत्तर पार्श्व में रहने वाली कर्कशा कर्कटी राक्षसी (अथवा बीमार के प्लीहा पद्म या नाभिप्रदेश के उत्तर प्रदेश में सूई गड़ने के समान असहनीय दर्द करने वाली विषूचिका राक्षसी) का मार्जन करें और व्रत रक्खें। इस प्रकार जब तक वेगहीन न हो तब तक करता रहे। इससे विषूचिका वाले को शान्ति प्राप्त होती है।

8.7 पाण्डुरोगप्रशमनव्रत[2]

देवता और ब्राह्मण इनके द्रव्य का अपहरण करने या वात, पित्त, कफ– इन तीनों से अथवा संनिपात से या मृदुभक्षण (मिट्टी खाने) से पाण्डुरोग होता है। इसके निवारण के निमित्त कृच्छ्रातिकृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करके सुवर्ण का दान दें और कूष्माण्डी हवन करें। कूष्माण्डी हवन अत्यन्त विशिष्ट हवन है। इसका प्रभाव रोग निवारक भी होता है।

8.8 रक्त पित्त तपशामक व्रत[3]

कर्म विपाक के विचार के अनुसार पूर्व जन्म में किये गये पापों के कारण यह दोष पैदा होता है जिसमें रक्त पित्त की अधिकता शरीर

---

1. सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिल।
   यत्राजीर्णे च सा वैद्यैर्विषूची तु निगद्यते।। (माधव)
2. धर्मानुसन्धान।
3. तत्रैव

में हो जाती है अथवा इस जन्म में धूप में घूमने, अधिक श्रम करने, बहुत ज्यादा चलने, अधिक स्त्री प्रसंग करने, नमक-मिर्च ज्यादा खाने अथवा कोप करने आदि से रक्त-पित्त होता है। कुछ लोगों को देखा जाता है कि वे हमेशा क्रोध में ही रहते है। इसका भी एक कारण रक्त पित्त से ताप की अधिकता बतलाया गया है। इसकी शान्ति के लिये स्नान करके **'ॐ अग्निं दूतं वृणीमहे.'** आदि मन्त्रों से अग्नि में घी और खीर की 108 आहुति दें और घृतप्लावित पदार्थों का एक बार भोजन करके व्रत करें।

8.9 राज यक्ष्मा उपशामक व्रत

राज्ययक्ष्मा जन्मान्तर में किये हुये महापापों का द्योतक है। कहा जाता है कि यह राजाओं का रोग है। प्राय: अधिक सुखोपभोग करने वाले लोगों को यह रोग हो जाया करता है। शातातप ने कहा है कि यह रोग साक्षात् ब्रह्म-हत्या[1] करने या राजा को मारने से होता है। वास्तव में अन्य रोगों की अपेक्षा राजयक्ष्मा से मनुष्य की बड़ी दुर्दशा होती है। इसमें शरीर धीरे-धीरे क्षीण होने लगता है। और क्षीण ही होता रहता है। आयुर्वेद के मान्यतम ग्रन्थों का मत है कि राज्ययक्ष्मा को मिटाने वाली मुख्य औषधि मृत्यु है। सद्वैद्य, सद्वौषध, सदुपचार और नियमपालक रोगी होने पर भी राजयक्ष्मावाला रोगी अधिक से अधिक एक हजार दिन (2 वर्ष 9 महीने 10 दिन) जीवित रह सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य रोगी तो चार, छ: या आठ मास में ही मर जाते हैं। विशेषता यह है कि कफ, खांसी और ज्वर के निरन्तर घर्षण से मनुष्य का साङ्गोपाङ्ग शरीर शनै:-शनै: क्षय होकर क्षीणप्राय हो जाता है और उसके रक्त, मज्जा, मांस और अस्थिपञ्जर-पर्यन्त सूख या घिस जाते हैं। आयुर्वेद के मतानुसार

---

1. ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्। (शातातप)
ब्राह्मणं घातयेद् यस्तु पूर्वजन्मनि मानव:।
मोहादकामत: सोऽपि क्षयरोगसमन्वित:।।
राजघातकर: प्रोक्तो य: पूर्वे घातवेद्यनुम्।
राजयक्ष्मान्वित: सोऽत्र तस्मिन् वयसि रोगवान्।। (सूर्यारुण)

वेगरोध[1] (मल-मूत्रादि के आते हुए वेग को रोकने) क्षय[2] (अत्यधिक स्त्री-प्रसङ्गादि के द्वारा रज और वीर्य का नाश करने), साहस (अपने से अधिक बली के साथ युद्ध, कसरत या बैर करने अथवा बहुत भागने) और विषमाशन (ससमय-असमय; एक बार, अनेक बार; कभी अल्पाहार, कभी अमिताहार) और कभी क्षुधा, तृषा या निद्रा के बहुत दबाने पर भी उनको बलात्कार से रोकने आदि कारणों से राजयक्ष्मा होता है। जब व्यक्ति किसी कार्य में अति कर देता है तो वह कष्टकारी हो जाता है। संस्कृत में एक उक्ति है कि अति सर्वत्र वर्जयेत् यानी अति सभी जगह पर वर्जित है। अन्यथा राज्यक्ष्मा का प्रकोप होता है। विशेषता यह है कि बहुव्ययसाध्य सर्वोत्कृष्ट[3] औषध या उपचार करने पर भी यह रोग घटता नहीं, प्रतिक्षण बढ़ता ही रहता है इसके विपरीत रोगी यह मानता है कि 'मैं अच्छा हो रहा हूँ।' इस विषय में स्वयं सूर्यनारायण ने कहा है कि यह रोग केवल औषध सेवन से क्षीण नहीं होता। इसके लिये औषध[4] के सिवा दान, दया, धर्म, दीनोपकार, गो-द्विज देवादि का अर्चन, व्रत, जप, हवन और तप करने (अथवा शरीर और संसार से निर्मोही होकर ईश्वर-स्मरण में निरन्तर मन लगाने) की आवश्यकता है।

8.10 राजयक्ष्मा शामक दान व्रत[5]

राजयक्ष्मा[6] के रोगी को चाहिये कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार

---

1. वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद् विषमाशनात्।
   त्रिदोषाज्जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात्।। (चरक)
2. क्रियाक्षयकरत्वातु क्षय इत्युच्यते बुधैः।
   संशोषणाद् रसादीनां शोष इत्यभिधीयते।। (भाव.)
3. निष्कृत्या कर्मजन्मोत्थो दोषजस्त्वौषधेन हि।।
   उभयाज्जायमानस्तु निष्कृत्यौषधसेवया।। (सूर्यारुण)
4. दानैर्दयाभितिथिद्विजदेवतागोदेवार्चनप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः।
   इत्युक्तपुण्यनिचवैरपचीयमानं प्राक्पापजातमशुभं प्रशमं नयन्ति।। (सूर्य)
5. सूर्यारुण।
6. राजश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः।
   तस्मात् तं राजयक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः।।

सुवर्ण का, कदली–वृक्ष बनवावे। जिसमें फल, पत्ते और मुकुल (फूल की डोडी) यथावत् हों। यदि सामर्थ्य न हो तो साक्षात् कदली–वृक्ष मंगवाये और शुभ दिन में शौचादि से निवृत्त होकर शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर **'मम जन्मान्तरीय पापजनित प्राणान्तक राजयक्ष्मोपशमन कामनया श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थे सुवर्णकदली पच पच मथ उत्सादय दूरे कुरु स्वाहा। हिमवन्तं गच्छ जीव सः सः सः चन्द्रमण्डलगतोऽसि स्वाहा** इस मन्त्र से हिमालय के उत्तर पार्श्व में रहने वाली कर्कटी राक्षसी (अथवा बीमार के प्लीहा, पद या नाभिप्रदेश के उत्तर प्रदेश में सूई गड़ाने के समान असहनीय दर्द करने वाली विषूचिका राक्षसी) का मार्जन करें और व्रत रक्खें। इस प्रकार जब तक वेगहीन न हो तब तक करता रहे। यह व्रत तब तक चलता है जब तक विषूचिका का वेग समाप्त नहीं हो जाता। इससे विषूचिका वाले को शान्ति प्राप्त होती है।

(क)

औषधोपचारादि से यदि यक्ष्मा[1] शान्त न हो तो ज्योतिषशास्त्रोक्त शुभ दिन में प्रातःकालीन कृत्य से निवृत्त होकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, मिष्ठान्न, वस्त्र, जल, फल, लौह और तिल – इन सबका यथाविधि दान करें। इन सभी पदार्थों में दान का विधान है। उस विधान के अनुसार किया दान उस रोग के लिए कल्याणकारी है। यदि यह न बन सके तो लोहे के घड़े में तिल भरकर गन्ध–पुष्पादि से पूजन करके, उसे सत्पात्र प्रतिग्रही को दें। अथवा – **'याते रुद्र.'** सूक्त का जप करके उसकी प्रत्येक ऋचा से आहुति दे और फिर शिवजी का उपस्थान करके **'त्र्यम्बकं यजामहे.'**का एक मास तक जप करें। इससे भी रोग शान्त होता है। कहा गया है कि यद्दीयते तत्सत्पात्र दानम् अर्थात् सत्पापात्र को दान देना चाहिए क्योंकि सत्पात्र को दान देने से व्यक्ति धनाढ्य होता है। धनाढ्य होकर धन का उपयोग पुण्य प्राप्ति में करता है। पुण्य के प्रसाद से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उसके बाद

---

1. सूर्यारुण।

पुनः व्यक्ति धनाढ्य होता है और दाता होता है। इसके विपरीत कुपात्र को दान देने से व्यक्ति दरिद्र होता है। दरिद्र होने से पाप करता है। पाप के प्रभाव से नरक की प्राप्ति होती है। उसके बाद पुनः जन्म होने पर व्यक्ति द्ररिद्री और पापी होता है। इसलिए सत्पात्र को ही दान देना चाहिए।

(ख)

क्षय यक्ष्मा[1] अथवा राजयक्ष्मा के विषय में 'कालिकापुराण' की कथा के श्रवण करने से अपूर्व लाभ होता है। कथा इस प्रकार है– 'दक्षप्रजापति की सत्ताईस कन्याएँ थीं। उनका चन्द्रमा के साथ विवाह हुआ। उनमें एक का नाम रोहिणी था, औरों की अपेक्षा चन्द्रदेव उससे अधिक प्रसन्न रहते थे। यह देखकर अन्य पत्नियों ने पिता से प्रार्थना की। तब दक्ष ने चन्द्रदेव को समझाया कि आप सबके साथ समान स्नेह रक्खें, किन्तु चन्द्रमा ने ऐसा नहीं किया। तब दक्षप्रजापति अत्यन्त क्रोधित हुए और उनके क्रोधानल से राजयक्ष्मा उत्पन्न होकर चन्द्रमा के शरीर में प्रविष्ट हो गया। फिर क्या था, चन्द्रदेव प्रतिदिन क्षीण होने लगे और उनका विश्वव्यापी सुप्रकाश भी घट गया। चन्द्रमा की इस क्षीणकाय अवस्था से संसार की हानि समझकर ब्रह्माजी ने उनके शरीर से यक्ष्मा को निकाल लिया और आज्ञा दी कि जो लोग स्त्री के साथ अधिक सहवास करें उनके शरीर में तुम सुख से रहो। वहाँ मृत्यु की पुत्री तृष्णा तुम्हारी आज्ञा में रहेगी। वह तुम्हारे ही समान गुणवाली है। तुम जो चाहोगे वहीं कर सकेगी। इसके सिवा जो लोग श्वास, काँस और कफ के रोगी होकर भी स्त्री के साथ सहवास रक्खें, उनके शरीर में भी तुम प्रविष्ट रहो और उनको प्रतिक्षण क्षीण करते रहो। जाओ, तुम यथेच्छ विचरण करो। तुम्हारा यह काम स्थायी रहेगा। ऐसा ही हुआ और अधिक हो रहा है। यह राजयक्ष्मा की मूल उत्पत्ति को प्रदर्शित करता है।

---

1. कालिकापुराण।

(ग)

राजयक्ष्मावाले[1] रोगी को चाहिये कि वह सत्पात्र ब्राह्मण को बुलवाकर उससे **त्र्यम्बक** मन्त्र का पुरश्चरण करने की प्रार्थना करे और उसके स्वीकार करने पर दृढ़ व्रत के साथ यह भावना करे कि इससे मैं अवश्य आरोग्य लाभ करूँगा। तत्पश्चात् सदनुष्ठानी ब्राह्मण शिवजी के मन्दिर में बैठे और पार्थिव मूर्ति का निर्माण करें, फिर उसका पञ्चोपचार पूजन करके **त्र्यम्बक** मन्त्र का एक हजार जप करें। अनन्तं शिव सन्निधौ लिखते हुए कहा गया है कि शिव जी के मन्दिर में किया गया जप एवं अनुष्ठान अनन्त गुणा होकर व्यक्ति को प्राप्त होता है। अथवा **'ॐ जूं सः अमुकं पालय पालय सः जूं ॐ'** इस मन्त्र का 10 हजार जप करें। इस मन्त्र में जो अमुकं पद लिखा गया है वहाँ उस व्यक्ति का नाम बोला जायेगा जिसके लिए यह मन्त्र जपा गया है। जप करते समय शिवमूर्ति का अपलक दर्शन करता रहे और यह प्रार्थना करे कि 'हे मृत्युञ्जय! जिसके निमित्त मैं जप करता हूँ, उसका राजयक्ष्मा से कोई अनिष्ट न हो।' तत्पश्चात् पूजन कर गन्ध-पुष्प और बिल्वपत्र लेकर रोगी के नेत्र, ललाट और हृदय से लगाकर सिरहाने रख दें। इस प्रकार प्रतिदिन नवीन पत्र सिरहाने रखता रहे और पुराने निकालकर नदी आदि के प्रवाही जल में डलवाता रहे। इस प्रकार करने से शीघ्र आरोग्य होता है।

8.11 श्वास-कास-कफ-रोग उपशमन व्रत

पूर्वजन्म[2] के अर्थव्यय के कार्यों को कृतघ्नरूप में करने से श्वास-कासादि का कष्ट होता है। उमा महेश्वर संवाद में इस बात को स्पष्ट किया गया है। इन रोगों के उपशमनार्थ व्यक्ति को नियम से युक्त रहना चाहिए। इसके लिये 'पिपीलिका तनु' और 'यवमध्य' चान्द्रायण व्रत करने चाहिये और व्रत-समाप्ति में पचास ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजन

---

1. मुक्तसंग्रह।
2. उमामहेश्वरसंवाद।

करवाना चाहिए। इसके करने से श्वास, कास, कफ और उष्णज्वर – ये सब शान्त होते हैं। पिपीलिका तनु एवं यवमध्य इन दोनों प्रकार के चान्द्रायणव्रतों का विधान प्रायश्चित्त विवेक नामक ग्रन्थ में दिया गया है।

8.12 रोगत्रयोपशमनव्रत

पूर्वोक्त श्वास, कास[1] और कफ से मुक्त होने के लिये वेदपाठी ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे शिवपूजनपूर्वक रुद्रपाठसहित सहस्रघटाभिषेक[2] करावें और उसके समाप्त होने पर पचास ब्राह्मणों को उत्तम पदार्थों का भोजन कराकर सबको समान रूप से लाल वस्त्र और सुवर्ण दें। सहस्त्रघटाभिषेक में एक हजार घड़ों में जल से अभिषेक किया जाता है। अथवा अच्युत[3] अनन्त और गोविन्द – इन तीनों नामों के तीस हजार आठ जप करें और सात्त्विक पदार्थों को भगवान को अर्पण करके नक्त व्रत करें।

8.13 श्लेष्मान्तक व्रत

जन्मान्तर में दूसरे के[4] पुत्रों का हनन अथवा हरण करने के पाप से मनुष्य कफ रोगी होता है। उसकी निवृत्ति के निमित्त पंद्रह सेर अथवा बारह सौ तोला सीसे का गन्धाक्षत से पूजन करके प्रतिग्राही को दें और आप एकभुक्त व्रत करें। इससे आरोग्य होता है। दान ग्रहण करने वाले व्यक्ति को प्रतिग्राही कहते है।

8.14 वात व्याधि उपशमन व्रत

देव और[5] भूदेवों के निमित्त की उपजीविका या उनके धन-वस्त्रादि

---

1. उमामहेश्वरसंवाद।
2. उमामहेश्वरसंवाद।
3. अच्युतानन्तगोविन्देत्येतन्नामत्रयं द्विज।
   अयुतत्रयसंख्याकं जपं कुर्याद्धि शान्तये।। (शङ्करगीता)
4. सूर्यारुण।
5. वीरसिंहावलोकन।

का अपहरण करने और स्वामी से बैर रखने से वातजनित व्याधियाँ होती हैं। उनके उपशमनार्थ कृच्छ्रातिकृच्छ्र चान्द्रायणव्रत करके **'वात-आयात्.'** मन्त्र के दस हजार जप करें। यह मन्त्र सामवेद में मन्त्रात्मक भी है और गानात्मक भी है। गेयात्मक मन्त्रों का प्रभाव अधिक होता है परन्तु इसमें समय अधिक लगता है।

8.15 धनुर्वातोपशमनव्रत

अक्षत योनि[1] में गमन करने अथवा परस्त्री से बलात्कार करने से शरीर की सम्पूर्ण संधियों में ज्वर और धनुर्वात की पीड़ा होती है। इसके लिये सवत्सा काली भैंस का दान करें। इस रोग में शरीर में जोड़ के स्थान है उन सभी में पीड़ा उत्पन्न हो जाती है।

8.16 शूलरोगोपशमनव्रत

शान्त, गम्भीर और श्रुति[2] के अध्यापन में समर्थ किन्तु अकिञ्चन और याचना करने वाले ब्राह्मण को बुलाकर भी जो कुछ नहीं देता? वह जठरशूल से पीड़ित होता है। आयुर्वेद के मतानुसार कसरत करने, बहुत मलने, अधिक जगने, अति मैथुन करने, बहुत शीतल जल पीने, मूँग, अरहर, कोदो या सूखे पदार्थ खाने, भोजन पर भोजन करने, भिगोकर उगाये हुए तन्तुयुक्त मूँग, मोठ या छोले खाने और मल-मूत्र वीर्य या अपान वायु का वेग रोकने आदि कारणों से शूल रोग होता है। हारीत ने इसकी जन्मकथा इस प्रकार कही है कि कामदेव का नाश[3] करने के निमित्त से शिवजी ने त्रिशूल फेंका था। उससे भयभीत होकर कामदेव भागा और विष्णु के शरीर में प्रविष्ट हो गया। तब विष्णु ने हुंकार से त्रिशूल को गिरा दिया और वह भूमण्डल में आकर शूल नाम से

---

1. वीरसिंहावलोकन।
2. मन्त्रमहार्णव।
3. अनङ्गनाशाय हरस्त्रिशूलं मुमोच कोषान्मकरध्वजश्च।
   तमापतन्तं सहसा निरीक्ष्य भयादितो विष्णुतनुं प्रविष्टः।।

विख्यात हुआ। पञ्चभूतात्मक[1] देहधारी कुपथ्यादिवश उसी से पीड़ित होते हैं। ऐसे त्रिशूलसम शूल-रोग से मुक्ति पाने की इच्छा वाला मनुष्य यथासामर्थ्य अन्नदान और **'नमस्ते रुद्र मन्यव.'** का जप करें और दृढ़व्रती रहे। नमस्ते रुद्र मन्यव मन्त्र रुद्राष्टाध्यायी के पाँचवें अध्याय का पहला मन्त्र है। इसको शुक्लयजुर्वेद संहिता में भी देखा जा सकता है।

8.17 गुल्मोपशमनव्रत

गुरु के हित कर वाक्यों[2] का अहितकर अर्थ करने अथवा मिथ्याहारविहारादि से बिगड़े हुए वातादि दोष उदय होकर उदर के अन्दर दोनों पसवाड़ों में और हृदय, नाभि तथा वस्तिस्थान में गुल्म उत्पन्न करते हैं। उसके निवारण के निमित्त एक महीने का 'पयोव्रत' करें और **'वात आयातु भेषज.'**[3] इस मन्त्र के दस हजार जप और इसी मन्त्र से घी और खीर का हवन करें। इससे अनिष्टकर गुल्म का कष्ट दूर हो जाता है। पयोव्रत का वर्णन श्रीमद्भागवत महापुराण में भी प्राप्त होता है।

8.18 उदरान्तरीय रोगोपशमनव्रत

जो मनुष्य ब्रह्म,[3] विष्णु और महेश में भेद[4] मानते हैं, उनको उदरगत व्याधियाँ होती हैं। उनके निवारण के लिए कृच्छ्र और अतिकृच्छ चान्द्रायण व्रत, **'उद्यन्भ्राज.'** के दस हजार जप और शिवजी का सहस्रघटाभिषेक करने से सम्पूर्ण व्याधियाँ दूर होती हैं।[6]

---

1. शूलो परोपतापेन जायते वपुषा तनुः।
   सोऽन्नदानं प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेद् बुधः।। (रुद्रविधान)
2. अनुष्ठानप्रमाण।
3. ॐ वात आयातु भेषज संभूर्मयो भूर्नो हृदें प्राण आयुषितारिषतु। (यजुः संहिता)
4. मन्त्रमहार्णव।
5 यो ब्रह्मविष्णुरुद्राणां भेदमुत्तमभावतः।
   कुर्यात् स उदरव्याधियुक्तो भवति मानवः।। (शातातप)
6. सहस्रकलशस्नानं महादेवस्य कारयेत्।
   भोजयेच्च शतं विप्रान् मुच्यते सर्व किल्विषात्।। (मन्त्रमहार्णव)

8.19 जलोदहरव्रत

मिट्टी या भस्म[1] से माँजे हुए ताम्रादि के महापात्र को जल से पूर्ण करके उसका पञ्चोपचार पूजन करें और उसी सजल से शिवजी का सहस्त्रघटाभिषेक करें तथा सौ ब्राह्मणों को भोजन करावें। अथवा सोना, चाँदी, ताँबा और जलधेनु का दान करके गुड़, घी और गोधूम के पदार्थों का एकभुक्त भोजन करें। दश धेतु दान का वर्णन करते हुए दान मयूख में जलधेनु का वर्णन मिलता है। इसके साथ ही साथ घृत धेनु इत्यादि का भी विधान प्राप्त होता है।

8.20 प्लीहा उदर हर व्रत

भृतकाध्यापक[2] (नौकरी लेकर पढ़ाने वालों) को या कन्या को दूषित करने वालों को 'प्लीहा' – एक प्रकार की उदरग्रन्थि, जो पेट के पार्श्व भाग में होती है, अत्यन्त छोटी उत्पन्न होकर यथाक्रम बहुत बड़ी हो जाती है। आयुर्वेद के अनुसार विदाही (बहुत दाह करने वाले) तथा अभिष्यन्दी (उदरगत रक्तछिद्र रोकने वाले) अन्नादि पदार्थों के निरन्तर खाते रहने से प्लीहा (तिल्ली) होता है और बेर तुल्य से बढ़कर तरबूज तुल्य हो जाती है। इसको घटाने के लिये अति पवित्रता के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करके **'यो यो हनूमन्त फलफलित धगधगित आयुराषफुरुडाह'** – इस मन्त्र के दस हजार जप करें और प्लीहा वाले मनुष्य को सीधा लिटाकर उसके उदर पर नाग बल्लीदल (नागरबेल के पत्ते) रक्खें। पत्तों के ऊपर आठ तह किया हुआ कपड़ा रक्खें। इसके बाद बेर की सूखी लकड़ी लेकर उसको जंगली पत्थर से उत्पन्न की हुई आग से जलावे और प्लीहा वाले मनुष्य के पेट पर रखे हुए वंशकाल (बाँस के टुकड़ों) को उपर्युक्त हनुमन्मन्त्र के उच्चारण के साथ (उस जलती हुई लकड़ी से) सात बार ताडित करें। इससे उदरगत प्लीहा शान्त होती है। उपर्युक्त विधान सात बार करना चाहिए। लकड़ी से आग उत्पन्न करने की विधि

---

1. मन्त्रमहार्णव।
2. मन्त्रमहोदधि।

अत्यन्त प्राचीन है। जिस लकड़ी से अग्नि उत्पन्न किया जाता है। उस लकड़ी का नाम है अरणी। प्राचीन काल में अरणी मन्थन करके अग्नि उत्पन्न करके हवनादि कार्य सम्पादित किये जाते थे।

8.21 उदर गुल्म हर व्रत

इक्षुविकार[1] (गुड़, शक्कर, चीनी और मिश्री) आदि चुराने से पेट के अंदर अनिष्टकारी फोड़ा उत्पन्न होता है। इन दिनों उसकी 'ट्यूमर' नाम से प्रसिद्धि है और विशेषज्ञ वैद्य बड़ी सावधानी के साथ अश्वक्रिया से उसका निपात करते हैं। किसी स्त्री को यह हो जाता है तब उसे गर्भस्थली में बालक होने का–जैसा आभास होता है और वह यथाक्रम उसी प्रकार बढ़ता है। परन्तु प्रसव काल की पूर्ण अवधि पूरी हो जाने पर भी कुछ न हो, तब उस उपद्रव का स्वरूप मालूम होता है। अस्तु, उदरगुल्म कि लिये सूर्यारुण में लिखा है कि गुड़–धेनु का दान करके **'मुञ्चामि.'** सूक्त का एक लाख जप और **'वात आयातु भेषजं.'** से शाल्मली (सेमल वृक्ष) की समिधाओं में घी और शक्कर की दस हजार आहुतियाँ देकर ब्राह्मणों को भोजन करावें और स्वयं व्रत करें। शास्त्रों में यह लिखा गया है कि अदत्त यानी न दिये गये पदार्थ को लेना चाहिए। ऐसा करने पर उस पदार्थ को चुराने के समान फल मिलता है। वहाँ तो यह भी लिखा है कि आप किसी के घर जाते हैं वहा आपके सामने व्यंजन पदार्थ हो तो जब तक उसका स्वामी आपसे निवेदन न करे तब तक ग्रहण नहीं करना चाहिए।

---

1 स्त्रीणामर्तवजो गुल्मो न पुंसामुपजायते।
अन्यस्त्वसृग्भवो गुल्मः स्त्रीणां पुंसां च जायते।। (छारपाणि)
गुल्मिनामनिलः शान्तिरुपायैः सर्वशो विधिः। (चरक)
कुपितानिलमूलत्वाद् गूढमुलोदयादपि।
गुल्मविद्या विशालत्वाद् गुल्म इत्यभिधीयते।। (सुश्रुत)
संचितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः।
कृतमूलः शिरानद्धो यदा कूर्मं इवोन्नतः।। (माधव)

8.22 कृमि उदर हर व्रत

जन्मान्तर के अभक्ष्य-भक्षणादि पापों से या उड़द, मैदा और गुड़ के पदार्थ अथवा चने (छोले) आदि के अर्द्धपक्व शाक खाने आदि से पेट में कीड़े पड़ जाते हैं और उनका तत्काल प्रतिकार न हो तो वे दुमुँही सर्पिणी की तरह बहुत बड़े हो जाते हैं। उनकी पीड़ा से मनुष्य की भूख-प्यास घट जाती है और वह दुर्बल और अशक्त हो जाता है। इसका कारण बताते हुए डॉक्टर लोग कहते है कि जो भोजन व्यक्ति ग्रहण करता है उससे ऊर्जा बनती है जो शरीर के तत्तद अंगों में जाकर कार्य सम्पन्न करती है। पेट में कीड़ा पड़ जाने के कारण भोजन पदार्थ का सेवन कीड़े करने लगते है जिससे उस शरीर में ऊर्जा का अभाव हो जाता है। फलत व्यक्ति असक्त हो जाता है। ऐसे कीड़ों को अनुभवी वैद्य तृषावर्द्धक उपचारों से निकालते हैं। धर्मशास्त्रों में इनकी शान्ति के लिये कार्तिक शुक्ला एकादशी से पूर्णिमापर्यन्त निराहार भीष्मपञ्चक-व्रत करना हितकारी बताया है। वास्तव में यह धर्म और कर्म दोनों का साधक है।

8.23 मूत्रकृच्छ्रोपशमनव्रत

इस रोग[1] के रोगी को चाहिये कि वह प्रातः स्नानादि से निवृत्त होने के अनन्तर शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर **'मम मूत्रकृच्छ्रादि प्रशमन पूर्वकम् आयुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धयर्थं पुरुषसूक्तस्य सहस्त्रनामस्तोत्रस्य च यथा संख्यापरिमितपाठानहं करिष्ये'**। इस प्रकार संकल्प करके दोनों पुरुषसूक्त और विष्णुसहस्रनाम पृथक्-पृथक् पाठ करे।

(क)[2]

जो मनुष्य ब्राह्मण[3] कुल में जन्म लेकर गौड़ी, माध्वी और

---

1. मन्त्रमहार्णव।
2. व्यायामतीक्षणौषधरूक्षमद्यप्रसंगनित्यद्रुतपृष्ठमानात्।
   आनूपमांसद्यशनादजीर्णात् स्युर्मूत्रकृच्छ्र।। (माधव)
3. सूर्यारुण।

यवसम्भूत सुरा का पान करते हैं, उनको मूत्रकृच्छ्र होता है अथवा तीक्ष्ण भोजन, रुक्ष भोजन, सुरापान, घोड़े की सवारी, चक्रवाकादि का मांस और भोजन पर भोजन करने आदि से मूत्रकृच्छ्र होता है। इसका संबंध व्यक्ति के मुत्र संबंधी दोष से है। इसकी निवृत्ति के निमित्त सुवर्ण का अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में महाप्रभु ब्रह्मा जी का आवाहनादि षोडशोपचारों द्वारा पूजन करके सात्त्विक पदार्थों का एक समय भोजन करें और इस प्रकार प्रत्येक शुक्लपक्ष की द्वितीया को करता रहे।

(ख) बहुमूत्रहरव्रत

लोभवश[1] दुग्धादि पदार्थों को चुराने या उनको नष्ट भ्रष्ट करने से बहुमूत्र होता है। उसकी निवृत्ति के लिये काश्यप के कथनानुसार 'दुग्धधेनु' का दान और नक्तव्रत (रात्रि में एक बार भोजन) करना चाहिये।

8.24 अश्मरी उपशमन व्रत

पूर्व जन्म के अगम्यागमनादि महापापों के प्रभाव से अथवा वात, पित्त, कफ और शुक्र के विकृत होने से अश्मरी[2] का आक्रमण होता है। इसके प्रतिकार के लिये ज्योतिषशास्त्रोक्त शुभ मुहूर्त्त में प्रातः स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर–

'हरे राम हरे राम राम राम हरे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'

इस मन्त्र का दस हजार बार जप करें और पलाश (छीला) की समिधा तथा घी से इसी मन्त्र की एक हजार आहुति दें तथा दूध पीकर रहते हुए ईश्वर का स्मरण करें। इसमें आहार का नियम दुग्ध का पीना ही बतलाया गया है।

---

1. सूर्यारुण।
2. मुक्तकसंग्रह।

8.25 प्रमेहरोगोपशमनव्रत[1]

यह रोग अनेक प्रकार का होता है धर्मशास्त्रों के अनुसार किसी भी जन्म में माता,[2] सास, गुरुपत्नी, रानी तथा मित्र – माता में गमन करने से 'मधुमेह', भ्रातृभार्या (भौजाई) में गमन करने से 'जलमेह', भगिनी में गमन करने से 'इक्षु' (रस) मेह, अमा, पूर्णिमा या ग्रहण में स्त्री-प्रसंग करने तथा कन्या में गमन करने से 'व्याधिकर सर्वप्रमेह' और तिर्यग्योनि (पशु आदि) में गमन करने से 'शूलप्रयुक्त प्रमेह' होता है। आयुर्वेद के अनुसार सुख की उपस्थिति, सुख की निद्रा, सुखप्रद (स्त्रीप्रसङ्गकारी) स्वप्न और दूध-दही या नवीन अन्न जल खाने-पीने आदि से प्रमेह होता है। इसकी निवृत्ति के लिये यथायोग्य-क्षुधा और तृषा (भूख-प्यास) दोनों त्यागकर निराहार तीन उपवास, तीन यवमध्य, तीन चान्द्रायण तथा तीन कृच्छ्रचान्द्रायण, पुरुषसूक्त और विष्णुसहस्रनाम के पाठ करें और अधिक पाप (या पाप और रोग दोनों) हो तो प्रतिदिन **'या ते रुद्र.'** सूक्त से घी की एक हजार आहुति, सुवर्ण धेनु का दान और चालीस ब्राह्मणों को भोजन करावें। इससे सब प्रमेह शान्त होते हैं। वेदों में नवाह्नेष्टि का वर्णन मिलता है। इसके अन्तर्गत जो भी नवीन पदार्थ खेतों में उत्पन्न होते है। उन सभी से एक यज्ञ किया जाता है जिसको नवाह्नेष्टि कहते है। इसका कारण बतलाते हुए कहा गया है कि इससे अन्न का दोष समाप्त हो जाता है। ऐसा नहीं करने पर रोग की उत्पत्ति में एक कारण भी बन जाता है।

8.26 प्रदर रोग शमन व्रत

रक्त और[3] श्वेत दो प्रकार का प्रदर होता है। रक्त में स्त्री की जननेन्द्रिय से रक्त और श्वेत में रज (जिसको स्त्रियाँ धौले गिरते मानती हैं) बहता रहता है। पूर्वजन्म में गर्भस्रावादि या भ्रूणहत्या करने अथवा

---

1. अस्यासुखं स्वप्नसुखं ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि।
   नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः...।। (माधव)
2. अनुष्ठानप्रकाश।
3. मन्त्रमहार्णव।

बालकों को मारने से रक्त या श्वेत प्रदर होता है। इनमें 'रक्तप्रदर' प्राणान्तक और 'श्वेत प्रदर' स्त्रीत्वनाशक होता है। इनके निमित्त जितनी सामर्थ्य हो उतने भर सुवर्ण का यज्ञोपवीत बनवाकर माघ, फाल्गुन या वैशाख की शुक्ल त्रयोदशी को प्रातः स्नानादि से निश्चिन्त होकर व्रत धारण करें और पूर्वाभिमुख बैठकर सुवर्णनिर्मित यज्ञोपवीत का पूजन करके उसे दीन एवं सदाचारी ब्राह्मणों को दें अथवा भौम या शुक्रवार के दिन प्रबालभस्म और मुक्ताभस्म को शहद में मिलाकर **'अग्निर्मूर्धा दिवः.'** और **'अन्नात्परिश्रुतो.'** से घी के साथ 108 आहुति देकर ब्राह्मणों को घी तथा खीर का भोजन करावें और उनको विदा करके पति-पुत्रादिसहित स्वयं भोजन करें।

पूर्वजन्म में[1] माँ-बाप, भाई या गुरुजनों के साथ स्पर्धा (डाह) रखने आदि कारणों से प्रदर होता है। एतन्निमित्त **'तद्विष्णो.'** इस मन्त्र का प्रतिदिन एक हजार जप और चान्द्रायण व्रत करें तथा घी और शहदयुक्त अन्न का दान करके सात्त्विक पदार्थों का एक समय भोजन करें।

8.27 शोथ रोगहरव्रत

पर्वत की[2] तलहटी में, नदी आदि के तीर में या छाया की जगह (वृक्षादि के मूल) में मल-मूत्र या खखार आदि त्यागने के पाप से श्वयथु रोग होता है (इसको कोई-कोई दमा भी मानते हैं) इसकी शान्ति के लिये **'सर्वं इदं वो विश्वतः शरीरं.'** का 30118 बार जप करें और **'आपो हिष्ठा मयोभुवः.'** आदि से चरु (खीर) और घी की एक हजार आहुति दें तथा उपवास करें।

8.28 वृषण व्याधि विघातक व्रत

अज्ञानवश[3] गमन करें तो इस दोष की शान्ति के निमित्त तीन

---

1. मन्त्रमहार्णव।
2. मन्त्रमहार्णव।
3. विष्णुधर्मोत्तर।

चान्द्रायण व्रत करने चाहिए और यदि ज्ञानपूर्वक करें तो कृच्छ्रचान्द्रायण करना चाहिये तथा ज्ञानपूर्वक भी बहुत दिनों तक करें तो उसे अपना देह त्याग देना चाहिये। (उपर्युक्त पापों से ही वृष्ण-व्याधि होती है।)

8.29 गण्डमाला शमन व्रत[1]

गुरु से[2] द्वेष रखने और दूसरों का चित्त दुखाने से या मेद और कफ के कारण से गण्डमाल (काँख, कंधा, गला या सन्धि-प्रदेशादि में बेर या आँवले के समान छोटी-बड़ी बंड-गूगड़ी) होती है। इसके निमित्त चान्द्रायण व्रत और पुरुषसूक्त के एक हजार पाठ करें।

8.30 गलगण्ड हर व्रत[3]

अध्यापक[4] तथा गुरु के साथ प्रवञ्चनात्मक व्यवहार करने अर्थात् झूठी बातें अधिक बोलने से, गले में वात, कफ और मेद होने से उसके दोनों ओर गलगण्ड (गलसूंडे) हो जाते हैं। इनकी शान्ति के लिये ताँबे के पात्र में यथाशक्ति काले तिल भरकर उनके ऊपर मोतियों की माला रखें और उसे पञ्चोपचारों से पूजन करके शुद्धहृदय (निष्कपट) सदाचारी तथा धनहीन ब्राह्मण को दान दें और ग्रहशान्ति करें। इससे गलगण्ड शान्त होता है। व्रत करना भी आवश्यक है।

8.31 बभ्रू मण्डल हर व्रत

यह रोग[5] बभ्रूघात (नेवले की हत्या) आदि दोषों से उत्पन्न होता है। इसमें शरीर पर नेवले की आकृति के चिह्न-चकत्ते या गुल्म हो जाते हैं और उनसे स्वास्थ्य खराब होकर आकृति बिगड़ जाती है। इसके लिए यथाशक्ति सोना लेकर उसका नेवला बनवावें और व्रतपूर्वक उसकी पूजा

---

1. कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु।
   मदः कफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद् गण्डमाला...।। (माधव)
2. अनुष्ठानप्रकाश।
3. वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टो मन्ये समाश्रित्य तथैव मेदः।
   कुर्वन्ति गण्डं क्रमशस्त्रिलिङ्गैः समन्वितः तं गलगण्डमाहुः।। (माधव)
4. सूर्यारुण।
5. सूर्यारुण।

करके ब्राह्मण को दान कर दें। नेवला मनुष्य के लिए हानिकारक प्राणी नहीं है इसलिए उसका वध नहीं किया जाना चाहिए।

8.32 औदुम्बर हर व्रत

जन्मान्तर[1] में ताँबा का अपहरण करने से शरीर में औदुम्बर का उदय होता है। रोगी को चाहिए कि वह व्रत करके ताम्र दान करे।।

8.33 पाद चक्र व्रत

जन्मान्तर[2] में श्वान की हत्या करने से पादचक्र (पाँवों में चक्र-जैसे चिह्न) हो जाते हैं। उनके लिये वेदवेत्ता विद्वान् को यथाशक्ति सुवर्ण देकर उसके चरणोदक से उस चक्र-चिह्न को धोना चाहिये।

8.34 कुष्ठ रोग शमन व्रत

राजयक्ष्मादि[3] के समान यह रोग भी पूर्वजन्म में किये हुए अगणित जीवों की हत्या – जैसे महापापों का परिणाम है। किसी मनुष्य के शरीर में इस रोग का एक छींटा भी दीख जाये तो उसके प्रति जन समाज की अश्रद्धा और अरुचि हो जाती है। आयुर्वेद के अनुसार यह रोग अठारह प्रकार का होता है तथा शरीरगत वात, पित्त और कफ के कुपित होने एवं रक्त–मांस–त्वचा और जल के बिगड़ जाने से इसका उदय होता है। उन अट्ठारहों भेदों में से कपाल, उदुम्बर, मण्डल, सिघ्म, काकणक, पुण्डरीक और ऋक्षजिह्वा – ये सात 'महाकुष्ठ' माने गये हैं और कुष्ठ, गजचर्म, चर्मदल, विचर्चिक, विपादिक, पाषा, कच्छु, विस्फोटक, दद्रु, किट्टिस और अलसक – ये ग्यारह 'क्षुद्रकुष्ठ' हैं। इनमें किस दोष से कौन सा कुष्ठ होता है तथा किस प्रकार और कैसा कष्ट देता है, यह आयुर्वेद के मान्यतम ग्रन्थों में विस्तार के साथ बतलाया गया है तथा वहीं इसको दूर करने के लिये पृथक्-पृथक् उपाय भी बताये गये हैं। परन्तु बहुत से मनुष्यों की कोढ़ अनेक उपाय करने पर भी नहीं मिटती अपितु

---

1. सूर्यारुण।
2. सूर्यारुण।
3. भगवानशङ्कर।

बढ़ती ही जाती है। इससे जान पड़ता है, उनके पूर्वकृत पापों की निवृत्ति नहीं हुई है। कर्मविपाकसंग्रह में कुष्ठ की उत्पत्ति के मुख्य कारण इस प्रकार बतलाये गये हैं। पूर्वजन्म में गौ-ब्राह्मणादि की हत्या करने, घर खेती या जन्तुओं को जलाने तथा दीन-हीन या अपाहिज (लूले-लँगड़े, अन्धे-बहरे और असमर्थ) आदि का सर्वस्व हरण करने आदि कारणों से कुष्ठ रोग होता है। पाप की मात्रा के अनुसार ही कुष्ठ-रोग की भी मात्रा होती है और कोढ़ी मनुष्यों के साथ खाने-पीने, उनके वस्त्रादि धारण करने तथा उनके श्वासोच्छ्वास का स्पर्श होने आदि से यह रोग एक से दूसरे में प्रविष्ट होता है। वास्तव में इससे बचते रहना ही अच्छा है। यदि इसमें रोगी के साथ आहार-विहारादि का सम्बन्ध रखा जाये तो यह एक दूसरे में और दूसरे से तीसरे में फैल जाता है। सूर्यारुण ने इसके प्रतिकार का यह उपाय बतलाया है कि रोगी की जितनी सामर्थ्य हो उतनी तौल के सुवर्ण का वृषभ (नन्दिकेश्वर) बनवाकर उसको रेशमी वस्त्रों से सुशोभित करें। फिर गन्ध-पुष्पादि से अर्चित करके **'मम पूर्वजन्मार्जित समस्त पाप निरसन पूर्वकं प्रस्तुत कुष्ठोपशमन कामनया शिव प्रीतये वृषभं वयोवृद्धाय वेदाभ्यासिने सत्पात्रब्राह्मणायाहं दास्ये'** इस संकल्प के साथ उसका दान करें और रात्रि में एक समय भोजन करें।

जलजन्तु[1] (मच्छी, कछुए, मकर, मगरमच्छ और मुर्गा) आदि के प्राण लेने अथवा वस्त्रादि को लूटने आदि से 'श्वेत-कुष्ठ' होता है। इसके लिए सांतपन व्रत करें। न्यायपूर्वक अपराध का निर्णय किये बिना ही निर्दोष पर दोषारोपण करके उसे अनुचित दण्ड देने से मुखमण्डल पर 'कृष्णकुष्ठ' होता है। उसके लिये कृच्छातिकृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करें। क्षुद्र (छोटे) जीवों का वध करने से मुखविवर्ण कर (मुख को मधुमक्खियों के छत्ते जैसा कुरूप बनाने वाला) 'कुष्ठ' होता है। उसके लिए अतिकृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करके रजत-वृषभ (चाँदी के बैल-नन्दिकेश्वर) का दान करना चाहिये। ब्रह्महत्या करने से 'पाण्डुकुष्ठ'

---

1. महाभारत।

होता है। उसके लिये यथोचित स्नान, दान, जप, तप, (उपवास), ईश्वरस्मरण और विष्णुपूजन आदि सत्कर्म करने के अनन्तर शालग्राम जी की मूर्ति को काष्ठासनादि में सुस्थिर करके उनको जलपूर्ण एक सहस्र कलशों से स्नान करावें। साथ ही पुरुषसूक्त के पाठ तथा प्रत्येक कलश के साथ विष्णुसहस्रनाम के एक-एक नाम का **'ॐ विष्णवे नमः'** इत्यादि रूप से उच्चारण करता रहे और अभिषेक समाप्त होने पर चार ब्राह्मणों को उत्तम पदार्थों का भोजन करवाकर स्वयं एक समय भोजन करें। पूर्वजन्म में गौ-ब्राह्मणों का घात करने के महापाप से मनुष्य के शरीर में 'गलितकुष्ठ' होता है, जिसमें से रक्त, जल और चेप सदैव झरते रहते हैं। हाथ, पाँव, अङ्गुली, अगूँठे, भौंह, पीठ और कटि आदि सम्पूर्ण अङ्गों में घात, क्षत या फूटे हुए फोड़े चिन्ह हो जाते हैं और उनमें दुर्गन्ध निकलती रहती है। यह कोढ़ आमरण रहता है। बल्कि संसर्गदोषवश यह रोग उसकी मृत्यु के पश्चात् बेटे-पोते तक के शरीर में भी होता है। इसकी पीड़ा से मुक्त होने या शान्ति-लाभ करने के लिए यथा सामर्थ्य सोने या चाँदी का कालपुरुष बनवावें। उसके चक्राकार गोलवृत्त से बहुत-सी किरणें भी निकलती हों और देखने में ग्रह, तारा या सूर्य-जैसा मालूम हो। तदनन्तर उसको वस्त्र से ढकी हुई चौकी पर विराजमान कर गन्ध-पुष्पादि से पूजन करें और वेदज्ञ, विधिज्ञ एवं बहुज्ञ ब्राह्मण को भोजन कराकर उसका यथाविधि दान करें। इसी तरह अधिक मात्रा में चाँदी की अनेक बार चोरी करने से 'चित्रकुष्ट' होता है। उसमें मनुष्य के शरीर में सर्वत्र ही चित्र-विचित्र सफेद धब्बे हो जाते हैं, जिनसे उसका स्वरूप बिगड़ जाता है। उक्त पाप का परिहार करने के लिए कुरुक्षेत्र में जाकर तीन प्राजापत्यव्रत करें और व्रत के दिनों में अपनी शक्ति के अनुसार तीन पल (लगभग बारह तोला) सुवर्ण में से प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा असमर्थ मनुष्यों को दान दें।

8.35 अर्बुद हर व्रत

यह रोग[1] किसी अंश में कुष्ठ के ही समान है, और वह फोड़े के

1. हिन्दी विश्वकोश।

रूप में प्रकट होता है और चमड़े के नीचे मांस, नस, नाड़ी या हड्डी आदि में उत्पन्न होकर स्वतन्त्र रूप से बढ़ता है। यदि यह साधारण हो तो उचित उपाय से रुक जाता है और यदि रक्त में जा पहुँचे या उसके होने के बाद रक्त में कोई दोष आ जाये तो फिर यह किसी सामान्य उपाय से नहीं मिटता। अर्बुद का उदय प्रायः नाक, कान, जीभ, मस्तिष्क, यकृत् (जिगर), वक्षस्थल, मूत्राशय, गर्भाशय अण्डाधार, अथवा योनि के अन्दर और जेर के समीप होता है। स्त्रियों में यह रोग गर्भगत बालक के समान क्रमशः बढ़ता है और समय पूरा होने पर पुत्रप्रसव के बदले प्राणान्तकारी हो जाता है। इस रोग की शान्ति के लिए नियमपूर्वक चार प्राजापत्यव्रत करें और यथाशक्ति सप्तधान्यों का दान दें। यवगोधूमधान्यानि तिलाः कंगुस्तथैव च। श्यामका चणकाश्चैव सप्तधान्यामिसंविदुः के अनुसार जौ, गेहूँ, धान, तिल, ककून, सावाँ, चना इनको सप्तधान्य कहा जाता है।

8.36 वर्वराङ्गत्वहरव्रत

लोहादि[1] के हरण से वर्वराङ्ग होता है। इसकी निवृत्ति के लिये प्राजापत्यव्रत करके सौ पल (लगभग पाँच सेर) लोहे का दान और निराहार उपवास करें। इससे एक या तीन बार में शरीर की शुद्धि होती है।

8.37 कण्डूरोगोपशमनव्रत

कुत्सित पापों[2] के कारण कण्डु (खाज-खुजली या धरड़ दाद) होता है। इसके लिए सुवर्ण के लक्ष्मीनारायण और गणेश जी बनवायें और उनका षोडशोपचार से पूजन करके यथाविधि दान और व्रत करें। इस रोग में व्यक्ति खुजली से परेशान रहता है।

---

1. सूर्यारुण।
2. सूर्यारुण।

8.38 गजचर्म हर व्रत

जन्मान्तर[1] में गजाधिपति होकर गज को मरवा डालने से गजचर्म का रोग होता है। यह भी कोढ़ की ही श्रेणी में है। इसमें चर्म के ऊपर खाज और उसके नीचे अनेक चींटियों के काटने–जैसा दर्द होता है। इसकी निवृत्ति के लिये यथाशक्ति सुवर्ण के गणेशजी बनवाकर पूजन करें और उन्हीं के सम्मुख बैठकर **'ओं वक्रतुण्डाय हुम्'** इस मन्त्र का प्रतिदिन दस हजार जप और एक हजार आहुति दें तथा एक ब्राह्मण को प्रतिदिन मोदक (लड्डू आदि) भोजन करवाकर स्वयं एकभुक्त व्रत करें। इस प्रकार इक्कीस दिन करके उस सुवर्ण प्रतिमा का दान करें तो उससे गजचर्म मिट जाता है। यह चर्म रोग की श्रेणी में आता है।

8.39 दद्रुहरव्रत

गौ, ब्राह्मण[2] और देवता आदि के स्थान में, सर्वसाधारण के बैठने–उठने के स्थानों में नद, नदी, तालाब या किसी भी जलाशय में अथवा पुण्य करने के स्थान, मकान या तीर्थों में मल–मूत्रादि का त्याग करने से 'दद्रु' (दाद) रोग होता है। इसकी निवृत्ति के लिये सुवर्णमय चतुर्भुज शिवजी, द्विभुज पार्वती जी और चाँदी का नन्दिकेश्वर (नांदिया) तथा घण्टा बनवाकर वेदपाठी ब्राह्मण से पूजन करावें और **'सर्वेश्वराय विद्महे शूलहस्ताय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्'** अथवा **'त्र्यम्बकं यजामहे.'** या **'ॐ नमः शिवाय'** के जप और इनके दशांश हवन करके दारिद्यग्रस्त, धर्मज्ञ एवं परिवारयुक्त ब्राह्मण को उपर्युक्त शिव–पार्वती, नांदिया और घण्टा का अन्य सामग्रियों सहित दान करें। दान देते समय यह प्रार्थना करें कि–

कैलासवासी भगवानुमया सहितः परः।
त्रिनेत्रश्च हरो दद्रुरोगमाशु व्यपोहतु॥

---

1. सूर्यारुण।
2. सूर्यारुण।

इसके बाद दान लेने वाले को विदा करें। दान लेने वाला दाता को रोग मुक्ति का आशीर्वाद दे।

8.40 लूता जनित रोग हर व्रत

अज्ञानवश सगोत्री[1] का वध करने से लूता (मकड़ी) के विषय से उत्पन्न फोड़ा, फुंसी एवं खाज होती है। उसके उपशमनार्थ तीर्थस्थान में जाकर स्नान-ध्यान और जप करना चाहिए। तीर्थों में स्नान करने से पापों के समूहों का विनाश होता है।

8.41 कृष्ण गुल्म शमन व्रत

पूर्व जन्म[2] के किये हुए महिषी–वधादि पापों से पीड़ाकारक कृष्णगुल्म (कालीगुमड़ी) का रोग होता है। यदि पापाधिक्य हो तो इसकी भीषणता बहुत बढ़ जाती है और इससे प्राणान्त हो जाता है। इसकी शान्ति के लिये विधिपूर्वक भैंस का दान करें और दो कम्बल भी ब्राह्मण को दें। काली चीजों का दान भी इसमें देना चाहिए।

8.42 अन्त्रवृद्धिविरोधकव्रत

यह रोग[3] गुह्यस्थान (उदर) आदि के अंदर उत्पन्न होता है। इसके लिये कृच्छ्रातिकृच्छ्र करके सौ ब्राह्मणों को भोजन करावें, महिषी (भैंस) का दान करें, **'उद्यन्ति.'** मन्त्र का जप और उसके दशांश का हवन एवं उपवास करें इसके करने से अन्त्रवृद्धि रुक जाती है।

8.43 मेद हर व्रत

पूर्वजन्म[4] में दधि–दुग्धादि के अपहरण करने से मेद (मांसग्रन्थि) का रोग होता है। यह समूचे शरीर में किसी भी जगह अत्यन्त सूक्ष्म रूप

---

1. सूर्यारुण।
2. सूर्यारुण।
3. सूर्यारुण।
4. सूर्यारुण।

से उत्पन्न होकर पीछे बहुत बड़ा हो जाता है और नाभि, नेत्र, मस्तक या गले आदि में कटहल की भाँति बढ़कर बड़ा संताप देता है। इसके निवारण के लिये व्रत करके दुग्ध-धेनु दान करें। जैसे जल धेनु का निर्माण होता है उसी तरह दुग्ध धेनु का भी प्रयोग होता है।

8.44 श्लीपद हर व्रत

यह रोग[1] पाँवों में होता है। इससे हाथी के जैसे पाँव हो जाते हैं। एतन्निमित्त चान्द्रायण या अतिकृच्छ्र चान्द्रायण करना चाहिए। इस रोग को लोक में हाथी पाव भी बता देते है।

8.45 शीर्ष रोग उपशमन व्रत

गुरुजनों[2] के साथ विरोध या विवाद करने आदि से शिरोरोग होते हैं। उनके लिये **'उद्यन्नद्य.'** ऋचा का जप और कुष्माण्डी का हवन करके उपवास करें अथवा सुवर्णमय यज्ञोपवीत का दान दें।

8.46 खल्वाटत्व हर व्रत

स्त्री हो या पुरुष,[3] परनिन्दा करने से मस्तक के बाल उड़ जाते हैं। इस पाप की निवृत्ति के लिये धेनु और कम्बल दान करें। क्वचित् खल्वाट निर्धनः कहते हुए खल्वाट निर्धन नहीं होता है ऐसा शास्त्रों में वर्णित है।

---

1. सूर्यारुण।
2. अनुष्ठानप्रकाश।
3. सूर्यारुण।

9. नेत्र रोग हर व्रत

9.1 नेत्ररोग उपशमन व्रत

प्रत्येक व्यक्ति के शरीर का मुख्य अंग नेत्र है जिसके अभाव में किसी भी पदार्थ का दिग्दर्शन नहीं होता इसी को नेत्र रोग कहते हैं। नेत्र रोग के कारणों की चर्चा करते हुए शास्त्रों में कहा गया है कि–दूसरे की[1] दृष्टि का नाश करने, कामान्ध होकर परस्त्रियों को देखने और झूठे ही (बिना वैद्यक पढ़े) वैद्य बन जाने आदि से अथवा गर्मी से संतप्त होकर जलस्नान करने, दूर की वस्तु देखने, दिन में सोकर रात में जागने, नेत्रों में बाफ या पसीना गिरने, धूल पड़ने या धूआँ आदि लगने आदि के कारणों से नेत्ररोग होते हैं। उन्हें दूर करने के लिये चान्द्रायण और पराकव्रत करके **'ॐ वर्चोदा असि वर्चो मे देहि'**। इस मन्त्र का जप करें और घी में कुछ सुवर्ण डालकर अग्नि में घी की आहुति दें तथा सुवर्ण सत्पात्र को दे दें; फिर लाल शर्करा, गो-धूम तथा घी के बने हुए पदार्थ का एक बार भोजन करें। अथवा सूर्यारुण 233' के अनुसार कुरुक्षेत्र जैसे तीर्थ में जाकर घृत-धेनु का दान करें।

9.2 रात्र्यन्धत्वहरव्रत (रतौंधी)

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनको दिन में तो दिखलायी देता है परन्तु रात्रि में नहीं दिखायी देता है इस रोग को रतौंधी कहा गया है। इसका कारण बतलाया गया है कि जन्मांतर[2] में दूसरे का उच्छिष्ट भोजन करने अथवा विडालादि का खाया हुआ खाने से रात्र्यन्धत्व (रतौधी)

---

1. मन्त्रमहार्णव।
2. सूर्यारुण।

होता है। इसकी निवृत्ति के लिये यथारुचि गोमूत्र पीयें और ब्राह्मणों को भोजन करावें। इस प्रकार एक-दो या तीन बार करें। यदि स्त्री को रतौंधी हो तो उसको भी गोमूत्र-पान करना चाहिए।

9.3 नेत्रपूयहरव्रत

मैथुननिरत[1] मिथुन के निरीक्षण से नेत्रों में पूयरोग हो जाता हैं। उससे आँखों में चेप, पानी या गीड़ आता रहता है और उनके कोये फूल जाते हैं। इनके लिये यथाशक्ति जप, होम और व्रत करके सुवर्णमयी सूर्यप्रतिमा को त्रिपादी (तिपाई) पर सुस्थिर करके रखें तथा गन्धाक्षत-पुष्प और दूध डाले हुए शुद्ध जल से ताँबे का कलश भरकर सूर्यमूर्ति को स्नान करावें। इस प्रकार एक हजार कलश चढ़ावे और प्रतिकलश के साथ **'ज्योतिः प्रदाय सूर्याय नमः'** बोलता रहे अथवा आदित्यहृदय का पाठ करता रहे। इस प्रकार सहस्र कलशों द्वारा अभिषेक करने के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करावें।

9.4 नेत्रगतसर्वरोगोपशमनव्रत

नेत्र ज्योति[2] कम हो जाने, दृष्टि में दोष आ जाने, फूला, चौंधिया या आधाशीशी आदि से नेत्रों में खराबी आ जाने आदि की निवृत्ति के लिये 'नेत्रोपनिषद्' के एक हजार पाठ करवाकर सूर्यनारायण की उपासना और रविवार का व्रत करना चाहिये। गीता प्रेस से प्रकाशित नित्य कर्म पूजा प्रकास में भी चाक्षुषी विद्या का विधान किया है।

'नेत्रोपनिषद्' अथातश्चाक्षुषीं पठितसिद्धविद्यां चक्षूरोगहरां व्याख्यास्यामो यया चक्षूरोगाः सर्वतो नश्यन्ति। चक्षुषो दीप्तिर्भवति।

विनियोग– अस्याश्चाक्षुषविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, सविता देवता, चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः। (हाथ में जल लेकर विनियोग पढ़कर आगे छोड़ें)

---

1. कर्मविपाकसंग्रह।
2. चाक्षुषी विद्या।

ॐ चक्षुश्चक्षुश्चक्षुस्तेजः स्थिरो भव। मां पाहि त्वरितं चक्षुरोगान् शमय शमय मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय यथाहमन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्याणं कुरु कुरु। मम यानि पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुः प्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय। ॐ नमश्चक्षुश्तेजोदात्रे दिव्यभास्कराय ॐ नमः करुणाकरायामृताय। ॐ नमः सूर्याय। ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय। उष्णो भगवान् शुचिरूपः। हंसो भगवान् सुचिरप्रतिरूपः। य इमां चाक्षुष्मतीं विद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुलेऽन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्या सिद्धिर्भवति। ॐ विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं हिरण्यमयं ज्योतीरूपं तपन्तः। सहस्ररश्मिभिः शतधावर्तमानः पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।

ॐ नमो भगवते आदित्याय अवाग्वादिने स्वाहा।' इति (कृ.य. चाक्षुषोप.)

9.5 नेत्रगत सर्वरोग हर व्रत

ताँबे के पात्र[1] को जल से पूर्ण करके उसमें लाल चन्दन और पुष्प तथा लाल अक्षत डालें और उस जल से अर्घा अथवा दोनों हाथों की अञ्जलि भरकर **ॐ उद्यन्नद्य मित्रसह सूर्यं तर्पयामि 1**' यह मन्त्र बोलकर सूर्य के सम्मुख छोड़ दें। इसी प्रकार **ॐ आरोहन्नुत्तरां दिशं सूर्यं तर्पयामि 2' 'ॐ हृद्रोगं मम सूर्यं तर्पयामि 3' 'ॐ हरिमाणं च नाशय सूर्यं तर्पयामि 4' 'ॐ शुकेषु हरिमाणं सूर्यं तर्पयामि 5' 'ॐ रोपणाकासु दध्मसि सूर्यं तर्पयामि 6' ॐ अथो हारिद्रवेषुवे सूर्यं तर्पयामि 7' 'ॐ हरिमाणं निदध्मास सूर्यं तर्पयामि 8' 'ॐ उदगादयमादित्यः सूर्यं तर्पयामि 9' 'ॐ विश्वेन सहसा सह सूर्यं तर्पयामि 10' 'ॐ द्विषन्तं मह्यं रंधयन् सूर्यं तर्पयामि 11' 'ॐ ओमोमहं द्विषतेरधं सूर्यं तर्पयामि 12**' इनके उच्चारण से सूर्य के

---

1. शौनक व्याख्या।

सम्मुख जल छोड़े। इसके पीछे उपर्युक्त **'उद्यन्नद्य मित्रसह आरोहन्नुत्तरां दिशं सूर्यं तर्पयामि'** कहकर सूर्य के सम्मुख जल छोड़ें। इस प्रकार दो-दो उच्चारण से दूसरी बार और फिर उक्त **'उद्यन्नद्य.'** आदि चार-चार पद के एक-एक करके 'सूर्यं तर्पयामि' कहते हुए तीसरी बार जल छोड़ें। इसमें पहले में बारह, दूसरे में छः और तीसरे में तीन जलाञ्जलि दी जाती है। ये सम्पूर्ण तीन ऋचा हैं। जिनके बारह पदों से बारह, दो-दो के युगल के से छः और चार-चार के पूरे मन्त्र से तीन जलाञ्जलियाँ दी जाती हैं। इस तर्पण से नेत्रसम्बन्धी सर्वरोगों का शमन तो होता ही है, श्रद्धा के साथ पाद-ऋचाओं से बारह बार? अर्धऋचाओं से दस बार, सर्वऋचाओं से तीन बार, सार्धऋचाओं से दो बार और तीनों ऋचाओं से एक बार की कुल चौबीस जलाञ्जलि देकर तर्पण करने से नेत्ररोग, ज्वररोग, विस्फोटक और सर्पविष तक दूर हो जाते हैं। परन्तु यह ध्यान देना आवश्यक है कि सामान्य या कठिन-जैसा रोग अथवा विष हो उसी के अनुसार अट्ठाईस[1] या एक सौ आठ बार करना चाहिए।

एक नेत्र के[2] दृष्टि दोष की शान्ति के लिये रजतमय शुक्रमूर्ति का गन्धाक्षतादि से पूजन करके तत्समीप में बैठकर **'शुक्रज्योतिश्च.'** इस ऋचा का एक सहस्र बार जप करके इसी मन्त्र से पलाश की समिधाओं को गाय के घी में डुबोकर उनकी एक सौ आहुति दें और हविष्यान्न (जौ, गेहूँ या चावल) का एक समय भोजन करें। इस प्रकार इक्कीस, इक्यावन या सौ व्रत करने से एक नेत्र के रोग की शान्ति होती है।

---

1. अस्य सकलस्यापि तर्पणप्रयोगस्यव्याख्या-नुसारेणाष्टाविंशतिरष्टोत्तरशतमित्याद्यावृत्तिः कल्पनीया। (अनु. प्रकाश)
2. मुक्तक संग्रह।

10. अन्य रोग हर व्रत

10.1 कर्णरोगशमनव्रत

माता, पिता,[1] और गुरु तथा गौ, ब्राह्मण और देवता इनकी निन्दा सुनने से कर्ण रोग होता है। उसकी निवृत्ति के लिये चार कृच्छ्रव्रत करके सौरमन्त्र (पूर्वोक्त 'उद्यन्नद्य.' इन तीनों ऋचा) के जप और उसके दशांश का हवन करके ब्राह्मणों को भोजन करावें तथा सुवर्णसहित लाल वस्त्रों का दान करें।

10.2 बधिरत्वहरव्रत

पूर्वजन्म में अपनी पत्नी की माता (सास) को मारने से दूसरे जन्म में बधिरत्व (बहरापन) प्राप्त होता है। उसके लिये चान्द्रायण व्रत करके सुवर्णसहित पुस्तक का दान करने से बधिरत्व[2] दूर होता है।

10.3 नासारोगहरव्रत

लवणादि[3] का अपहरण करने से नाक के रोग होते हैं; उनके उपशमनार्थ **'उद्यन्नद्य.'** तीनों ऋचाओं का एक सौ आठ आहुति देकर ब्राह्मण को भोजन करावें और स्वयं गोदान करें।

10.4 मुखरोगहरव्रत

झूठी गवाही[4] देने से मुख में रोग होते हैं। इनकी शान्ति के लिये कृच्छ्रातिकृच्छ्र चान्दायण व्रत करके गायत्री के अयुत (दस हजार) जप

---

1. मन्त्रमहार्णव।
2. सूर्यारुण।
3. मन्त्रमहार्णव।
4. मन्त्रमहार्णव।

और कुष्माण्डी का हवन करें तथा चावलों का दान करके भात खाकर एकभुक्त व्रत करें।

10.5 मूकत्वहरव्रत

पूर्वजन्म में[1] भाई की हत्या और विद्वानों से विवाद करने के पाप से मनुष्य मूक (गूँगा) होता है। इसके निमित्त माघशुक्ला पञ्चमी या पूर्णिमा को प्रातःस्नानादि के पश्चात् चौकी पर अष्टदल कमल लिखें और उसके ऊपर षट्शास्त्रों सहित ऋगादि चारों वेदों की स्थापना करके उनका पञ्चोपचार से पूजन करावें। फिर चार या छः अथवा दस ब्राह्मणों को मीठे पकवान भोजन कराकर उन्हें यथायोग्य पूजित पुस्तकें अर्पण करें। इस व्रत में पूजा के प्रारम्भ का संकल्प तथा मन्त्रों का उच्चारण मूक के पिता या आचार्य को करना चाहिये।

10.6 कण्ठ गत रोग का व्रत

लोगों को[2] लोभवश ठगने या जलाशय के समीप में बैठे हुए बगुलों को मारने से उत्पन्न हुए कण्ठरोग की शान्ति के लिये सफेद रंग की पयस्विनी गौ का दान करना चाहिये; इससे आरोग्य-लाभ होता है।

10.7 दुर्गन्ध नाशक व्रत

मोहवश[3] माक्षिक मधु (शहद) का हरण करने या मधु का क्रय-विक्रय करने से मुख में अथवा सर्वाङ्ग में दुर्गन्ध होती है। उसकी शान्ति के लिये अमावस्या, पूर्णिमा या व्यतीपातादि के दिन मधु-धेनु का दान करके उपवास करें। कितने लोगों का पसीना भी बहुत दुर्गन्ध युक्त होता है।

10.8 अपस्मार हर व्रत

गुरु तथा मालिक[4] के प्रतिकूल आचरण करने आदि से अपस्मार

1. सूर्यारुण।
2. सूर्यारुण 116।
3. सूर्यारुण 690।
4 मन्त्रमहार्णव।

(मृगी) रोग होता है। इसकी निवृत्ति के लिये चान्द्रायणव्रत करके **'सदसस्पति'** मन्त्र से चरु ओर घी की आहुति दें। अथवा **'कया नश्चित्र.'** मन्त्र से दस हजार बार आहुति और एक सौ जलाञ्जलि (तर्पण) करें।

10.9 भगन्दर रोग शमन व्रत

जो मनुष्य धर्म[1] की शपथ के साथ लोक-कल्याणकारी कर्म का आरम्भ करके उसमें बाधा उपस्थित होने के लिये अधर्मकारी काम करें या अपने गोत्र की स्त्री के साथ प्रसङ्ग करें, उसको भगन्दर रोग होता है। इसके निमित्त मेष (मेढा) का विधिपूर्वक दान करके एकभुक्त व्रत करना चाहिये।

माघ या वैशाख के शुक्लपक्ष[2] में सप्तमी रविवार को प्रातः स्नानादि करके पश्चात् आक के पत्ते के आसन पर बैठकर सूर्याभिमुख हो यथाशक्ति सोना, चाँदी, या ताँबे के पात्र में गाय का घी भरे और उसमें यथासम्भव माणिक्य आदि रत्नों के कण को डालकर गन्धादि से पूजन करें। पीछे सूर्यादि ग्रहों के मन्त्रों से आठ, अट्ठाईस या एक सौ आठ आहुति देकर उक्त घृतपूर्ण पात्र का दान करें। दान देते समय

'आदित्यादिग्रहाः सर्वे नवरत्नप्रदानतः।
विनाशयन्तु मे दोषान् क्षिप्रमेव भगन्दरम्।।'

इस मन्त्र को पढ़ें।

10.10 गुदा के रोग हर व्रत

रोगी को[3] चाहिये कि वह श्रावण शुक्ल प्रतिपद से भाद्रपदी अमावस्यापर्यन्त या अन्य किसी भी सुअवसर में एक मास तक विष्णु और शिव का वेदोक्त मन्त्रों से षोडशोपचारों द्वारा पूजन करें, गौ का दान दें और प्राजापत्य व्रत करके सुपूजित मूर्ति वेदवेत्ता विद्वान् को अर्पण

---

1. पद्मपुराण।
2. सूर्यारुण 85।
3. सूर्यारुण– 175।

करें। इस प्रकार करने से गुदा में या उसके आस-पास होने वाले रोग शान्त हो जाते हैं।

10.11 पङ्गुत्व हर व्रत

पूर्वजन्म में[1] कुक्कुट (मुर्गा) आदि के मारने वाले मनुष्य पङ्गु होते हैं। उनको चाहिये कि वे सुवर्णादि का दान करके पक्षियों का पालन करें।

(क)

यदि पूर्वजन्म में शृगाल[2] (गीदड़) की हत्या की गयी हो तो दूसरे जन्म में हत्यारे मनुष्य को पङ्गु होना पड़ता है उस हत्या के पाप से छुटकारा पाने के लिये सुवर्णयुक्त घोड़े का दान और व्रत करें।

10.12 कुब्जहरव्रत

जन्मान्तर में[3] किये हुए शश, मृग या मूषकादि के घातजन्य पाप से मनुष्यों को कुब्जत्व प्राप्त होता है। इस दोष को दूर करने के लिये व्रत करके विधिपूर्वक सोपस्कर (वस्त्राभूषणादि सहित) शय्या का दान करें।

10.13 कुनखत्वहरव्रत

सुवर्ण का[4] अपहरण करने से कुनख रोग होता है। उसकी निवृत्ति के निमित्त कार्तिक मास में चान्द्रायण व्रत और राममन्त्र जप करने चाहिये।

10.14 दन्तहीनत्वदोषहरव्रत

किसी जन्म में वराह की हत्या करने से मनुष्यों को दन्त हीनत्व

---

1. सूर्यारुण – 518।
2. सूर्यारुण – 1332।
3. सूर्यारुण – 1650।
4. सूर्यारुण – 262।

दोष[1] प्राप्त होता है। उस पाप की निवृत्ति के लिये घी में यथाशक्ति सुवर्ण डालकर उसका दान करें या ताँबे के कलश को घृत पूर्ण करके गरीब को दें।

10.15 शीर्षव्रणहरव्रत

जन्मान्तर में नारिकेल (नारियल या श्रीफलों) के अपहरण करने से मुखमण्डल[2] को शोभाहीन बनाने वाला शीर्षव्रण होता है। उसके निवारण के निमित्त शिवजी के मन्दिर में जाकर उनका यथाविधि पूजन करें और नारियल का फल चढ़ावें। इसी प्रकार पार्वती जी की भी यथावत् पूजा करें। फिर हाथ जोड़कर

'यन्मया नारिकेलानि हृत्वा पापुपार्जितम्।
अर्चितो भगवान्रुद्रो भवान्या भयभञ्जनः।
यथाशक्ति च दानाद्यैर्भवन्तोऽपि च पूजिताः।
कर्मणानेन मे नाशमुपेतु शिरसो व्रणः॥'

इस मन्त्र से प्रार्थना करके फलाहार करें।

10.16 शेफस व्रण हरव्रत

म्लेच्छ स्त्रियों में अभिगमन करने से इन्द्रिय के अग्रभाग पर शूकोत्थ (इन्द्रिय को दीर्घ करने वाला दुष्टव्रण) होता है। इसके होने से शुक्र, मूत्र और पुरीषादि के त्याग में बड़ी असुविधा होती है। भरत ने लिखा है कि रेतस्स्राव के समय शेफस्सञ्चित जलस्राव हो जाता है। इस अनिष्टकर व्रण को दूर करने के लिये शुक्लपक्ष की द्वादशी को सूर्योदय से पहले किसी स्वच्छ जलवाले जलाशय पर जाकर प्रातः स्नानादि करने के अनन्तर हाथ में जल, फल और गन्धाक्षत लेकर **'मम तिलजीति प्रसिद्ध शूकोत्थ शेफसव्रण निरसनपूर्वकं मेढ़गत सर्वरोग प्रशान्तये च श्री वरुणदेवमहं पूजयिष्ये।'** इस प्रकार संकल्प करके

---

1. सूर्यारुण – 1871, 1875।
2. सूर्यारुण – 1991।

वरुण का यथाविधि पूजन करें और यजुर्वेद के विद्वान् ब्राह्मण को गौ देकर फलाहारपूर्वक व्रत करें।

10.17 योनिगतव्रतहरणव्रत

पति के[1] परलोक वास के पश्चात् जो स्त्रियाँ परपुरुष के साथ सहवास करती हैं, उनके उसी दूसरे जन्म में मूत्रद्वार में ऐसा व्रण होता है जिससे सहवास के अनन्तर उनको बड़ी पीड़ा होती है। इस पाप की शान्ति के लिये नीलवृष का दान करके घी, तिल और शर्करा का हवन करें। मन्त्रमहार्णव में यह विधान पाया जाता है।

10.18 स्त्री स्तन स्फोटक हर व्रत

पति की[2] उपस्थिति में परपुरुष से प्रेम करने के पाप से परिणाम में उसके स्तन पर फोड़ा और मूत्रद्वार से रक्तस्राव होता है उसकी शान्ति के लिए पाँचों लवण (सेंधा, साँभर, विड, संचर, और श्याम) हल्दी धान्य और वस्त्रादि के साथ सुपूजित गौ का दान करें।

10.19 वातकृत रक्तस्राव हर व्रत

सवर्षा में गमन करने[3] से वातकृतरक्तस्राव होता है। उसके लिये छः वर्षों तक कृच्छ्र व्रत करना चाहिये। वृद्धबौधायन का यह कथन है।

10.20 गर्भस्रावहरव्रत

पूर्वजन्म में दूसरी स्त्रियों[4] के गर्भस्राव कराकर भ्रूण हत्या कराने के पाप से स्त्रियों को गर्भस्राव होता है। उसके लिये सोने का यज्ञोपवीत बनवाकर दान दें। यह शातातप ऋषि का विचार है।

---

1. मन्त्रमहार्णव।
2. ऋग्वेद विधान।
3. वृद्धबौधायन।
4. शातातप।

10.21 बन्ध्यात्वहरगौरीव्रत

यदि ब्राह्मणी होकर वैश्य के साथ या वैश्या होकर शूद्र के साथ[1] सहवास करें तो वह दूसरे जन्म में वन्ध्या होती है। इस पाप की शान्ति के लिये मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से प्रारम्भ करके सोलह दिन तक गौरीपूजन के साथ एकभुक्त व्रत करें तथा 'बन्ध्यत्वहरगौर्यै नमः' इस मन्त्र का प्रतिदिन सोलह हजार जप करें। तत्पश्चात् समाप्ति के दिन तिल-तैलपूर्ण सोलह दीपक जलाकर गौरी के सम्मुख रख दें और रात में जागरण करें। फिर दूसरे दिन सोलह दम्पत्ति (ब्राह्मण-ब्रह्माणी) को भोजन करवाकर सोलह सौभाग्याष्टक दान करें। सूर्यारुण में यह बाते आयी है।

10.22 षण्ढत्वहरव्रत

अविवाहिता[2] षोडशवर्षीया कुमारिका के साथ बलात्कार करने से मनुष्य षण्ढ (हीजड़े) होते हैं। उनको चाहिये कि वे प्रतिदिन बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) का पूजन करके व्रत करें।

10.23 उन्मादरोगहरव्रत

यदि[3] पुरुष यौवन से उन्मत्त होकर अबलाओं पर बलात्कार करें या स्त्री स्वच्छन्दरूप में रहकर सर्वत्र विचरे तो उन्माद रोग (पागलपन) होता है। इसकी निवृत्ति के लिये व्रत करके सुवर्ण के ब्रह्माजी का और ताँबे के मृग का पूजन करें। साथ ही गायत्री का जप तथा हवन करें।

10.24 जालन्धर रोग हर छाया पात्र विधान व्रत

चौसठ पल के[4] परिमाण वाले कांस्यपात्र को घृत से पूर्ण करके उसमें सुवर्ण के कण डाल दें; फिर उस घी में अपने सम्पूर्ण शरीर की

---

1 सूर्यारुण – 174, 347, 388।

2. सूर्यारुण – 243।

3. सूर्यारुण – 226–233।

4. कर्मकौस्तुभ।

छाया को देखकर उसका दान करें। देते समय

आयुर्बलं यशोवर्च आज्यं स्वर्ण तथामृतम्।
आधारं तेजसा यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।

इस मन्त्र का उच्चारण करें। इसके बाद व्रत करके यथाशक्ति दुग्धपान कर उपवास करें। यह कर्म कौस्तुभ का कथन है।

10.25 सर्वव्याधिहरव्रत

श्रेष्ठ पात्र में उत्तम श्रेणी के चावल भरकर उसे वस्त्र से ढक दें। फिर उसमें हर प्रकार की व्याधियों के उपस्थित होने की भावना करके उनका गन्ध-पुष्पादि से पूजन करें। साथ ही विद्वान् ब्राह्मण का पूजन करके उसे तण्डुल से भरे हुए पात्र को श्रद्धा के साथ उसे दान दें, उस समय

'ये मां रोगाः प्रबाधन्ते देहस्थाः सततं मम।
गृह्णीष्व प्रतिरूपेण तान् रोगान् द्विजसत्तम्।।'

इस श्लोक का उच्चारण करें। तदनन्तर प्रतिग्राही को यथाशक्ति वस्त्राभूषण, भोजन और दक्षिणा आदि देकर विदा करें। इससे सम्पूर्ण रोग शान्त होते हैं।[1] महर्षि शातातप ने यह विचार प्रतिपादित किये हैं।

10.26 प्रसवपीड़ाहरव्रत

पलाशपत्र के दोने में[2] एक पल (लगभग चार तोला) तिल का तेल भरकर दूर्वा के इक्कीस पत्रों द्वारा प्रदक्षिणा-क्रम से उसका आलोडन करें (दूर्वाङ्कुरों को तेल में घुमावें)। उस समय प्रत्येक बार के आलोडन में

'हिमवत्युत्तरे पार्श्वे शबरी नाम यक्षिणी।
तस्या नूपुरशब्देन विशल्या स्यात्तु गर्भिणी।।'

का उच्चारण करना चाहिए। ऐसा संस्कार प्रकाश में लिखा गया है।

---

1. शातातपादि।
2. संस्कारप्रकाश।

10.27 कृष्णव्रत

प्रौढ़ावस्था में भी पुत्र न हो तो यज्ञोपवीत धारण करके श्रीकृष्ण या गणेश के मन्दिर में अथवा गोशाला या पीपल, गूलर या कदम्ब वृक्ष के नीचे बैठकर कमल, कदम्ब या तुलसी की माला पर–

'देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः।।'

इस मन्त्र का प्रतिदिन पाँच हजार, ढाई हजार या एक सहस्र जप करें। इस प्रकार एक लाख पूरा हो जाने पर दशांश हवन, तर्पण मार्जन कर ब्राह्मणों को खीर, मालपूआ, पूड़ी का भोजन करावें। ऐसा करने से श्रीकृष्ण की कृपा से पुत्र प्राप्त होता है।

10.28 गायत्रीपुरश्चरण

किसी निश्चित शुभ मुहूर्त्त में यह पुरश्चरण प्रारम्भ करें। इसके एक दिन पूर्व उपवासपूर्वक क्षौराचरण कर दशविधस्नान करें। दूसरे दिन देवमन्दिर या बिल्ववृक्ष के नीचे भगवान् सूर्य के स्वरूप का चिन्तन करता हुआ रुद्राक्ष की माला से प्रतिदिन पाँच सहस्र या एक सहस्र गायत्री का जप करें। साथ ही गोघृत से दशांश हवन भी करता जाये। जप के बाद प्रतिदिन जौ की रोटी और मूँग की दाल बनाकर भोजन करें। अन्न स्वकीय ही होना चाहिये। चौबीस लाख जप पूरा हो जाने पर पुरश्चरण सम्पूर्ण होता है। यह पुरश्चरण यदि निर्विघ्न समाप्त हो जाये, तो व्रतकर्ता को धन, धान्य प्रतिष्ठा, पुत्रादि की प्राप्ति होती है।

10.29 स्तुति

एकं ब्रह्मवाद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किंचित्।
एकोरुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम्॥१॥
एकः कर्ता त्वं हि विश्वस्य शम्भो नाना रूपेष्वेकरूपोऽस्वरूपः।
यद्वत्प्रत्यस्वर्क एकोऽप्यनेकस्तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये॥२॥
रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रूप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ।
यद्वनद्वद्विश्वगेष प्रपञ्चो यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम्॥३॥
तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः।
पुष्पे गन्धो दुग्धमध्ये च सर्पिर्यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये॥४॥
शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रेरघ्राणस्त्वं व्याघ्रिरायासि दूरात्।
व्यक्षः यश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग् वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये॥५॥
नो वेदस्त्वामीश साक्षाद्धि वेद नो या विष्णुर्नो विधाताखिलस्य।
नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये॥६॥
नो ते गोत्रं नेश जन्मानि नाख्या नो वा रूपं नैव शीलं न देशः।
इत्थं भूतोऽषीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः सर्वान् कामान् पूरयेस्तद्भजेत्वाम्॥७॥
त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः।
त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत्किं यत्त्वं नास्यतस्त्वां नतोऽस्मि॥८॥

(स्कं. काशी. १०/१२६-१३३)

मनसा दुर्विनीतेन यन्मया पातकं कृतम्। तत्तिष्ठतु घटे चास्मिन् गुरुदेवप्रसादतः॥१॥
व्रजता तिष्ठता वापि कर्मणा यदुपार्जितम्। तत्तिष्ठतु०॥२॥
परस्वहरणेनापि पातकं यदुपार्जितम्। तत्तिष्ठतु०॥३॥
सुवर्णस्तेयजं पापं मनोवाक्कायकर्मजम्। तत्तिष्ठतु घटे०॥४॥
रसविक्रयतः पापं ब्रह्मजन्मनि संचितम्। तत्तिष्ठतु०॥५॥
क्षात्रधर्मविहीनेन क्षात्रजन्मनि यत्कृतम्। तत्तिष्ठतु०॥६॥
वैश्वजन्मन्यपि मया तथा यत्पातकं कृतम्। तत्तिष्ठतु०॥७॥

महीसुर! द्विजश्रेष्ठ! जगतस्वापहारक। त्राहि मां दुःसंतप्तं
त्रिभिस्तापैः सदार्दितम्।।
संसारकूपतस्त्वं मा समुद्धर नमोऽस्तु ते। त्वदन्यो नास्ति मां देव
कष्टं हर्तुं क्षमः क्षितौ।
अन्नं स्वकीयं शूद्रजन्मनि यत्पापं सततं समुपार्जितम्। तत्तिष्ठतु०।।८।।
गुरुदाराभिगमनात् पातकं यन्मयार्जितम्। तत्तिष्ठतु०।।९।।
अपेयपानसम्भूतं पातकं यन्मयार्जितम्। तत्तिष्ठतु०।।१०।।
वापीकूपतडागानां भेदनेन कृतं च यत्। तत्तिष्ठतु०।।११।।
अभक्ष्यभक्षणेनैव संचितं यत्तु पातकम्। तत्तिष्ठतु०।।१२।।
ज्ञाताज्ञातैरनेकैश्च घटोऽयं सम्भृतो मया।
पूर्वजन्मान्तरोत्पन्नैरेतज्जन्मकृतैरपि।।१३।।

११ व्रतकथाएँ

११.१ वटसावित्रीव्रत-कथा

सनत्कुमार उवाच– कुलस्त्रीणां व्रतं ब्रूहि महाभाग्यं तथैव च। अवैधव्यकरं स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रदायकम्।।१।। **ईश्वर उवाच–** आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा ज्ञानी परमधार्मिकः। नाम्ना चाश्वपतिर्वीरो वेदवेदाङ्गपारगः।।२।। अनपत्यो महाबाहुः सर्वैश्वर्यसमन्वितः। सपत्नीकस्तपस्तेपे समाराधयते नृपः।।३।। सावित्रीं च प्रसावित्री जपन्नास्ते महामनाः। जुहोति चैव सावित्रीं भक्त्या परमया युतः।।४।। ततस्तुष्टा तु सावित्री सा देवी द्विजसत्तमा। सविग्रहवती देवी तस्या दर्शनमागता।।५।। भूर्भुवः स्वरवन्त्वेषा साक्षसूत्रकमण्डलुः। तां दृष्ट्वा जगद्वन्द्यां सावित्री च द्विजोत्तम।।६।। प्रणिपत्य नृपो भक्त्या प्रहृष्टेनान्तरात्मना। तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ तुष्टा देवी जगाद ह।।७।। **सावित्र्युवाच–** तुष्टाहं तव राजेन्द्र वरं वरय सुव्रत। एवमुक्तस्तया राजा प्रसन्नां तामुवाच ह।।८।। **राजोवाच–** अनपत्यो ह्यहं देवि पुत्रमिच्छामि शोभनम्। नान्यं वृणोमि सावित्री पुत्रमेव जगन्मये।।९।। अन्यदस्ति समग्रं मे क्षितौ यच्चापि दुर्लभम्। प्रसादात् तव देवेशि तत् सर्वं विद्यते गृहे।।१०।। एवमुक्तं तु सा देवी प्रत्युवाच नराधिपम्। **सावित्र्युवाच–** पुत्रास्ते नास्ति राजेन्द्र कन्यैका ते भविष्यति।।११।। कुलद्वयं तु सा राजन्नुद्धरिष्यति भामिनी। मन्नाम्ना राजशार्दूल तस्या नाम भविष्यति।।१२।। इत्युक्त्वा तं मुनिश्रेष्ठ राजानं ब्राह्मणः प्रिया। अन्तर्ध्यानं गता देवी संतुष्टोऽसौ महीपतिः।।१३।। ततः कतिपयाहोभिस्तस्य राज्ञी महीभुजः।। ससत्त्वा समजायेत पूर्णे काले सुषाव हा।।१४।। सावित्र्या तुष्टया दत्ता सावित्र्या जप्तया तथा। सावित्री तेन वरदा तस्या नाम बभूव ह।।१५।। राजते देवगर्भाभा कन्या कमललोचना। ववृधे सा मुनिश्रेष्ठ चन्द्रलेखेव चाम्बरे।।१६।। सावित्री ब्राह्मणे वै सा श्रीरिवायतलोचना। तां दृष्ट्वा हेमगर्भाभां राजा चिन्तामुपेयिवान्।।१७।। अयाच्यमानां च वरै रूपेणाप्रतिमां भुवि। तस्या रूपेण ते सर्वे संनिरुद्धा महीभुजः।।१८।। ततश्च राजा आहूय उवाच

कमलेक्षणम्। पुत्रि प्रदानकालस्ते न च याचन्ति केचन।।१९।। स्वयं वरः हृद्यं ते पतिं गुणसमन्वितम्। मनः प्रह्लादनकरं शीलेनाभिजनेन च।।२०।। इत्युक्त्वा तां च राजेन्द्रो वृद्धामात्यैः सहैव च। वस्त्रालंकारसहितां धनरत्नैः समन्विताम्।।२१।। विसृज्य च क्षणं तत्र यावत् तिष्ठति भूमिपः। तावत् तत्र समागच्छन्नारदो भगवानृषिः।।२२।। अपूजयत् ततो राजा अर्घ्यपाद्येन तं मुनिम्। आसने च सुखासीनः पूजितस्तेन भूभुजा।।२३।। पूजयित्वा मुनिं राजा प्रोवाचेदं द्विजोत्तमम्। पावितोऽहं त्वया विप्र दर्शनेनाद्य नारद।।२४।। यावदेवं वदेद् राजा तावत् सा कमलेक्षणा। आश्रमादागता देवी वृद्धामात्यैः समन्वितः।।२५।। अभिवन्द्यः पितुः पादौ ववन्दे सा मुनिं ततः। नारदेन तु दृष्ट्वा सा स तु प्रोवाच भूमिपम्।।२६।। **नारद उवाच–** कन्यां च देवगर्भाभां किमर्थं न प्रयच्छसि। वराय त्वं महाबाहो वरयोग्यां हि सुन्दरीम्।।२७।। एवमुक्तस्तदा तेन मुनिना नृपसत्तमः। उवाच तं मुनिं वाक्यमनेनार्थेन प्रेषिता।२८।। आगतेयं विशालाक्षी मया सम्प्रेषिता सती। अनया च वृतो भर्ता पृच्छ त्वं मुनिसत्तम।।२९।। सा पृष्टा तेन मुनिना तस्मै चाचष्ट भामिनी। **सावित्र्युवाच–** आश्रमे सत्यवान् नाम द्युमत्सेनसुतो मुने। भर्तृत्वेन मया विप्र वृतोऽसौ राजनन्दनः।।३०।। **नारद उवाच–** कष्टं कृतं महाराज दुहित्रा तव सुव्रत। अजानन्त्या वृतो भर्ता गुणवानिति विश्रुतः।।३१।। सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते। स्वयं सत्यं प्रभाषेत सत्यवानिति तेन सः।।३२।। तथा चाश्वाः प्रियास्तस्य अश्वैः क्रीडति मृण्मयैः।। चित्रेऽपि विलिखत्यश्वाश्चित्राश्वस्तेन चोच्यते।।३३।। रूपवान् गुणवांश्चैव सर्वशास्त्रविशारदः। न तस्य सदृशो लोके विद्यते चेह मानवः।।३४।। सर्वैर्गुणैश्च सम्पन्नो रत्नैरिव महार्णवः।।३५।। एको दोषो महानस्य गुणानावृत्य तिष्ठति। संवत्सरेण क्षीणायुर्देहत्यागं करिष्यति।।३६।। **अश्वपतिरुवाच–** अन्यं वरयं भद्रं ते वरं सावित्रि गम्यताम्। विवाहस्य तु कालोऽयं वर्तते शुभलोचने।।३७।। **सावित्र्युवाच–** नान्यमिच्छाम्यहं ताता मनसापि वरं प्रभो। यो मया च वृतो भर्ता स मे नान्यो भविष्यति।।३८।। विचिन्त्य मनसा पूर्वं वाचा पश्चात् समुच्चरेत्। क्रियते च ततः पश्चादुभं वा यदि वाशुभम्।।३९।। तस्मात् पुमांसं मनसा कथं चान्यं वृणोम्यहम्।

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः। सकृत् कन्या प्रदीयेत त्रीण्येतानिसकृत् सकृत्।।४०।। इति मत्वां न मे बुद्धिर्विचलेच्च कथंचन। सगुणो निर्गुणो वापि मूर्खः पण्डित एव च।।४१।। दीर्घायुरथवाल्पायुः स वै भर्ता मम प्रभो। नान्यं वृणोमि भर्तारं यदि वा स्याच्छचीपतिः।।४२।। इति मत्वा त्वया तात यत् कर्तव्यं वदस्व तत्। **नारद उवाच–** स्थिरा बुद्धिश्च राजेन्द्र सावित्र्याः सत्यवान् प्रति।।४३।। त्वरयस्व विवाहाय भर्त्रा सह कुरु त्विमाम्। **ईश्वर उवाच–** निश्चितां तु मतिं ज्ञात्वा स्थिरां बुद्धिं च निश्चलाम्।।४४।। सावित्र्याश्च महाराजः प्रतस्थेऽसौ वनं प्रति। गृहीत्वा तु धनं राजा द्युमत्सेनस्य संनिधौ।।४५।। स्वल्पानुगतो महाराजो वृद्धामात्यैः समन्वितः। नारदस्तु ततः खे वै तत्रैवान्तरधीयत।।४६।। सगत्वा राजशार्दुलो द्युमत्सेनेन संगतः। वृद्धश्चान्धश्च राजासौ वृक्षमूलमुपाश्रितः।।४७।। सावित्र्यश्वपती राजा पादौ जग्राह वीर्यवान्। स्वनाम च समुच्चार्य तस्थौ तस्य समीपतः।।४८।। उवाच राजा तं भूपं किमागमनकारणम्। पूजयित्वार्घ्यदानेन वन्यमूलफलैश्च सः।।४९।। ततः प्रप्रच्छ कुशले स राजा मुनिसत्तम। अश्वपतिरुवाच – कुशलं दर्शनेननाद्य तव राजन् ममाद्य वै।।५०।। दुहिता मम सावित्री तव पुत्रमभीप्सति। भर्तारं राजशार्दूल प्राप्नोत्वियमनिन्दिता।।५१।। मनसा काङ्क्षितं पूर्वं भर्तारमनया विभो। आवयोश्चैव सम्बन्धो भवत्वद्य ममेप्सितः।।५२।। **द्युमत्सेन उवाच** – वृद्धाश्चान्धश्च राजेन्द्र फलमूलाशनोऽस्म्यहम्। राज्याच्युतश्च मे पुत्रे वन्येनाद्य स जीवति।।५३।। सा कथं सहते दुःखं दुहिता तव कानने। अनभिज्ञा च दुःखानामित्यहं नाभिकाङ्क्ष्ये।।५४।। **अश्वपतिरुवाच** – अनया च वृतो भर्ता जानन्त्या राजसत्तम। अनेन सहवासस्तु तव पुत्रेण मानद।।५५।। स्वर्गतुल्यो महाराज भविष्यति न संशयः।।५६।। एवमुक्तस्तदा तेन राज्ञा राजर्षिसत्तमः। तथेति स प्रतिज्ञाय चकारोद्वाहमुत्तमम्।।५७।। कृत्वा विवाहं राजेन्द्रं सम्पूज्यविविधैर्धनैः। अभिवाद्य द्युमत्सेनं जगाम नगरीं प्रति।।५८।। सावित्री तु पतिं लब्ध्वा इन्द्रं प्राप्य शची यथा। सत्यवानपि ब्रह्मर्षे तथा पत्न्याभिनन्दितः।।५९।। क्रीडते तद्वनोद्देशे पौलोम्या भगवानिव। नारदस्य च तद् वाक्यं हृदयेन मनस्विनी।।६०।। वहन्ती नियमं चक्रे व्रतस्यास्य च भामिनी। गणयन्ती नियमान्येव न लेभे तोषमुत्तमम्।।६१।। व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य

दिवारात्रं स्थिराभवत्॥६२॥ ततस्त्रिरात्रौ निर्वृत्य संतर्प्य पितृदेवता:। श्वश्रूश्वशुरयो: पादौ ववन्दे चारुहासिनी॥६३॥ कुठारं परिगृह्याथ कठिनं चैव सुव्रत। प्रतस्थे स वनायैव सावित्री वाक्यमब्रवीत्॥६४॥ **सावित्र्युवाच** – न गन्तव्यं वनं त्वद्य तत् वाक्येन मानद। अथवा गम्यते साधो मया सह वनं व्रज॥६५॥ संवत्सरं भवेत् पूर्णमाश्रमेऽस्मिन् मम प्रभो। तद् वनं द्रष्टुमिच्छामि प्रसादं कुरु मे विभो॥६६॥ **सत्यवानुवाच**– नाहं स्वतन्त्र: सुश्रोणि पृच्छस्व पितरौ मम। ताभ्यां प्रस्थापिता गच्छ मया सह शुचिस्मिते॥६७॥ एवमुक्ता तदा तेन भर्त्रा सा कमलेक्षणा। श्वश्रूश्वशुरयो: पादावभिवाद्येदमब्रवीत्॥६८॥ वनं द्रष्टुमभीच्छेयमाज्ञां मह्यं प्रदीयताम्। भर्त्रा सह वनं गन्तुमेतत् त्वरयते मन:॥६९॥ तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा द्युमत्सेनो ब्रवीदिदम्। व्रतं कृतं त्वया भद्रे पारणं कुरु सुव्रते॥७०॥ पारणान्ते ततो भीरू वनं गन्तुं त्वमर्हसि॥७१॥ **सावित्र्युवाच** – नियमश्च कृतोऽस्माभी रात्रौ चन्द्रोदये सति। जाते मया प्रकर्तव्यं भोजनं तात मे श्रुणु॥७२॥ वनदर्शनकामोऽस्ति भर्त्रा सह ममाद्य वै। न मे तत्र भवेद् ग्लानिर्भर्त्रा सह नराधिप॥७३॥ इत्युक्तस्तु तया राजा द्युमत्सेनो महीपति:। यत् तेऽभिलषितं पुत्रि तत् कुरुष्व सुमध्यमे॥७४॥ नमस्कृत्वा तु सावित्री श्वश्रूं च श्वशुरं तथा। सहिता सा जगामाथ तेन सत्यव्रता मुने॥७५॥ विलोकयन्ती भर्तारं प्राप्तकाले मनस्विनी। वनं च फलितं दृष्ट्वा पुष्पितद्रुमसंकुलम्॥७६॥ द्रुमाणां चैव नामानि मृगाणां चैव भामिनी। पश्यन्ती मृगयूथानि हृदयेन प्रवेपती॥७७॥ तत्र गत्वा सत्यवान् वै फलान्यादाय सत्वरम्। काष्ठानि च समादाय बबन्ध भारकं तदा। कठिनं पूरयामास कृत्वा वृक्षावलम्बनम्॥७८॥ वटवृक्षस्य सा साध्वी उपविष्टा महासती। काष्ठं पाटयतस्तस्य जाता शिरसि वेदना॥७९॥ ग्लानिश्च महती जाता गात्राणां वेपथुस्तदा। आदाय वृक्षसामीप्यं सावित्रीमिदमब्रवीत्॥८०॥ मम गात्रेऽतिकम्पश्च जाता शिरसि वेदना। कण्टकौर्भिद्यते भद्रे शिरो मे शूलसम्मितै॥८१॥ उत्सङ्गे तव सुश्रोणि स्वप्तुमिच्छामि सुव्रते। अभिज्ञ सा विशालाक्षी तस्य मृत्योर्मनस्विनी॥८२॥ प्राप्तं कालं मन्यमाना तस्थै तत्रैव भामिनी। सत्यवानपि सुप्तस्तु कृत्वोत्सङ्गे शिरस्तदा॥८३॥ तावत् तत्र समागच्छत् पुरुष: कृष्णपिङ्गल:। जाज्वल्यमानो वपुषा ददर्शामुं च भामिनी॥८४॥ उवाच वाक्यं

वाक्यज्ञा कस्त्वं लोकभयंकरः। नाहं धर्षयितुं शक्त्या पुरुषेणापि केनचित्।।८५।। इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं यमो लोकभयंकरः। क्षीणायुस्तु वरारोहे तव भर्ता मनस्विनि।।८६।। नेष्याष्येनमहं वद्ध्वा ह्येतन्मे चिकीर्षितम्।।८७।। **सावित्र्युवाच** – श्रूयते भगवन् दूतास्तवागच्छन्ति मानवान्। नेतुं किल भवान् कस्मादागतोऽसि स्वयं प्रभो।।८८।। इत्युक्तः पितृराजस्तां भगवान् स्वचिकीर्षितम्। यथावत् सर्वमाख्यातुं तत् प्रियार्थं प्रचक्रमे।।८९।। अयं च धर्मसंयुक्तो रूपवान् गुणसागरः। नार्हो सत्पुरुषैर्नेतुमतोऽस्मि स्वयमागतः।।९०।। ततः सत्यवतः कायात् पाशबद्धं वशंगतम्। अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्।।९१।। निर्विचेष्टशरीरं तद् बभूवप्रियदर्शनम्। यमस्तु तं ततो बद्ध्वा प्रयातो दक्षिणामुखः।।९२।। सावित्री चाति दुःखार्ता यममेवान्वगच्छत। नियमव्रतसंसिद्धा महाभागा पतिव्रता।।९३।। **यम उवाच** – निर्वर्त गच्छ सावित्री कुरुष्वास्यौर्ध्वदेहिकम्। कृतं भर्तृस्त्वयानृण्यं यावद् गम्यं गतं त्वया।।९४।। **सावित्र्युवाच** – यत्र मे नीयते भर्ता स्वयं वा यत्र गच्छति। मयापि तत्र गन्तव्यं येष धर्मः सनातनः।।९५।। तपसा गुरुभक्त्या च भर्तुस्नेहाद् व्रतेन च। तव चैव प्रसादेन न मे प्रतिहता गतिः।।९६।। प्राहुः साप्तपदं मैत्रं बुधास्तत्त्वार्थदर्शिनः। मित्रता च पुरस्कृत्य किंचिद् वक्ष्यामि तच्छ्रृणु।।९७।। नानात्मवन्तस्तु वने चरन्ति धर्मं च वासं च परिश्रमं च। विज्ञानतो धर्ममुदाहरन्ति तस्मात्सन्तो धर्ममाहुः प्रधानम्।।९८।। एकस्य धर्मेण सतां मतेन सर्वे स्म तं मार्गमनुप्रपन्नाः। मा वै द्वितीयं मा तृतीयं च वाञ्छे तस्मात्सन्तो धर्ममाहुः प्रधानम्।।९९।। **यम उवाच** – निर्वर्त तुष्टोऽसि त्वयानया गिरा स्वराक्षरव्यञ्जनहेतुयुक्तया। वरं वृणीष्वेह विनास्य जीवितं ददामि ते सर्वममिन्दितेवरम्।।१००।। **सावित्र्युवाच** – च्युतः स्वराज्याद् वनवासमाश्रितो विनष्टचक्षुश्वशुरो ममाश्रमे। स लब्धचक्षुर्बलवान् भवेनृप-स्तव प्रसादाज्ज्वलनाकसंनिभः।।१०१।। यम उवाच – ददामि तेऽहं तमनिन्दिते वरं यथा त्वयोक्तं भविता च तत् तथा। तवाध्वना ग्लानिमिवोपलक्षये निवर्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत्।।१०२।। सावित्र्युवाच – कुतः श्रमो भर्तृसमीपतो हि मे यतो हि भर्ता यम सा गतिर्ध्रुवा। यतः पतिं नेष्यसि तत्र मे गतिः सुरेश भूयश्च वचो निबोध मे।।१०३।। सतां सकृत् सङ्गतमीप्सितं परं ततः परं मित्रमिति प्रचक्षते। न चाफलं सत्पुरुषेण सङ्गतं ततः सतां

संन्निवसेत् समागमे।।१०४।। **यम उवाच–** मनोऽनुकूलं बुधबुद्धिवर्धनं त्वया यदुक्तं वचनं हिताश्रयम्। विना पुनः सत्यवतो हि जीवितं वरं द्वितीयं वरयस्व भामिनी।।१०५।। **सावित्र्युवाच–** हतं पुरा मे श्वशुरस्य श्रीमतः स्वमेव राज्यं लभतां स पार्थिवः। जह्यात् स्वधर्मान्न च मे गुरुर्यथा द्वितीयमेतद् वरयामि ते वरम्।।१०६।। **यम उवाच–** स्वमेव राज्यं प्रतिपत्स्यतेऽचिरन्न च स्वधर्मात् परिहास्यते नृपः। कृतेन कामेन मया नृपात्मजे निवर्त्त गच्छत्व न ते श्रमो भवेत्।।१०७।। **सावित्र्युवाच–** प्रजास्त्वयैता नियमेन संयता नियम्य चैता नयसे निकामया। ततो यमत्वं तव देव विश्रुतं निबोध चेमां गिरमीरितां मया।।१०८।। अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा। अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः।।१०९।। एवं प्रायश्च लोकोऽयं मनुष्याः शक्तिपेशलाः। सन्तस्त्वेवाप्यमित्रेषु दयां प्राप्तेषु कुर्वते।।११०।। **यम उवाच–** पिपासितस्येव भवेद् यथा पयस्तथा त्वया वाक्यमिदं समीरितम्। विना पुनः सत्यवतोऽस्य जीवतिं वर वृणीष्वेह शुभे यदिच्छसि।।१११।। **सावित्र्युवाच–** ममानपत्यः पृथिवीपतिः पिता भवेत् पितुः पुत्रशतं तथौरसम्। कुलस्य संतानकरं च यद् भवेत् तृतीयमेतद् वरयामि ते वरम्।।११२।। **यम उवाच** – कुलस्य संतानकरं सुवर्चसं शतं सुतानां पितुरस्तु ते शुभे। कृतेन कामेन नराधिपात्मजे निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता।।११३।। **सावित्र्युवाच–** न दूरमेतन्मम भर्तृसंनिधौ मनो हि मे दूरतरं प्रधावति। अथ व्रजन्नेव गिरं समुद्यतां मयोच्यमानां श्रृणु भूय एव च।।११४।। विवस्वतस्त्वं तनयः प्रतापवांस्ततो हि वैवस्वत उच्यसे बुधैः। समेन धर्मेण चरन्ति ताः प्रजास्ततस्त्वमेहेश्वर धर्मराजता।।११५।। आत्मन्यपि न विश्वासस्तथा भवति सत्सु यः। तस्मात् सत्सु विशेषेण सर्वः प्रणयमिच्छति।।११६।। सोहृदात् सर्वभूतानां विश्वासो नाम जायते। तस्मात् सत्सु विशेषेण विश्वासं कुरुते जनः।।११७।। **यम उवाच–** उदाहृतं ते वचनं यदङ्गने शुभं न तादृक् त्वदृते श्रुतं मया। अनेन तुष्टोऽस्मि विनास्य जीवितं वरं चतुर्थं वरयस्व गच्छ च।।११८।। **सावित्र्युवाच–** ममात्मजं सत्यवतस्तथौरसं भवेदुभाभ्यमिह यत् कुलोद्भवम्। शतं सुतानां बलवीर्य-शालिनामिमं चतुर्थं वरयामि ते वरम्।।११९।। **यम उवाच** – शतं सुतानां बलवीर्यशालिना भविष्यति प्रीतिकरं तवाबले। परिश्रमस्ते न भवेन्नृणात्मजे

निवर्त दूरं हि पथस्त्वमागता।।१२०।। **सावित्र्युवाच–** सतां सदा शाश्वत-धर्मवृत्तिः सन्तो न सीदन्ति न च व्यथन्ति। सतां सद्भिर्नाफलः संगमोऽस्ति सद्भ्यो भयं नानुवर्तन्ति सन्तः।।१२१।। सन्तो हि सत्येन नयन्ति सूर्यं सन्तो भूमिं तपसा धारयन्ति। सन्तो गतिर्भूतभव्यस्य राजन् सतां मध्ये नावसीदन्ति सन्तः।।१२२।। आयुर्जुष्टमिदं वृत्तमिति विज्ञाय शाश्वतम्। सन्तः परार्थं कुर्वाणां नावेक्षन्ते परस्परम्।।१२३।। न च प्रसादः सत्पुरुषेषु मोघो न चाप्यर्थो नश्यति नापि मानः। यस्मादेतन्नियतं सत्सु नित्यं तस्मात् सन्तो रक्षितारो भवन्ति।।१२४।। **यम उवाच –** यथा यथा भाषसि धर्मसहितं मनोऽनुकुलं सुपदं महार्थवत्। तथा तथा मे त्वयि भक्तिरुत्तमा वरं वृणीष्वाप्रतिमं पतिव्रते।।१२५।। **सावित्र्युवाच–** न तेऽपवर्गः सुकृताद् विना कृतस्तथा यथान्येषु वरेषु मानद। वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं यथा मृता होवमहं पतिं विना।।१२६।। न कामये भर्तृविनाकृता सुखं न कामये भतृविनाकृता दिवम्। न कामये भतृविनाकृता श्रियं न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम्।।१२७।। वरातिसर्गः शतपुत्रता मम त्वयैव दत्तो ह्रियते च मे पतिः। वरं वृणे जीवतु सत्यवानयं तवैव सत्यं वचनं भविष्यति।।१२८।। **मार्कण्डेय उवाच–** तथेत्युक्त्वा तु तं पाशं मुक्त्वा वैवस्वतो यमः। धर्मराजः प्रहृष्टात्मा सावित्रीमिदब्रवीत्।।१२९।। एष भद्रे मया मुक्तो भर्ता ते कुलनन्दिनि अरोगस्तव नेयश्च सिद्धार्थं स भविष्यति।।१३०।। चतुर्वर्षशतायुश्च त्वया सार्धमवाप्स्यति।।१३१।। सा गता वटसामीप्यं कृत्वोत्संगे शिरस्ततः। प्रबुद्धस्तु ततो ब्रह्मन् सत्यवानिदमब्रवीत्।।१३२।। मया स्वप्नो वरारोहे दृष्टोऽद्यैव च भामिनी। तत् सर्वं कथितं तस्या यद् वृत्तं सर्वमेव तत्।।१३३।। तया च कथितः सर्वः संवादश्च यमेन हि। अस्तंगते ततः सूर्ये द्युमत्सेनो महीपतिः।।१३४।। पुत्रस्यागमनाकाङ्क्षी इतश्चेतश्च धावति। आश्रमादाश्रमं गच्छन् पुत्रदर्शनकाङ्क्षया।।१३५।। आवयोरन्धयोर्यष्टिः क्व गतोऽसि विनावयोः। एवं स विविधं क्रोशन् सपत्नीको महीपतिः।।१३६।। चकार दुःखसंतप्तः पुत्रपुत्रेति चासकृत्। अकस्मादेव राजेन्द्रो लब्धचक्षुर्बभूवतौ।।१३७।। तद् दृष्ट्वा परमाश्चर्यं चक्षुः प्राप्तिं द्विजोत्तमाः। सान्त्वपूर्वं तदा वाक्यमूचुस्ते तपसा भृशम्।।१३८।। चक्षुः प्राप्त्या महाराज सूचितं ते महीपते। पुत्रेण च समं योगं प्राप्स्यसे नृपसत्तम।।१३९।। **ईश्वर उवाच–** यावदेवं वदन्त्येते

तापसा द्विजसत्तमाः। सावित्रीसहितः प्राप्तः सत्यवान् द्विजसत्तम॥१४०॥ नमस्कृत्य द्विजान् सर्वान् मातरं पितरं तथा। सावित्री च ततो ब्रह्मन् ववन्दे चरणौ मुदा॥१४१॥ श्वश्रूश्वशुरयोस्तां तु पप्रच्छुर्मुनयस्तदा। **मुनय ऊचुः**– वद सावित्रि जानासि कारणं वरवर्णिनि। वृद्धस्य चक्षुषः प्राप्ते श्वशुरस्य शुभानने॥१४२॥ **सावित्र्युवाच**– न जानामि मुनिश्रेष्ठाश्चक्षुषः प्राप्तिकारणम्। चिरं सुप्तस्तु मे भर्ता तेन कालव्यतिक्रमः॥१४३॥ **सत्यवानुवाच**– अस्याः प्रभावात् संजातं दृश्यते कारणं न च। तत् सर्वं विद्यते विप्राः सावित्र्यास्तपसः फलम्॥१४४॥ व्रतस्यैव तु माहात्म्यं दृष्टमेतन्मयाधुना॥१४५॥ **ईश्वर उवाच**– एवं तु वदस्तस्य तदा सत्यवतो मुने। पौरा समागतास्तस्य ह्याचख्युर्नृपतेर्हितम्॥१४६॥ **पौरा ऊचुः**– येन राज्यं बलाद् राजन् हृतं क्रूरात् मन्त्रिणा। अमात्येन हतः सोऽपि इतीव वयमा गताः॥१४७॥ उत्तिष्ठ राजशार्दूल स्वं राज्यं पालय प्रभो। अभिषिच्यस्व राजेन्द्र पुरे मन्त्रि-पुरोहितैः॥१४८॥ **ईश्वर उवाच**– तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलः स्वपुरं जनसंवृतः। पितृपैतामहे राज्यं सम्प्राप्य मुदमन्वभूत्॥१४९॥ सावित्री सत्यवांश्चैव परां मुदमवापतुः। जनयामास पुत्राणां शतं सा बाहुशालिनाम्॥१५०॥ व्रतस्यैव तु माहात्म्यात् तस्याः पितुरजायत। पुत्राणां च शतं ब्रह्मन् प्रसन्नाच्च यमात् तथा॥१५१॥ एतत् ते कथितं सर्वं व्रतमाहात्म्यमुत्तमम्। क्षीणायुर्जीवते भर्ता व्रतस्यास्य प्रभावतः॥१५२॥ कर्त्तव्यं सर्वनारीभिरवैधव्यफलप्रदम्। **सनत्कुमार उवाच**– विधानं ब्रूहि देवेश व्रतस्यास्य च त्र्यम्बक। क्रियते विधिना केन स्वाभिस्त्रिपुरसूदन॥१५३॥ **ईश्वर उवाच**– वर्षैकं नियमं कृत्वा एकभक्तेन मानद। नक्ताहारेण वा विप्र भुक्तिं त्यक्त्वा द्विजर्षभ॥१५४॥ त्रिदिनं लङ्घयित्वा च चतुर्थे दिवसे शुभे। चन्द्रार्घ्यं प्रदत्त्वा च पूजयित्वा सुवासि-नाम्॥१५५॥ सावित्रीं च प्रसावित्रीं गन्धपुष्पैः प्रपूज्य च। मिथुनानि यथाशक्त्या भोजयित्वां यथासुखम्॥१५६॥ भौक्ष्येऽहं तु जगद्धात्रि निर्विघ्नं कुरु मे शुभे। दिनं दिनं प्रतिश्रेष्ठं कुर्यान्यग्रोधसंचनम्॥१५७॥ कृत्वा वंशमये पात्रे बालुका प्रस्थमेव च। सप्तधान्यमुतं पात्रं प्रस्थैकैन द्विजोत्तम॥१५८॥ कारयेन्मुनिशार्दूल वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्॥१५९॥ तस्योपरि न्यसेद् देवीं सावित्रीं ब्रह्मणा सह। सावित्री सत्यवांश्चैव कार्यौ स्वर्णमयौ शुभौ॥१६०॥ पिटकं च कुठारं च कृत्वा रौप्यमयं द्विज। फलैः कालोद्भवैर्देवीं पूजयेद् ब्रह्मणः

प्रियाम्।।१६१।। हरिद्रारञ्जितैश्चैव कण्ठसूत्रैः समर्चयेत्। सतीनां कण्ठसूत्राणि त्रिदिनं प्रतिदापयेत्।।१६२।। पक्वान्नानि च देयानि नित्यमेव द्विजोत्तमः। माहात्म्यं चैव सावित्र्याः श्रोतव्यं मुनिसत्तम।।१६३।। पुराणश्रवणं कार्यं सतीनां चरितं तथा। पूजयेच्च तथा नित्यं मन्त्रेणानेन सुव्रत।।१६४।। सावित्री च प्रसावित्री सततं ब्रह्मणः प्रिया। पूज्यसे हूयसे देवि द्विजैर्मुनिगणैः सदा।।१६५।। त्रिसन्ध्यं देवि भूतानां वन्दिता त्वं जगन्मये। मया दत्तामिमां पूजां प्रतिगृह्ण नमोऽस्तु ते।।१६६।। सावित्री त्वं प्रसावित्री द्विधा भूतासि शोभने। जगत्त्रयस्थिता देवि त्रिसन्ध्यं च तथानघे।।१६७।। श्रेष्ठे देवि त्रिलोके च त्रेताग्नौ त्वं महेश्वरि। व्यापितः सकलो लोकश्चातो मां पाहि सर्वदा।।१६८।। रूपं देहि यशो देहि सौभाग्यं देहि मे शुभे। पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वदा जन्मजन्मसु।।१६९।। यथा ते न वियोगोस्ति भर्त्रा सह सुरेश्वरि। तथा मम महाभागे कुरु त्वं जन्मजन्मनि।।१७०।। एवं सम्पूजयेद् देवीं कमलासनसंस्थिताम्। एवं दिनत्रयं नीत्वा चतुर्थेऽहनि सत्तम्।।१७१।। मिथुनानि च सम्भोज्य षोडशैव द्विजोत्तम। पूजयेद् वस्त्रदानैश्च भूषणैश्च द्विजोत्तम।।१७२।। अर्चयित्वा तथाऽऽचार्यं सपत्नीकं सुसम्मतम्।। तस्मै संकल्पितं सर्वं हेमसावित्रिसंयुतम्।।१७३।। मन्त्रेणानेन दातव्य द्विजमुख्याय सुव्रत। सावित्रीं कल्पविदुषे प्रणिपत्य तथा मुने।।१७४।। सावित्री जगतां माता सावित्री जगतः पिता। मया दत्ता च सावित्री ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम्।।१७५।। अवैधव्यं च मे नित्यं भूयाज्जन्मनि जन्मनि। मृता च वसते लोके ब्रह्मणः पतिना सह। तत्रैव च चिरं काले भुङ्क्ते भोगाननुत्तमान्।।१७६।।

इति हेमाद्रिविरचिते चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे स्कन्दमहापुराणे वटसावित्रीव्रत कथा समाप्ता।

11.2 वट सावित्री व्रत कथा – हिन्दी टीका

आज कल संस्कृत ज्ञान के क्षीण होने के कारण संस्कृत श्लोकों के उच्चारण में त्रुटियाँ हो जाती है इसलिए कथा वार्ता के अवसर पर लोक संस्कृत विशेषज्ञ को बुलाते है या हिन्दी में स्वयं पाठ कर लेते है। इसको ध्यान में रखकर यहाँ हिन्दी टीका दी जा रही है।

एक बार सनकादि चारों महर्षियों में बुद्धिमान् श्री सनत्कुमार जी ने भगवान शिव से कहा कि हे भगवान शिव कुल वधुओं के लिए सौभाग्य, महाभाग्य एवं पुत्र, पौत्रों को बढ़ाने वाला कोई व्रत सुनाइये। भगवान शिव ने कहा कि मद्र देश में ज्ञानी धर्मात्मा वीर एवं वेद वेदाङ्गों को जानने वाला अश्वपति नाम का एक राजा था। वह परम बलवान सर्वैश्वर्यवान् होते हुए भी सन्तान से रहित था। सन्तान प्राप्ति के लिए वह सतत आराधना पूजा में लगा रहता था। वह परम मनस्वी सावित्री का जप करता रहता था एवं परम भक्ति के साथ सावित्री को ही आहुति देता था। उसकी पूजा, अर्चना से सन्तुष्ट होकर एक दिन सावित्री देवी ने राजा को दर्शन दिया। भूर्भुवः स्वः के तेजों वाली अक्षसूत्र एवं कमण्डलु लिए हुए जगद्वन्द्य सावित्री को देखकर राजा ने भक्ति भाव से प्रथम देवी को प्रणाम किया। राजा को दण्ड की तरह भूमि पर पड़ा देखकर देवी प्रसन्न होकर बोलीं कि हे राजेन्द्र मैं तुमसे परम प्रसन्न हूँ अपना अभीष्ट वर माँगिये। यह सुनकर राजा अतीव प्रसन्न होकर बोला– कि हे देवी! मुझे कोई सन्तति नहीं है। अच्छा पुत्र चाहता हूँ। हे जगन्मयी सावित्री मैं सिवाय पुत्र के और कुछ नहीं माँगता। जो भूमि पर दुर्लभ पदार्थ हैं वे सभी मेरे घर पर हैं।

राजा के इस प्रकार कहने पर देवी ने राजा से कहा कि है राजन्! तुम्हारे पास पुत्र नहीं है एक कन्या होगी वह अपने और अपने पति दोनों के कुलों का उद्धार करेगी। हे राजा शार्दूल जो मेरा नाम है उसका भी वही नाम होगा। इतना कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गयी। राजा

परम प्रसन्न हुआ। कुछ दिन बीतने पर रानी गर्भवती हुई और पूर्ण समय पर एक कन्या को जन्म दिया। उस कन्या का नाम राजा ने अपने इष्ट देवी के नाम पर सावित्री ही रखा। वह कन्या कमलनयनी देवी जैसी चमकती थी। जैसे अम्बर में प्रतिदिन चाँदनी कलाएँ बढ़ती हैं उसी तरह बढ़ती थी। वह ब्रह्मा की सावित्री थी, बड़े-बड़े नयनों वाली लक्ष्मी ही थी, हेमगर्भ के समान उसकी चमक को देखकर राजा को बहुत चिन्ता हुई। उसके समान कोई सुन्दर नहीं था। उसके तेज के आगे कोई उसको माँगने की इच्छा साहस नहीं करता था। उसके रूप और तेज के प्रभाव से सभी राजा रुक गए थे। एक दिन राजा ने उस कमलनयनी लड़की को बुलाकर कहा– पुत्री तेरे विवाह का समय आ गया है पर तुझे कोई माँगने वाला नहीं आया। जो तुझे गुणवान वर समझ में आवे उससे तुम विवाह कर लो जिससे आनन्दपूर्वक उस परिवार में रह सको। ऐसा कहकर बूढ़े मंत्रियों के साथ धन-धान्य से भरपूर करके वस्त्र अलंकार से सुसज्जित कर भेज दिया।

एक दिन राजा एकान्त में बैठे थे उसी समय सन्त श्री नारद जी का आगमन हुआ। राजा ने अर्घ्य, पाद्य से मुनिराज का पूजन करके उनको आसन पर विराजमान किया। पूजा कृत्य समाप्त करके मुनिराज से राजा बोले, प्रभो आपके दर्शन से मैं पवित्र हो गया हूँ। आपने मुझे पवित्र कर दिया। राजा यह कह ही रहे थे कि उन्हीं बूढ़े मन्त्रियों के साथ आश्रम में कमलनयनी सावित्री आ उपस्थित हुई। पहले उस कन्या ने पिताजी की वन्दना की तथा उसके बाद मुनिराज को प्रणाम किया। नारद जी ने कहा राजन् देवगर्भ सी चमकवाली सुन्दरी विवाह योग्य कन्या को किसी योग्य वर को क्यों नहीं दे रहे हो। मुनिराज के कहते ही राजा ने उत्तर दिया कि हे मुनिसत्तम मैंने इसे इसीलिए ही भेजा था। अब यह वापस आ गई है। इसने अपना पति चुन लिया है इसी से पूछ लीजिये। मुनि के पूछने पर सावित्री ने उत्तर दिया कि हे मुनिराज आश्रम में द्युमत्सेन का पुत्र सत्यवान है। हे विप्र मैंने उसे पति के लिए चुना है। नारद जी बोले– हे सुव्रत महाराज आपकी पुत्री ने गलत निर्णय लिया है। इसने बिना जाने ही वरण किया है यद्यपि वह गुणवान् है, प्रसिद्ध है,

उसके माँ-बाप सत्य बोले हैं। वह स्वयं भी सत्य बोलता है इसीलिए उसका नाम सत्यवान भी है। उसे घोड़े बहुत प्यारे लगते हैं वह घोड़ों के चित्र भी अत्यन्त सुन्दर बनाता है इस कारण उसे चित्राश्व भी कहते हैं। वह रूपवान, गुणवान् के साथ-साथ शास्त्रों का भी ज्ञाता है। उसके बराबर कोई मनुष्य नहीं है, वह सब गुणों से सम्पन्न है। जैसे कि रत्नों से महासमुद्र रहा करता है। लेकिन एक ही उसका दोष उसके सभी गुणों को ढक देता है कि उसकी आयु एक वर्ष में समाप्त हो जायेगी। जिससे वह देहत्याग कर देगा।

यह सुन अश्वपति ने कहा कि हे सावित्री तेरा कल्याण हो। किसी दूसरे वर का वरण कर लो। हे शुभलोचने यही तेरे विवाह का समय है। सावित्री ने कहा– हे तात मैं मन से भी किसी अन्य को नहीं चाहती, जो मैंने वरा है, वही मेरा पति होगा। पहले मन से विचार कर पीछे कहे, चाहे शुभ हो वा अशुभ हो, पीछे करते हैं। इस कारण मैं मन से भी किसी दूसरे पुरुष का वरण नहीं कर सकती। राजा और पण्डित एक ही बार कहा करते हैं। एक ही बार कन्या दी जाती है, सज्जनों की ये तीनों बातें एक ही बार होती है। यह जानकर मैं किसी भी तरह विचलित नहीं होऊँगी। सगुण, निर्गुण, मूर्ख, पण्डित, दीर्घायु अथवा अल्पायु चाहे कुछ भी हो पर वही मेरा पति होगा। इन्द्र ही क्यों न मिले मैं दूसरे का वरण नहीं करूँगी। यह जानकर आपकी जो इच्छा सो करें।

नारद जी ने कहा राजन् सत्यवान में सावित्री की मति स्थिर हो गयी है। आप इसका शीघ्र ही विवाह संस्कार सम्पन्न कर दें। राजा मंत्रियों के साथ सावित्री को लेकर वन में सत्यवान के पिता के यहाँ गये। सावित्री एवं अश्वपति ने उनका चरण स्पर्श किया। वे लोग अपना नाम बताकर बगल में खड़े हो गये। द्युमत्सेन ने वन में आने का समाचार पूछा तो अश्वपति ने कहा कि आपके दर्शन मात्र से मेरा कुशल हो गया। मेरी सावित्री नाम की पुत्री ने आपके पुत्र का वरण किया है। यह निष्पाप आपके पुत्र को अपना पति बनाना चाहती है। इस कारण मेरा आपका संबंध हो यही मैं चाहता हूँ। द्युमत्सेन ने कहा कि मैं बूढ़ा हूँ, नेत्रहीन हूँ। वन का कन्दमूल फल ही हमारा आहार है। राज्य से च्यूत हूँ। मेरा

पुत्र भी वन के कन्द मूलों पर ही आश्रित रहता है। आपकी पुत्री वन के कष्टों को कैसे सहन कर सकेगी। वह दु:खों को क्या जाने? इस कारण मैं नहीं चाहता। अश्वपति ने कहा कि मेरी पुत्री ने यह सब जानकर आपके पुत्र का वरण किया है। अन्ततः राजा ने अपनी पुत्री सावित्री का विवाह सत्यवान से कर दिया और बहुत सारा धन भी प्रदान किया। अश्वपति द्युमत्सेन का अभिवादन कर अपने राज्य चले गये।

सावित्री सत्यवान को पाकर उसी तरह आनन्दित रहने लगी जिस तरह इन्द्र को पाकर शची। हे ब्रह्मर्षे सत्यवान भी उसे पत्नी रूप में पाकर परम प्रसन्न हुआ। वह वन में इस प्रकार विहार करने लगा जैसे नन्दन वन में इन्द्र विहार किया करते हैं। सावित्री के मन में नारद के वचन समाहित थे। इस कारण उसने इस वट सावित्री व्रत का नाम लिया। वह दिनों को गिनती हुई सत्यवान का समय समीप जानकर आनन्द न ले सकी। भर्ता के मरने का समय जानकर इस तीन दिन के व्रत में दिन रात स्थिर हो गयी। तीन रात पूरी करके पितर देवताओं का तर्पण किया। सास श्वसुर के चरणों में वन्दना की। सुव्रत सत्यवान एक मजबूत कुठार लेकर वन जाने को उद्यत हुआ। उससे सावित्री ने कहा कि आप इस समय वन न जाइये। और यदि जाना ही चाहते हैं तो मुझे भी साथ ले चलें। इस आश्रम में आज एक वर्ष हो गया। मैंने वन नहीं देखा है, मैं वन देखना चाहती हूँ। हे स्वामिन्! कृपा करिये। सत्यवान बोला– मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ यदि मेरे माता-पिताजी तुम्हें आज्ञा दें तो तुम हमारे साथ चल सकती हो।

पति के ऐसा कहने पर सावित्री ने सास श्वसुर के चरणों में प्रणाम किया और कहा कि मैं वन देखना चाहती हूँ। भर्ता के साथ वन में जाने की आप लोगों से अनुमति चाहती हूँ। द्युमत्सेन ने कहा कि कल्याणी अभी आपने व्रत किया है। व्रत का पारण करिये उसके बाद वन चली जाना। सावित्री ने कहा कि मैंने व्रत का पारण कर लिया है। चन्द्रोदय के बाद भोजन करूँगी। इस समय मुझे पति के साथ वन जाने की आज्ञा दें। यह सुन द्युमत्सेन ने उत्तर दिया कि जो आपको अच्छा

लगे उसे प्रसन्नता के साथ करें। सावित्री सास एवं श्वसुर के चरणों की वन्दना करके अपने पति के साथ वन को चली गयी। वन में फल फूल खिले हुए थे। सुन्दर हिरण इधर-उधर भाग रहे थे, सत्यवान से मृगों एवं वृक्षों का नाम पूछती हुई मृग समूहों को देखती हुई जा रही थी परन्तु उसका हृदय काँप रहा था। सत्यवान ने शीघ्रता के साथ फल तोड़े, काठ इकट्ठा करके उसकी मजबूत गाँठ बाँधी, वृक्ष का अवलम्ब लेकर कार्य पूरा किया। साध्वी महासती सावित्री वट वृक्ष के मूल में बैठी हुई थी। काठ का बोझ उठाते समय सत्यवान के सिर में दर्द हो गया। उसे अत्यन्त ग्लानी हुई, शरीर काँपने लगा। वृक्ष के पास आकर सावित्री से बोला मेरा शरीर काँप रहा है। मेरे सिर में दर्द है। हे कल्याणी! मेरे सिर में शूल के से काँटे चुभ रहे हैं। हे सुव्रते! मैं तेरी गोद में सोना चाहता हूँ। वह अपने पर भरोसा रखने वाली उसके मौत के समय को जानती थी। वह जान गई कि मौत आ चुकी है वह सावधान मनसा बैठ गई। सत्यवान भी उसकी गोद में सिर रखकर सो गया। उस समय वहाँ कृष्ण पिंगल एक पुरुष उपस्थित हुआ। उसने कहा कि इसे छोड़ दो। वाक्य का मतलब समझने वाली सावित्री ने उससे पूछा कि संसार को भयभीत करने वाले आप कौन हैं? मुझे कोई पुरुष नहीं डरा सकता। यह सुनकर लोक भयंकर यमराज ने कहा हे वरारोहे! तेरे पति की आयु समाप्त हो गयी है। मैं इसे बाँधकर ले जाऊँगा यही हमारी इच्छा है।

यह सुनकर सावित्री ने कहा कि मैंने सुना है कि आपके दूत मृतक शरीर को लेने जाते हैं फिर आप स्वयं कैसे? यम ने अपनी चेष्टा कहते हुए बतलाया कि सत्यवान धर्मात्मा, रूपवान गुणों का खजाना है। वह मेरे दूतों के द्वारा ले जाने योग्य नहीं है। इस कारण मैं स्वयं ही आया हूँ। इसके बाद सत्यवान के शरीर से पाशों से बंधे इस कारण वश में आये हुए अङ्गुष्ठमात्र पुरुष को यमराज ने बलपूर्वक खींच लिया। तदनन्तर सत्यवान का शरीर निष्प्राण, निःश्वास, प्रभारहित, बुरा, चेष्टा रहित हो गया और यमराज दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। दुःखी सावित्री भी यम के पीछे चली क्योंकि वह नियम और व्रतों से सिद्ध पदवी पा चुकी थी तथा पतिव्रता थी। यमराज उसको पीछे आती हुई

देखकर बोले तू जा इसका अन्त्येष्टि संस्कार कर। तूने पति के प्रेम में जो अपना कर्त्तव्य था उसका निर्वाह किया है। जहाँ तक आया जा सकता है वहाँ तक आयी भी। सावित्री ने कहा कि प्रत्येक पत्नी का यही धर्म है कि जहाँ तक पति जाये वहाँ तक वह जाये। तप, गुरुभक्ति, पतिप्रेम और आपकी कृपा से मैं कहीं नहीं रुक सकती। तत्व को मानने वाले विद्वानों ने सात पद पर मित्रता कहा है। मैं उस मैत्री को दृष्टि में रखकर कुछ कहती हूँ सुनिये। लोलुप वन में रहकर धर्म का आचरण नहीं कर सकते, न ब्रह्मचारी न सन्यासी ही हो सकते हैं। विज्ञान के लिए धर्म को कारण कहा गया है। इस कारण सज्जन पुरुष धर्म को ही प्रधान मानते हैं। सज्जनों के माने हुए एक ही धर्म से हम दोनों उस मार्ग को पा गये हैं। इस कारण मैं गुरुकुल वास और सन्यास नहीं चाहती। इस गार्हस्थ धर्म को ही सज्जन प्रधान कहा करते हैं। यम ने कहा कि आपके एक-एक वर्ण एवं शब्दों में व्यंग्य पदार्थ भरा हुआ है। मैं इससे परम प्रसन्न हुआ हूँ। बिना इसके जीवन दान के जो तुम्हारी इच्छा हो वर माँग सकती हो।

सावित्री ने कहा कि मेरे श्वसुर राज्य च्युत होकर वनवासी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे आपकी कृपा से नेत्र पाकर बलवान हो जायें तथा सूर्य के समान तेजस्वी हों ऐसा वर दीजिये। यमराज ने तथास्तु कहकर सावित्री को अपने आश्रम पर जाने को कहकर प्रस्थान किया। सावित्री पुनः पीछे-पीछे चलीं। सावित्री ने कहा कि पति के समीप मुझे परिश्रम ही क्या है? जहाँ मेरा पति है, वहाँ मैं हूँ। आप जहाँ मेरे पति को ले चलेंगे वहीं मैं चलूँगी। इसमें मुझे कुछ भी श्रम नहीं होगा। सज्जनों की सभी इच्छा करते हैं ऐसा लोग कहते हैं। सज्जनों का साथ निष्फल नहीं होता। इस कारण सदैव ही सज्जनों की सङ्गति करनी चाहिए। यमराज ने कहा कि आपका वचन मेरे मन के अनुकूल बुद्धि एवं बल को बढ़ाने वाला हितकारी है। हे भामिनी बिना सत्यवान के जीवन के दूसरा जो चाहे सो वर माँग ले। सावित्री बोली कि मेरे श्वसुर का छीना हुआ राज्य पुनः उन्हें मिल जाये तथा मेरे श्वसुर अपने धर्म का भी त्याग न करें। यह मेरा दूसरा वरदान है।

यमराज बोले तेरा ससुर थोड़े ही समय में अपना राज्य पा जायेगा। वह कभी न धर्म छोड़ेगा। जो चाहती थी वह तुझे मिल गया, अब अपने घर जा व्यर्थ श्रम क्यों करती हो? सावित्री ने कहा कि आपने प्रजा को नियम में बाँध रखा है इसलिए आपको लोग यम कहते हैं। मैं जानती हूँ। कृपया मेरी बात सुनिये। मन, वाणी, अन्तःकरण से किसी के साथ वैर न करना, दान देना, आग्रह का परित्याग करना यह सज्जनों का सनातन धर्म है। ऐसा ही यह लोक है। इसमें शक्तिशाली सज्जन पुरुष वैरियों पर भी दया करते देखे जाते हैं। यमराज ने कहा– जिस प्रकार प्यासे को पानी अच्छा लगता है उसी प्रकार तुम्हारा वचन मुझे अच्छा लग रहा है। तुम सत्यवान के प्राण को छोड़कर अन्य कोई वर माँग सकती हो। सावित्री ने कहा कि मेरे निपुत्री पिता के सौ औरस पुत्र हो। यम ने कहा कि तुम्हारे पिता को कुलवर्धन शुभ लक्षण वाले सौ पुत्र हो। अब तुम वापस जा क्योंकि बहुत दूर आ चुकी हो।

सावित्री ने कहा कि पति के सामने मुझे कुछ भी दूर नहीं है। क्योंकि मेरा मन पति के पास बहुत दूर तक पहुँचता है। चलते-चलते मुझे एक बात याद आ गई। कृपया उसे भी सुन लीजिए। आप आदित्य के प्रतापी पुत्र हैं इस कारण लोग आपको वैवस्वत कहते हैं। आपका व्यवहार प्रजा के साथ समान रूप से है इसलिए आपको धर्मराज भी कहा जाता है। सज्जनों जैसा अपने पर भी विश्वास नहीं हुआ करता। इस कारण सज्जनों पर सबका प्रेम होता है। यमराज ने कहा कि हे अंगने मैं तुमसे प्रसन्न हूँ तुम बिना इसके जीवन के कोई दूसरा वर माँग लो। सावित्री ने कहा कि मेरे पुत्र सत्यवान् से ही औरस पुत्र हो, दोनों से बलवीर्यशाली सौ पुत्रों का परिवार हो यह मैं चौथा वर माँगती हूँ। यम ने कहा कि हे अबसे तुझसे और सत्यवान से सौ औरस पुत्रों का प्रीतिकर कुल होगा। आप दूर आ चुकी है वापस जाइये। क्यों परिश्रम करती हो? सावित्री ने कहा कि सज्जनों की सदा धर्म से ही प्रीति होती है। सज्जन कभी भी उससे दुःखी नहीं होते। सज्जनों का सज्जनों के साथ रहना कभी व्यर्थ नहीं होता। न उन्हें उनसे भय होता है। सन्त ही सत्य से सूर्य को चला रहे हैं। तप से पृथ्वी को धारण कर रहे हैं, सत्य ही

भूतनाथ की गति है, सज्जनों के बीच सज्जन दुःखी नहीं होते। सज्जनों का यह सदा का ही व्यवहार है। सज्जन दूसरे का प्रयोजन करते हुए परस्पर ही अपेक्षा नहीं रखते। सज्जनों की कृपा कभी व्यर्थ नहीं जाती, न उनके साथ धन ही नष्ट होता है न मान ही, ये बात सज्जनों में सदा ही रहती है। इस कारण सज्जन रक्षक होते हैं। यमराज ने कहा कि तु अत्यन्त धर्मानुकूल वचन बोलती हो और वर माँग। सावित्री बोली कि मैंने आपसे पुत्र दाम्पत्य योग के बिना नहीं माँगे हैं। न मैंने यही माँगा है कि किसी दूसरी विधि से पुत्र हों। इस कारण आप मुझे यही वरदान दे कि मेरे पति जीवित हो जायें क्योंकि पति के बिना मैं मरी हुई हूँ। पति के बिना मैं सुख, स्वर्ग, श्री और जीवन कुछ भी नहीं चाहती। आपने मुझे सौ पुत्र का वर दिया है, आप ही मेरे पति का हरण किये जा रहे हैं। बताइये आपके वाक्य कैसे सत्य होंगे। मैं वर माँगती हूँ कि सत्यवान जीवित हो जाये जिससे आपके वर की रक्षा हो सके। मार्कण्डेय जी कहते हैं कि यम ने, ऐसा ही हो कहकर सत्यवान को पाशों से मुक्त कर दिया। और कहा हे कुलनन्दिनी। मैंने आपके पति को मुक्त कर दिया है, यह निरोग और सिद्धार्थ होगा। इसे आप ले जा सकती हैं। यह आपके साथ चार सौ वर्ष की आयु को प्राप्त होगा। सावित्री वट के पास आकर सत्यवान के सिर को गोद में रखकर बैठ गई। हे ब्रह्मन् – सत्यवान् चैतन्य होकर बोला कि हे वरारोहे. मैंने अभी एक स्वप्न देखा है। उसके बाद जो हुआ उसे सत्यवान् ने कह सुनाया, सावित्री ने भी जो यम से बात हुई थी सब सुना दिया। सायंकाल होते ही पुत्र के आगमन की प्रतीक्षा करने वाले द्युमत्सेन इधर-उधर भागने लगे। पुत्र दर्शन की इच्छा से एक आश्रम से दूसरे आश्रम जाने लगे। और रो रोकर कहने लगे कि हम दोनों अन्धों की लकड़ी चित्राश्व कहाँ चला गया। इस प्रकार बार-बार पुत्र-पुत्र कहकर दुःखी होने लगे। राजा की अचानक आँखें खुल गयी। इस आश्चर्य को देखकर आश्रमवासी द्विजवर्य ने कहा कि आपके तप से आपको नेत्र मिल गये। नेत्र प्राप्ति ने बता दिया कि अभी आपको पुत्र भी मिलेगा। भगवान शिव ने कहा कि जब तक वे दोनों आपस में बात कर रहे थे तभी सावित्री के साथ

सत्यवान उपस्थित हुआ। सभी ब्राह्मणों एवं अग्रजों, सास-ससुर इत्यादि को प्रणाम किया।

उस समय मुनि गणों ने पूछा हे शुभानने सावित्री, अपने वृद्ध, श्वसुर के नेत्र प्राप्ति का कारण जानती हो। सावित्री ने कहा कि हे श्रेष्ठ मुनियों मैं चक्षु प्राप्ति के वास्तविक कारण को नहीं जानती, मेरे पति चिरकाल के लिए सो गये थे इस कारण विलम्ब हो गया। सत्यवान् बोला कि हे विप्रों, इस सावित्री के प्रभाव से सब हो गया और कोई कारण नहीं दिखता। यह सब सावित्री के तप का ही फल है। मैंने सावित्री के व्रत का ही प्रभाव देखा है। भगवान शिव ने कहा कि सत्यवान् कह ही रहा था कि इतने में उसकी राजधानी के प्रधान पुरुष ने आकर कहा कि जितने दुष्ट मंत्रियों ने आपका राज्य बलपूर्वक छीना था वह किसी अन्य के द्वारा मार दिये गये हैं। अब प्रभु आपको अपना राज्य प्राप्त कराने के लिए लेने आये हैं। आप मंत्रियों एवं पुरोहितों के साथ अभिषेक करायें। यह सुनकर राजा नगर में पहुँचा और उसका अभिषेक हुआ। वर के प्रभाव से उन्होंने सौ पुत्रों को भी प्राप्त किया। हे ब्रह्मन् – यह हमने इस व्रत का माहात्म्य बतलाया। इस व्रत के प्रभाव से बीती आयु का पति भी जीवित रह पाता है। इस सौभाग्य देने वाले व्रत को सभी स्त्रियों को करना चाहिए। सनत्कुमार जी बोले– कि हे देवेश इस व्रत का विधान बतलाइये। ईश्वर बोले हे मानद! एक भक्त से या नक्ताहार से या भुक्ति के त्याग से एक साल का नियम करके तीन दिन लंघन करे पवित्र चौथे दिन में चन्द्रमा को अर्घ्य देकर सुवासिनियों को पूजे। सावित्री प्रसावित्री को गन्ध पुष्पों से पूजे, मिथुनों को शक्ति के अनुसार पूजन कराकर सुखपूर्वक भोजन करावें।

व्रत करते समय ऐसा संकल्प करें कि हे जगत् की धात्रि, व्रत को सम्पन्न कर मैं भोजन करूँगी। हे शुभे! मेरे उन कार्यों को निर्विघ्न सम्पन्न करिये। प्रतिदिन न्यग्रोध में पारी लगावें। एक बाँस का पात्र बनाकर उसमें एक प्रस्थ बालू भर दें। सप्त-धान्य भी एक प्रस्थ रखें। उसे दो वस्त्रों से आवेष्टित कर दें। उस पर ब्रह्माजी के साथ सावित्री को

विराजमान करावें। सोने की सावित्री सत्यवान बनावें। पिटक और कुठार चाँदी के हों, ब्रह्मा की घाटी सावित्री देवी को ऋतुफलों से पूजें। हरिद्रा से रंगे हुए कंठ सूत्रों से पूजें। हे मुनि सत्तम! सावित्री का माहात्म्य सुनना चाहिए। पुराण एवं सतियों के चरित्र सुनने चाहिए। सावित्री एवं प्रसावित्री की विविध स्तोत्रों से पूजन की जानी चाहिए। हे महेश्वरी, तू त्रेता अग्नि में है, तू सब लोक में व्याप्त है। इस कारण मेरी सदा सर्वत्र रक्षा कर। हे शुभे! मुझे रूप, यश, सौभाग्य प्रदान करें। हे सुरेश्वरी! जैसे आपका आपके पति से कभी वियोग नहीं होता है उसी प्रकार मेरा भी मेरे पति से कभी वियोग न हो। कमल के आसन पर बैठी हुई देवी को इस प्रकार पूजकर तीन दिन पूरे करके चौथे दिन सोलह मिथुनों को वस्त्रदान और भूषणों से पूजें। सुयोग्य सपत्नीक आचार्य का पूजन कर सोने की सावित्री को इस मन्त्र से देना चाहिए।

सावित्री ही जगत् की माता-पिता है। हे ब्राह्मण मेरी दी हुई सावित्री को ग्रहण करें। मैं किसी जन्म में विधवा न होऊँ। मैं मरकर भी ब्रह्मलोक में पति के साथ रहूँ। चिरकाल तक उत्तम भोगों को भोंगू। इस प्रकार वट सावित्री की कथा पूर्ण हुई।

वर्ष भर में होने वाला यह वट सावित्री व्रत हेमाद्रि में भविष्य पुराण से लेकर लिखा है।

११.३ हरितालिकाव्रत – कथा

मन्दारमालांकुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय। दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय।।१।। कैलासशिखरे रम्ये गौरी पृच्छति शंकरम्। गुह्याद् गुह्यतरं गुह्यं कथयस्व महेश्वर।।२।। सर्वेषां धर्मसर्वस्वमल्पायासां महत् फलम्। प्रसन्नोऽस्मि यदा नाथ तथ्यं ब्रूहि ममाग्रतः।।३।। केन त्वं हि मया प्राप्तस्तपोदानव्रतादिना। अनादिमध्यनिधनो भर्ता चैव जगतप्रभुः।।४।। **ईश्वर उचाव–** श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि तवाग्रे व्रतमुत्तमम्। यद् गोप्यं मम सर्वस्वं कथयामि तव प्रिये।।५।। यथा चोडुगणे चन्द्रो ग्रहाणां भानुरेव च। वर्णानां च यथा विप्रो देवानां विष्णुरुत्तमः।।६।। नदीषु च यथा गङ्गापुराणानां तु भारतम्। वेदानां च यथा साम इन्द्रियाणां मनो यथा।।७।। पुराणवेदसर्वस्वमाध्यमेन यथोदितम्। एकाग्रेण श्रृणुष्वैतद् यथादृष्टं पुरातनम्।।८।। येन पुण्यप्रभावेण प्राप्तमर्द्धासन मम। सर्वं तत् कथयिष्येऽहं त्वं मम प्रेयसी यतः।।९।। भाद्रे मासि सिते पक्षे तृतीया हस्तसंयुता। तदनुष्ठानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।।१०।। श्रृणू देवि त्वया पूर्वं यद्व्रतं चरितं महत्। तत् सर्वं कथयिष्यामि यदावृत्तं हिमाचले।।११।। **पार्वत्युवाच–** कथं कृतं मया नाथ व्रतानामुत्तमं व्रतम्। तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्सकाशान्महेश्वर।।१२।। **ईश्वर उवाच–** अस्ति तत्र महानेको हिमवान् नग उत्तमः। नानाभूतिसमाकीर्णो नासनाद्रुमसमाकुलः।।१३।। नानापक्षिसमायुक्तो नानामृगविचित्रतः। तत्र देवा सगन्धर्वाः सिद्धचारणगुह्यकाः।।१४।। विचरन्ति सदा हृष्टा गन्धर्वा गीततत्पराः। स्फाटिकैः काञ्चनैः श्रृङ्गैर्मणिवैदूर्यभूषितैः।।१५।। भुजैर्लिखन्निवाकाशं सुहृदो मन्दिरं यथा। हिमेन पूरितो नित्यं गङ्गाध्वनि–निनादितः।।१५।। भुजैर्लिखन्निवाकाशं सुहृदो मन्दिरं यथा। हिमेन पूरितो नित्यं गङ्गाध्वनिनिनादितः।।१६।। पार्वति त्वं यथा बाल्ये परमाचरती तपः। अब्दद्वादशकं देवि धूम्रपानमधोमुखी।।१७।। संवत्सरचतुःषष्टिं पक्वपर्णासनं कृतम्। माघमासे जले मग्ना वैशाखे चाग्निसेविनी।।१८।। श्रावणे च बहिर्वासा अन्नमानविवर्जिता। दृष्ट्वा तातेन तत् कष्ट चिन्तया

दु:खितोऽभवत्।।१९।। कस्मै देया मया कन्या एवं चिन्तातुरोऽभवत्। तदैवाम्बरतः प्राप्तो ब्रह्मपुत्रस्तु धर्मवित्।।२०।। नारदो मुनिशार्दूलः शैलपुत्रीदिदृक्षया। दत्त्वाऽर्घ्यं विष्टरं पाद्यं नारदं प्रोक्तवान् गिरिः। **हिमवानुवाच–** किमर्थमागतः स्वामिन् वदस्व मुनिसत्तम। महाभाग्येन सम्प्राप्तं त्वदागमनमुत्तमम्।।२२।। **नारद उवाच–** श्रृणु शैलेन्द्र मद्वाक्यं विष्णुना प्रेषितोऽस्म्यहम्। योग्यं योग्याय दातव्यं कन्यारत्नमिदं त्वया।।२३।। वासुदेवसमो नास्ति ब्रह्मविष्णुशिवादिषु। तस्मै देया त्वया कन्या अत्रार्थे सम्मतं मम।।२४।। **हिमवानुवाच–** वासुदेवः स्वयं देवः कन्यां प्रार्थयते यदि। तदा मया प्रदातव्या त्वदागमनगौरवात्।।२५।। इत्येवं गदितं श्रुत्वा नभस्यन्तर्दधे मुनिः। ययौ पीताम्बरधरं शङ्खचक्रगदाधरम्।।२६।। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा मुनीन्द्रस्तमभाषत। श्रृणु देव भवत्कार्यं विवाहो निश्चितस्तव।।२७।। हिमवांस्तु तदा गौरीमुवाच वचनं मुदा। दत्तासि त्वं मया पुत्रि देवाय गरुडध्वजे।।२८।। श्रुत्वा वाक्यं पितुर्देवी गता सा सखिमन्दिरम्। भूमौ पतित्वा सा तत्र विललापातिदु:खिता।।२९।। विलपन्ती तदा दृष्ट्वा सखी वचनमब्रवीत्। किमर्थं दु:खिता देवि कथयस्व ममाव्रतः।।३०।। एतन्मे चिन्ततं कार्यं तातेन कृतमन्यथा।।३२।। तस्माद् देहपरित्यागं करिष्येऽहं न संशयः। पार्वत्या वचनं श्रुत्वा सखी वचनमब्रवीत्।।३३।। **सख्युवाच–** पिता यत्र न जानाति गमिष्यावो हि तद् वनम्। इत्येवं सम्मतं कृत्वा नीतासि त्वं महद् वनम्।।३४।। पिता निरीक्षयामास हिमवांस्तु गृहे-गृहे। केन नीतासि मे पुत्री देवदानवकिन्नरैः।।३५।। नारदाग्रे कृतं सत्यं किं दास्ये गरुडध्वजे। इत्येवं चिन्तयाऽऽविष्टो मूर्च्छितो निपपात ह।।३६।। हा हा कृत्वा प्रधावन्ति लोकास्ते गिरिपुङ्गवम्। ऊचुगिरिवरं सर्वे मूर्च्छाहेतुं गिरे वद।।३७।। **गिरिरुवाच–** दु:खस्य हेतु श्रृणुवत कन्यारत्नं हतं मम। द्रष्टा वा कालसर्पेण सिंहव्याघ्रेण वा हता।।३८।। न जाने क्व गता पुत्री केन दुष्टेन वा हता। चक्रम्ये शोकसंतप्तो वातेनैव महातरुः।।३९।। गिरिर्नाद् वनं यातस्त्वदालोकनकारणात्। सिंहव्याघ्रैश्च भल्लैश्च रोहिभिश्च महावनम्।।४०।। त्वं चापि विषमे घोर व्रजन्ती सखिभिः सह। तत्र दृष्ट्वा नदी रम्यां तत्तीरे च महागुहाम्।।४१।। तां प्रविश्य सखीसार्द्धभवभोगविवर्जिता। संस्थाप्य बालुकालिङ्गं पार्वत्या सहितं मम।।४२।। व्रतराजप्रभावेण आसनं चलितं

मम। सम्प्राप्तोऽहं तदा तत्र यत्र त्वं सखिभिः सह।।४४।। प्रसन्नोस्मि मया प्रोक्तं वरं ब्रूहि वरानने। **पार्वत्युवाच** – यदि देव प्रसन्नोऽसि भर्ता भव महेश्वर।।४५।। तथेत्युक्त्वा तु सम्प्राप्तः कैलासं पुनरेव च। ततः प्रभाते सम्प्राप्ते नद्यां कृत्वा विसर्जनम्।।४६।। पारणं तु कृतं तत्र संख्या सार्द्धं त्वया शुभे। हिमवानपि तं देशमाजगाम धनं वनम्।।४७।। चतुराशा निरीक्षस्तु विह्वलः पतितो भुवि। दृष्ट्वा तव नदीतीरे प्रसुप्तं कन्यकाद्वयम्।।४८।। उत्थाप्योत्सङ्गमारोप्य रोदनं कृतवान् गिरिः। सिंह व्याघ्राहिभल्लूकैर्वने दुष्टे कुतः स्थिता।।४९।। **पार्वत्युवाच–** श्रृणु तात मया ज्ञातं त्वं दास्यसीश्वराय माम्। तदन्यथाकृतं तात तेनाहं वनमागता।।५०।। ददासि तात यदि मामीश्वराय तदा गृहम्। आगमिष्यामि नैवं चेदिह स्थास्यामि निश्चितम्।।५१।। तथेत्युक्त्वा हिमवता नीतासि त्वं गृहं प्रति। पश्चाद् दत्ता त्वमस्माकं कृत्वा वैवाहिकी क्रियाम्।।५२।। तेन व्रतप्रभावेण सौभाग्यं साधितं त्वया। अद्यापि व्रतराजस्तु न कस्यापि निवेदितः।।५३।। नामास्य व्रतराजस्य श्रृणु देवि यथाभवत्। अलिभिर्हरिता यस्मात् तस्मात् सा हरितालिका।।५४।। देव्युवाच नामेदं कथितं देव विधिं वद मम प्रभो। किं पुण्यं किं फलं चास्य केन च क्रियते व्रतम्।।५५।। **ईश्वर उवाच–** श्रृणु देवि विधिं वक्ष्ये नारीसौभाग्य-हेतुकम्। करिष्यति प्रयत्नेन यदि सौभाग्यमिच्छति।।५६।। तोरणादि प्रकर्तव्यं कदलीस्तम्भमण्डितम्। आच्छाद्य पट्टवस्त्रैस्तु नानावर्णाविचित्रितैः।।५७।। चन्दनेन सुगन्धेन लेपयेद् गृहमण्डितम्। शङ्खभेरीमृदङ्गैस्तु कारयेद् बहुनि स्वनाम्।।५८।। नाना मङ्गलगीतं च कर्तव्यं मम सद्मनि। स्थापयेद् बालुकालिङ्गं पार्वत्या सहितं मम।।५९।। पूजयेद् बहुपुष्पैश्च गन्धधूपादिभिर्नवैः। नानाप्रकारै-र्नैवेद्यैः पूजयेज्जागरं चरेत्।।६०।। नालिकेरैः यूपफलैजम्बीरैर्बकुलस्तथा। बीजपूरैः सन्तरङ्गैः फलैश्चान्यैश्च भूरिशः।।६१।। ऋतुकालोद्भवैर्भूरिप्रकारैः कन्दमूलकैः। ॐ नमः शिवाय शान्ताय पञ्चवक्त्राय शूलिने।।६२।। नन्दिभृङ्गिमहाकालगणयुक्ताय शम्भवे। शिवायै हरकान्तायै प्रकृत्यै सृष्टिहेतवे।।६३।। शिवायै सर्वमाङ्गल्यै शिवरूपे जगन्मये। शिवे कल्याणदे नित्यं शिवरूपे नमोऽस्तुते।।६४।। शिवरूपे नमस्तुभ्यं शिवायै सततं नमः। नमस्ते ब्रह्मचारिण्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः।।६५।। संसारभयसंतापात् त्राहि मां सिंहवाहिनि। येन कामेन देवि त्वं पूजितासि महेश्वरि।।६६।। राज्यं

सौभाग्यसम्पत्तिं देहि मामम्ब पार्वति। मन्त्रेणानेन देवि त्वां पूजयित्वा मया सह।।६७।। कथां श्रुत्वा विधानेन दद्यादन्नं च भूरिशः। ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति देया वस्त्रहिरण्यगाः।।६८।। अन्येषां भूयसी देया स्त्रीणां वै भूषणादिकम्। भर्त्रा सह कथां श्रुत्वा भक्तियुक्तेन चेतसा।।६९।। कृत्वा व्रतेश्वरं देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते। सप्तजन्म भवेद् राज्यं सौभाग्यं चापि वर्द्धते।।७०।। तृतीयायां तु या नारी आहारं कुरुते यदि। सप्तजन्म भवेद् बन्ध्या वैधव्यं जन्मजन्मनि।।७१।। दारिद्रयं पुत्रशोकं च कर्कशा दुःखभागिनी। पच्यते नरके घोरे नोपवासं करोति या।।७२।। राजते काञ्चने ताम्रे वैष्णवे वाऽथ मृण्मये। भाजने विन्यसेदन्नं सर्वस्वफलदक्षिणम्। दानं च द्विजवर्याय दद्यादन्ते च पारणा।।७३।। एवं विधा या कुरुते च नारी त्वया समाना रमते च भर्त्रा। भोगाननेकान् भुवि भुज्यमाना सायुज्यमन्ते लभते हरेण।।७४।। अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। कथाश्रवणमात्रेण तत् फलं प्राप्यते नरैः।।७५।। एतत् ते कथितं देवि तवाग्रे व्रतमुत्तमम्। कोटियज्ञकृतं पुण्यमस्यानुष्ठानमात्रतः।।७६।।

।। इति भविष्योत्तरपुराणे हरगौरीसंवादे हरितालिकाव्रतकथा सम्पूर्णा ।।

११.४ हरितालिका व्रत कथा – हिन्दी टीका

अथ कथा – सूत जी शौनकादिकों से कहते हैं कि, एक की अलका तो मन्दार की मालाओं से आकुलित हो रहे हैं तो दूसरे का शिखर कपालों की माला से अंकित हो रहा है, एक के पास दिव्य वसन है तो एक बिल्कुल कपड़ा ही नहीं रखता, उन दोनों शिवा और शिवजी के लिये नमस्कार है।।१।। कैलास के शिखर पर गौरी जी शिवजी से पूछ रहीं है कि जो गोप्य से भी अत्यन्त गोपनीय गोप्य हो हे महेश्वर! उसे मुझे कहिये।।२।। हे नाथ! यदि आप प्रसन्न हो तो मेरे सामने कहें, जो सब धर्मों का सर्वस्व हो, जिसमें परिश्रम थोड़ा और फल अधिक हो।।३।। मैंने ऐसा कौन सा तप, दान, व्रत किया था जो आप आदि, मध्य तथा अन्त से रहित एवम् जगत् के स्वामी, मुझे भर्त्ता के रूप में प्राप्त हुए।।४।। शिवजी बोले– हे देवि! सुनो मैं तेरे आगे एक उत्तम व्रत कहता हूँ, यह व्रत मेरे सर्वस्व की तरह योग्य है, हे प्रिये! मैं तुझे कहूँगा।।५।। जैसे उडुगण में चन्द्रमा, ग्रहों में सूर्य, वर्णों में ब्राह्मण, देवों में विष्णु।।६।। नदियों में गङ्गा, पुराणों में भारत, वेदों में सामवेद और इन्द्रियों में मन श्रेष्ठ है।।७।। ऐसे ही यह पुराण वेद का सर्वस्व, जैसा कि आगम ने कहा है उसे एकाग्र मन से सुनो जैसा कि, मैं यह प्राचीन वृत्तान्त देख रहा हूँ।।८।। जिस व्रत के प्रभाव से तुमने मेरा आधा आसन पाया, तुम मेरी प्यारी हो वह सब कारण मैं तुम्हें कहूँगा।।९।। भाद्रपद शुक्ल हस्त संयुक्त तृतीया के दिन, हरितालिका का अनुष्ठान मात्र करने से व्यक्ति सब पापों से छूट जाता है।।१०।। हे देवि! सुनो तुमने जो पहिले बड़ा भारी व्रत किया था वो सब कहूँगा जैसा कि, हिमालय पर हुआ था।।११।। पार्वतीजी बोलीं कि, हे नाथ! मैंने कैसे सब व्रतों का श्रेष्ठ व्रत किया, हे महेश्वर! यह सब मैं आपसे सुनना चाहती हूँ।।१२।। शिव बोले कि, एक हिमवान् नाम का दिव्य उत्तम पर्वत है, जो अनेक तरह की भूमि से व्याप्त तथा अनेक तरह के वृक्षों से समाकुल है।।१३।। जिस पर

अनेक तरह के पक्षीगण रहते हैं, अनेकों तरह के नवजीवों से विचित्र हो रहा है, जिस पर सिद्ध चारण, यक्ष, गन्धर्व और देव।।१४।। हृष्ट हुए विचरते रहते हैं, गन्धर्व गीत गाने में तत्पर रहते हैं, जो मणि और वैदूर्य से विभूषित स्फटिक और सोने के शृङ्ग रूपी।।१५।। भुजों से आकाश को लिखते हुए स्थित है, जैसे कि, विष्णु का मंदिर होता है जो हिम से पूरित तथा गङ्गा जी की ध्वनि से शब्दायमान रहता है।।१६।। हे पार्वति! आपने बाल्यकाल में परम तप करते हुए बारह वर्ष तक धूम्रपान करते हुए नीचे को मुख करके तप किया।।१७।। चौसठ वर्ष तक सूखे पत्ते खाकर रही, माघ मास में जल तथा वैशाख में अग्नि सेवन किया।।१८।। श्रावण में अन्नपान छोड़कर बाहर रही, जब आपके पिता ने यह दुःख देखा तो चिन्ता से दुःखी हो गये।।१९।। कि, इस लड़की को मैं कैसे विवाहूँ! उसी समय धर्म के जानने वाले ब्रह्मपुत्र आकाशमार्ग से प्रगट हुए।।२०।। मुनि शार्दूल नारद जी को शैलपुत्री को देखने की इच्छा थी, हिमालय नारदजी को अर्घ्य, विष्टर और पाद्य देकर बोले।।२१।। हे स्वामिन्! आप किसलिये आये हैं? हे मुनि सत्तम! कहिये, आपका श्रेष्ठ आगमन मुझे बड़े भाग्यों से मिला है।।२२।। नारदजी बोले कि, हे शैलेन्द्र हिमवान्! सुनिये, मुझे विष्णु ने भेजा है कि, इस योग्य कन्या रत्न को योग्य वर के लिए दे देना चाहिये।।२३।। ब्रह्मा, विष्णु और शिव में वासुदेव के बराबर कोई नहीं, इस कारण आप अपनी कन्या को विष्णु के लिये दे दें, यह मेरी भी संमति है।।२४।। यह सुन हिमवान् बोले, कि वासुदेव स्वयं आकर यदि कन्या माँगेगे तो मैं दे दूँगा क्योंकि, आप उनके लिये आये हैं।।२५।। नारदजी यह सुनकर आकाश में अन्तर्ध्यान हो गये और वहाँ पहुँचे जहाँ कि, पीताम्बर वस्त्र पहिन, शंख, चक्र, गदा और पद्म हाथ में लिये हुए विष्णु भगवान् रहते हैं।।२६।। हाथ जोड़कर नारदजी बोले कि, हे देव! सुनिये आपका ही कार्य है मैंने आपके विवाह का योग लगाया है।।२७।। उस समय हिमवान् तो प्रसन्नता के साथ गौरी जी से बोले कि, हे पुत्रिके! मैंने तुम्हें गरुड़ध्वज देव के लिये दे दिया है।।२८।। पिता के ये वचन सुनकर पार्वती जी सखी के घर चली गयीं और वहाँ जमीन पर गिर, अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगीं।।२९।। इन्हें रोते हुए

देखकर सखी बोली कि, हे देवि! किसलिये इतनी दुःखी हो रही हो? मेरे सामने कहो।।३०।। जो आपकी इच्छा होगी वही मैं करुँगी, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है, यह सुन पार्वतीजी बोली कि, हे सखि! जो मेरे मन की बात है उसे।।३१।। प्रेम से सुन, मैंने तो यह निश्चय किया था कि, महादेव को अपना पति बनाऊँगी पर पिता ने कुछ और ही कर दिया।।३२।। हे प्यारी सखि! इस कारण अब मैं देह परित्याग करूँगी, पार्वती के ऐसे वचन सुनकर सखी बोली कि।।३३।। जिसको पिता नहीं जानते उस वन को चलेगी, शिवजी पार्वतीजी से कहने लगे कि, ऐसा निश्चय करके तुम्हें तुम्हारी सखी वन को ले गयी।।३४।। आपके पिता हिमवान् ने आपको घर घर देखा कि, मेरी बेटी को देव, दानव और किन्नरों में से कौन ले गया।।३५।। मैंने नारद के सामने सत्य कह दिया था अब विष्णु को क्या दूँगा? इस प्रकार की चिन्ता से मूर्च्छित होकर वे भूमि पर गिर गये।।३६।। उस समय लोग हाहाकार करके भगे और बोले कि, गिरिवर! मूर्च्छित क्यों हो रहे हो, बताओ तो सही।।३७।। गिरि बोले कि, मेरे दुःख के कारण को सुनो, मेरा कन्या रत्न हर लिया गया है या तो उसे कालसर्प ने खा लिया है अथवा व्याघ्र ने मार डाला है।।३८।। न जाने बेटी कहाँ चली गई, कौन दुष्ट चुरा ले गया? शिवजी पार्वती जी से कहते हैं कि, इस प्रकार पिताजी शोक सन्तप्त होकर, ऐसे काँपने लगे जैसे कि, आँधी से भारी वृक्ष काँपा करता है।।३९।। और आपको देखने के कारण वन-वन फिरने लगे जो कि, व्याघ्र, भल्ल और रोहियों से सापों से महाघने हो रहे थे।।४०।। आप भी घोर वन में सखियों के साथ घूमती हुई एक रमणीक नदी देख उसके किनारे की सुन्दर गुफा में।।४१।। सखी के साथ घुस गयीं, अन्न का परित्याग कर दिया। पार्वती सहित मेरा बालू का लिंग स्थापित करके।।४२।। पूजते हुए भाद्रपद शुक्ल तृतीया को हस्त नक्षत्र में व्रतादि करके, रात्रि को गाने बजाने के साथ जागरण किया।।४३।। व्रतराज के प्रभाव से मेरा आसन हिल गया उसी समय मैं वहाँ पहुँचा, जहाँ कि, आप सखियों के साथ विराजमान थीं।।४४।। मैंने कहा कि, मैं प्रसन्न हूँ, हे वरानने! वर माँगना हो सो माँग यह सुन पार्वती बोली कि, हे महेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे पति

हो जाइये।।४५।। मैंने कहा अच्छी बात है फिर कैलास चला आया आपने इसके बाद प्रभात काल नदी में प्रतिमा का विसर्जन किया।।४६।। आपने सखियों के साथ पारण किया तथा हिमवान भी उस जगह चले आये जो कि, आपकी गुहा वाला महावन था।।४७।। वहाँ चारों दिशाओं को देख विह्वल हो जमीन पर गिर गये, पीछे नदी किनारे पर देखा तो दो लड़कियाँ सो रही हैं।।४८।। उन्हें उठा गोदी में बिठाकर रोने लगे कि, बेटियो! सिंह, व्याघ्र, सर्प और भल्लूकों से दूषित इस वन में कहाँ से आ बैठी।।४९।। यह सुन पार्वती जी बोलीं कि, मुझे यह पता था कि आप मुझे शिवजी को देंगे, पर जब यह पता चला कि, आपने अन्यथा किया है तो मैं वन चली आई।।५०।। यदि आप मुझे महादेवजी के लिये दें तो मैं घर चलूँ नहीं तो मैं यहाँ ही रहूँगी यह निश्चय है।।५१।। हिमवान् ने कहा कि, ऐसा ही होगा और आपको घर ले आये, पीछे विवाहविधि करके आपको हमें दे दिया।।५२।। उसी व्रत के प्रभाव से आपने सौभाग्य सिद्ध किया यह व्रत आज तक मैंने किसी के सामने नहीं कहा।।५३।। इस व्रतराज का नाम हरितालिका क्यों पड़ा? सो सुन! आली सहेलियों ने जिसका हरण किया इस कारण तुम हरितालिका हुई।।५४।। देवी बोली कि, प्रभो! आपने यह तो मेरे हरितालिका इस नाम का निर्वचन किया, इस व्रत का क्या फल है, करने से क्या पुण्य होता है और किसने इस व्रत को किया है?।।५५।। शिवजी बोले कि, हे देवि! इसकी विधि को कहता हूँ-यह स्त्रियों को सौभाग्य देने वाला है, जो सौभाग्य चाहती हैं वो प्रयत्न से करेंगी।।५६।। केला के स्तंभ से मंडित, तोरणादिक करने चाहिये, उन्हें अनेक वर्णों से चित्रित, पट्ट वस्त्र से ढकना चाहिये।।५७।। सुगन्धित चन्दन से गृह मण्डल को लीपना चाहिये तथा शंख, भेरी और मृदङ्ग के बारंबार शब्द कराने चाहिये।।५८।। मेरे मंदिर में अनेक तरह के मंगल गीतों के शब्द करने चाहिये तथा बालू का मेरा लिङ्ग पार्वती सहित स्थापित करना चाहिये।।५९।। नये गन्ध, धूपादिक और पुष्पों से मेरा पूजन करना चाहिये तथा अनेक प्रकार के नैवेद्यों से पूजकर जागरण करना चाहिये।।६०।। नारियल, सुपारी, जंजीर, बकुल, बीजपुर और नारंगी आदि फलों से बारंबार पूजन करना

चाहिये।।६१।। तथा ऋतुकाल से होने वाले कन्दमूलों से पूजन करे, पंचवक्त्र शान्त तथा शूलधारी शिव के लिये नमस्कार है।।६२।। नन्दि, भृङ्गि, महाकाल आदि अनेक गणयुक्त शम्भु के लिये तथा हर की कान्ता सृष्टि की हेतु जो प्रकृति रूपी शिवा है उसके लिये नमस्कार है।।६३।। हे सर्वमंगलों के देने वाली, जगन्मय शिवरूप कल्याणदायके! शिवरूपे शिवे! तेरे लिये सदा बारंबार नमस्कार है।।६४।। शिवरूपा तेरे लिये तथा शिवा के लिए सतत नमस्कार है, ब्रह्मचारिणी के लिये नमस्कार तथा हर की कान्ता तथा जगद्धात्री के लिये नमो नमः है।।६५।। हे सिंह पर चढ़ने वाली संसार के भय के सन्ताप से मेरी रक्षा करने वाली, हे महेश्वरि देवि! जिस काम से मैंने तेरा पूजन किया है उसे पूरा करिये।।६६।। हे अंब! हे पार्वति! राज्य, सौभाग्य और सम्पत्ति दीजिये, इस मंत्र से मेरा और देवी का पूजन करना चाहिये।।

११.५ मङ्गलागौरीव्रतकथा

युधिष्ठिर उवाच – नन्दनन्दन गोविन्द श्रृण्वतो बहुला: कथा:। श्रुतं ममोत्के पुत्रायुष्करं श्रोतु मम व्रतम्।।१।। **श्रीकृष्ण उवाच–** अवैधव्यकरं वक्ष्ये व्रतं चारिनिषूदन। श्रृणु त्वं सावधान: सन् कथा वक्ष्ये पुरातनीम्।।२।। कुण्डिनं नाम नगरं ख्यातस्तत्र द्विजप्रिय:। आसीद् वणिग् धर्मपालो नाम्ना बहुधनोऽपि स:।।३।। सपत्नीको ह्यपुत्रोऽसौ नास्तीति व्याकुलो ह्यदि। तस्य गेहे भस्मलिप्तो देहे रुद्राक्षधारक:।।४।। जटिलो भिक्षुको नित्यमागच्छन् प्रियदर्शन:। अन्नं नाङ्गीकारासाविति दृष्ट्वाऽबलावदत्।।५।। स्वामिन्नयं सदायाति भिक्षुको जटिलो गृहे। न स्वीकरोत्यस्मदन्नमिति दृष्ट्वा ममाधिकम्।।६।। दु:खं प्रजायते नित्यं श्रुत्वा भार्यावचोऽब्रवीत्। **धर्मपाल उवाच–** प्रिये कदाचिद् गुप्ता त्वं ससुवर्णाङ्गणे भव।।७।। यदा भिक्षार्थमायाति भिक्षोर्वस्त्रान्तरे त्वया। तदा तस्य प्रदेयानि सुवर्णानि प्रियेऽनघे।।८।। अनन्तरं तस्य भार्याचीकरत् स्वामिनोदितम्। जटिलेन तु सा शप्ताऽपत्यं ते न भविष्यति।।९।। श्रुत्वा भिक्षोरिदं वाक्यं दु:खिता तमुवाच ह। स्वामिन् शप्ता त्वया पापा शापादुद्धर सम्प्रति:।।१०।। **जटिल उवाच–** भर्तु: समीपे वक्तव्यं त्वया पुत्रि ममाज्ञया।।११।। नीलवस्त्र: समारुह्य नीलाश्वं गच्छ काननम्। खननं तत्र कर्त्तव्यं यत्राश्वस्ते स्खलिष्यति।।१२।। रम्यं पक्षिभिरायुक्तं मृगसंघद्रुमाकुलम्। सुवर्णरचितं रत्नमाणिक्यादिविभूषितम्।।१३।। नानापुष्पै: समायुक्तं दृश्यं देवालयं तत:। वर्तते तत्रभवती भवानी भक्तवत्सला।।१४।। आराधय त्वं मनसा यथाविध्युद्धरिष्यति। त्वां भवानीति वचनं श्रुत्वा भिक्षो: सुखप्रदम्।।१५।। ववन्दे तस्य चरणौ पुन: पुनररिंदम। तदैव काले जटिलस्त्वन्तर्भूतो बभूव स:।।१६।। सावदत् पतिमत्रेहि श्रृणु भिक्षूक्तमादरात्। यथोक्तमवदद् भर्ता तच्छ्रुत्वा वाक्यमादरात्।।१७।। नीलवस्त्र: समारुह्य नीलाश्वं प्रस्थितो वनम्। गच्छन् नानाविधान् वृक्षान् पथि पश्यन् भयाकुल:।।१८।। मृगान् सिंहान् दन्दशूकान् पथि पश्यन् भयाकुल:। ददर्शासो तडागं च बाहुल्येन विराजितम्।।१९।। रक्तनीलोत्पलैश्चक्रवाकद्वन्द्वैश्च

राजितम्। स्नानं चकार तत्रासौ तर्पणाद्यपि भूरिशः।।२०।। पुनरश्वं समारुह्य जगाम गहनं वनम्। स्खलितं वाजिनं पश्यन्नश्वादुत्तीर्य तत् क्षणम्।।२१।। चखान पृथिवीं तत्र यावद् देवालयं मुदा। ददर्श च महास्थूलं देवालयमसौ युतम्।।२२।। रत्नैर्मुक्ताफलैश्चैव माणिक्यैश्चापि सर्वतः। पूजयामास जटिलवाक्यं स्मृत्वातिविस्मितः।।२३।। सुवर्णयुक्तवस्त्राणि चन्दनायक्षताञ्छुभान्। चम्पकादीनि पुष्पाणि धूपं दीपं विशेषतः।।२४।। नानापक्वान्नसंयुक्तं रसैः षड्भिः समन्वितम्। नानाशाकैः समायुक्तं सदुग्धघृतशर्करम्।।२५।। नैवेद्यं करशुद्ध्यर्थं चन्दनं मलयाद्रिजम्। सम्पाद्य तुष्टहृदयः फलताम्बूलदक्षिणाः।।२६।। श्रद्धया पूजायामास धर्मपालो महाधनः। जजाप मन्त्रान् गुप्तोऽसौ सगुणध्यान-पूर्वकम्।।२७।। देवी भक्तं समागत्य लोभयामास सादरम्। प्रसन्नावददत्रेयं पूजा सम्पादिता कथम्।।२८।। येन सम्पादिता तस्मै ददामि वरमद्भुतम्। इति श्रुत्वा धर्मपालो देव्यग्रे प्राञ्जलिः स्थितः।।२९।। **भगवत्युवाच**— धर्मपाल त्वया सम्यक् पूजा सम्पादितानघ। वरं याचय मद्भक्त ददामि बहुलं धनम्।।३०।। **धर्मपाल उवाच**— बहुला धनसम्पत्तिर्वर्तते त्वत्प्रसादतः। अपत्यं प्राप्तुमिच्छामि पितृणां तारकं शुभम्।।३१।। आयाति भिक्षुको गेहे गृह्णाति न मदन्नकम्। तेन मे बहुलं दुःखं सभार्यस्योपजायते।।३२।। इति दीनवचः श्रुत्वा देवी वचनमब्रवीत्। **देव्युवाच**— धर्मपालक तेऽदृष्टेऽपत्यं नास्ति सुखप्रदम्।।३३।। तथापि किं याचयसि कन्यां विगतभर्तृकम्। पुत्रमल्पायुषं वाथाप्यन्धं दीर्घायुषं सुतम्।।३४।। **धर्मपाल उवाच**— पुत्रमल्पायुषं देहि तावता कृतकृत्यताम्। प्राप्नोमि चोद्धरिष्यामि पितृंश्च मम घोरगान्।।३५।। **देव्यूवाच**— मत्पार्श्वे वर्तमानस्य नाभावारुह्य शुण्डिनः। तत्पार्श्ववर्तिचूतस्य गृहीत्वा फलमद्भुतम्।।३६।। पत्न्यै देयं ततः पुत्रो भविष्यति न संशयः।।३७।। इति देवीवचः श्रुत्वा गत्वा तत्पार्श्व एव च। नाभिं गजमुखस्याथारुह्य जग्राह मोहतः।।३८।। फलान्युत्तीर्य च ततः फलमेकं ददर्श सः। एवं पुनः पुनः कुर्वन् फलमेकं ददर्श सः।।३९।। क्षुब्धो गणपतिश्चाथ धर्मपालाय शप्तवान्। षोडशेवत्सरे प्राप्ते तेऽहि पुत्रं दशिष्यति।।४०।। धर्मपालः फलं सम्यग् वस्त्रे बद्ध्वागमद् गृहम्। फलं पत्न्यै ददौ सापि भक्षयित्वा पतिव्रता।।४१।। गर्भं सा धारयामास पत्या सह सुसंगता। सम्पूर्णे नवमे मासे प्रासूतं सुतमुत्तमम्।।४२।। जातकर्म चकारास्य पिता संतुष्टमानसः। षष्ठीपूजां

चकारास्य-षष्ठे तु दिवसे ततः। द्वादशेऽहनि सम्प्राप्ते शिवनाम्नाऽऽजुहाव तम्। षष्ठे मासि चकारासावन्नप्राशनमद्भुतम्।।४४।। तृतीये वत्सरे चूडामष्टमेऽब्दे ह्यनुत्तमम्। कृत्वोपनयनं पार्थ विप्रोऽभूत् तुष्टमानसः।।४५।। दशमे वत्सरे प्राप्तेऽब्रवीद् भार्या पतिव्रता। **भार्योवाच–** बालकस्या विवाहोऽपि कर्तव्यः सुमुहूर्त्तके।।४६।। **धर्मपाल उवाच–** मया संकल्पितं काश्यां गमनं बालकस्य तत्। कृत्वा समायातु ततो विवाहोऽस्य भविष्यति।।४७।। पुत्रोऽसौ प्रेषितस्तेन श्यालकेन समन्वितः। वाराणस्यां प्रस्थितोऽसौ गृहीत्वा बहुलं धनम्।।४८।। कुर्वन्तौ पथि सद्धर्म प्रतिष्ठापुरमीयतुः। क्रीडन्तयः कन्यका दृष्टास्तत्र देशे मनोरमे।।४९।। तासां समाजे गौराङ्गी सुशीला नाम कन्यका। तया सह सखी काचिच्चकार कलहं भृशम्।।५०।। गालनं च ददौ तस्यै रण्डेऽभाग्ये मुहुर्मुहुः। **सुशीलोवाच–** सखि त्वया गालनं मे व्यर्थं दत्तं शुभासने।।५१।। जनन्या मे मानवत्याश्चास्ति गौरीव्रतं शुभम्। तस्य प्रसादात् सकलाः सम्बन्धिन्यः प्रियाः स्त्रियः।।५२।। आजन्माविधवा जाताः किं पुनः कन्यका ध्रुवम्। वक्ष्ये तस्य प्रभावं किं व्रतराजस्य भामिनी।।५३। पूजने धूपगन्धोऽयं यत्र तत्र सुखं भवेत्। इति श्रुत्वा ततो वाक्यं विस्मयोत्फल्लोचनः।।५४।। मातुलश्चिन्तयामास बालकस्य प्रियं ततः। शतजीवी भवेदेव एतद्धस्ताक्षता यदि।।५५।। पतन्त्यमुष्य शिरसि विभाव्येति पुनः पुनः। सुशीलामेव पश्यन् स विस्मयोत्फल्ललोचनः।।५६।। सुशीलाप्रस्थिता गेहे तदनुप्रस्थितावुभौ। स्वगृहं पाप गौराङ्गी निकटे तद्गृहस्य तौ।।५७।। सतडागे रम्यदेशे वासं चक्रतुरादरात्। विवाहकाले सम्प्राप्ते सुशीलाजनको हरिः।।५८।। विवाहोद्योग-वान्जातो निश्चिकाय हरं वरम्। असमर्थं हरं दृष्ट्वा तन्मातापितरावुभो।।५९।। ययाचतुः शिव बद्ध्वाञ्जली विनययुक्तको। वरपितरावूचतुःउपस्थितो विवाहो नौ पुत्रस्य शुभया हरेः।।६०।। सुशीलया कन्ययाऽयमसमर्थश्च दृश्यते। अतो देयः शिवः श्रीमल्लग्नकाले त्वया विभो।।६१।। लग्नं भविष्यति ततो देयोऽस्माभिः शिवस्तव। **मातुल उवाच–** अवश्यं लग्नकालेऽसौ शिवो ग्राह्यः प्रियंवदः।।६२।। ततो मुहूर्त्ते सम्प्राप्ते विवाहमकरोच्छिवः। तत्रैव शयनं चक्रे ससुशीलः प्रियंवदः।।६३।। स्वप्ने सा मङ्गलागौरी मातृरूपेण भास्वता। सुशीलामवदत् साध्वी हितं वचनमेव च।।६४।। **गौर्युवाच–** सुशीले तव गौराङ्गि भर्तुर्दर्शार्थमागतः।।६५।। महान भुजंग उत्तिष्ठ दुग्धं

स्थाप्य तत्पुरः। घटं च स्थापयाशुत्वं तन्मध्ये स गमिष्यति।।६६।। कर्पासमङ्गान्निष्कास्य बन्धनीयस्त्वया घटः। प्रातरुत्थाय देहि त्वं मात्रे वायनकं शुभम्।।६७।। इति गौरवचः श्रुत्वा सुशीला क्षणमुत्थिता। ददर्शाग्रे निःश्वसन्तं कृष्णसर्पं महाभयम्।।६८।। ततश्चकार गौर्युक्तं प्रवृत्ता निद्रितुं ततः। उवाच वर आसन्नः क्षुल्लग्ना महती मम।।६९।। भक्षणायाशु देहि त्वं लड्डुकादिकमुत्तमम्।।७०।। भक्षयित्वा शिवो हैमे तस्मिन् पात्रेऽङ्गुलीयकम्। दत्त्वा ततः स्थापयामास स्थले गुप्ते शुभाननः।।७१।। सुखेन शयनं चक्रे पृथिव्यां सर्वकोविदः। ततः प्रभातसमये शिव आगाद् गृहं स्वकम्।।७२।। स्नानशुद्धा सुशीला सा मात्रे वायनकं ददौ। माता ददर्श तन्मध्ये मुक्तहारमनुत्तमम्।।७३।। ददौ प्रियायै कन्यायै सहसा तुष्टमानसा। क्रीडाकाले तु सम्प्राप्ते हर आगात् तु मण्डपे।।७४।। आदेशयत् सुशीला ता क्रीडार्थं जननी ततः। **सुशीलोवाच** – नायं वरो मे जननि येन पाणिग्रहः कृतः। अनेन सह नास्तीह क्रीडेच्छा तथा न मे।।७५।। इति श्रुत्वा समाक्रान्तौ चिन्तया पितरौ ततः। अन्नदानमुपायं च कन्यापतिविशोधने।।७६।। तदारभ्य चक्रतुस्तौ पुराणोक्तविधानतः। सुशीला पादयोश्चक्रे क्षालनं मुद्रिकान्विता।।७७।। जलधारां ददौ माता चन्दनं पुत्रको हरेः। हरिर्ददौ च ताम्बूलं बुभुजस्तत्र मानवाः।।७८।। इति रीत्यान्नदानं तत् प्रवृत्तं भिक्षुसौख्यदम्। तावुभौ प्रस्थितौ काश्यां प्राप्तौ काशी सुखप्रदाम्।।७९।। निर्मलाम्भसि गङ्गायाः स्नानं चक्रतुरादरात्। स्वर्गद्वारं प्रस्थितौ तौ कुर्वन्तौ धर्ममुत्तमम्।।८०।। पीताम्बराणि ददतुर्भिक्षुकाणां गृहे गृहे। आशीषश्च ददुस्तस्मै चिरञ्जीवी भवेति ते।।८१।। विश्वेश्वरं समायातौ नत्वा स्तुत्वा पुनः पुनः। स्वयं गृहं प्रस्थितौ तौ शिवो मार्गे ततोऽवदत्।।८२।। **शिव उवाच**– काये मे किञ्चिदस्वास्थ्य मातुलं प्रतिभाति हि। ततः प्राणोत्क्रमे तस्य यमदूता उपस्थिताः।।८३।। मङ्गलागौरिका चापि तेषां युद्धमभून्महत्। जित्वा तान् मङ्गलान् प्राणान् ददौ तस्मै शिवाय च।।८४।। शिवोऽकस्मादुत्थितोऽसौ मातुलं प्रत्युवाच ह। स्वप्ने युद्धं मया दृष्टं मङ्गलायमभृत्ययोः।।८५।। जातास्ते मङ्गलगौर्या ततोऽहं शयनच्युतः। मातुल उवाच यज्जातं शिवं तज्जातं न स्मर्तव्यं त्वया पुनः।।८६।। गच्छाव आवां नगरे पितरौ द्रष्टुमुत्सुकौ। प्रस्थितौ तौ ततस्तस्मात्प्रतिष्ठा पुरमापतुः।।८७।। रम्ये तडागे तत्रैतौ पाकारम्भं विचक्रतुः। दृष्टौ तौ हरिदासीभिर्धैर्योदारधरौ

शुभौ।।८८।। दास्य ऊचुः– अन्नदानं हरेर्गेहे प्रवृत्तं तत्र गम्यताम्। भो दास्यो यात्रिकावावां गच्छावो न क्वचिद् गृहे।।८९।। **उभावुचुतुः–** इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं दास्यो जग्मुः स्वकं गृहम्। स्वस्वामिनिकटे वाक्यमवदन् सादरं तदा।।९०।। प्रेषयामास हस्त्यादिरत्नवस्त्राणि भूरिशः।।९१।। तद् दृष्ट्वाविस्मतौ तौ च जग्मतुश्च हरेर्गृहम्। हरिर्मातुलमभ्यर्च्य शिवं पूजितुमागतः।।९२।। हरिः प्रपच्छ साश्चर्यं शिवं मङ्गलदर्शनम्। **हरिरुवाच–** किञ्चिच्चिह्नं तवास्त्यत्र ब्रूहि मे शिव दर्शय।।९४।। हरेस्तु तद् वचः श्रुत्वा शिवः संतुष्टमानसः। ममेदं चिह्नमस्तीहेत्युक्त्वा तद्गृहमागतः।।९५।। तत आनीय तत् पात्रं दर्शयामास सादरम्। तत् पात्रं च हरिर्दृष्ट्वा कन्यादानं चकार सः।।९६।। ददौ रत्नानि वस्त्राणि सुवर्णानि बहून्यपि। तामादाय प्रस्थितौ तौ ददतो बहुलं धनम्।।९७।। श्रावणे मासि सम्प्राप्ते व्रतं भौमे चकार सा। भुक्त्वा सर्वे प्रस्थितास्ते योजनं जग्मुरुत्तमाः।।९८।। **सुशीलोवाच–** गौरीविसर्जनं चापि दीपमानं तथैव च। कृत्वा गन्तव्यमस्माभिः पितरौ द्रष्टुमादरात्।।९९।। इत्युक्त्वा आगता यत्र गौर्यां आवाहनं कृतम्। ददृशुस्तत्र सौवर्णं देवालय-मनुत्तमम्।।१००।। गौरीविसर्जनं दीपमानं सा च व्यचीकरत्। ततः सर्वे प्रस्थितास्ते पितरौ द्रष्टुमुत्सुकाः।।१०१।। कुण्डिनासन्नदेशे तान् दृष्ट्वा विस्मयिनो जनाः। अब्रुवंस्ते धर्मपालं सोत्कण्ठं प्रियदर्शनाः।।१०२।।

जना ऊचुः– धर्मपालाद्य ते पुत्रः सभार्यः श्यालकस्तथा। समायातो वयं दृष्ट्वा अधुनैव समागताः।।१०३।। यावज्जना वदन्त्येवं तावत् सोऽपि समागतः। नमस्कारांश्चकारासौ पितृभ्यां पितृवल्लभः।।१०४।। मातुलोऽपि नतिं चक्रे भगिनीधर्मपालयोः। सुशीला श्वशुरं चापि श्वश्रूं नत्वा स्थिता तदा।।१०५।। **श्वश्रूरुवाच–** सुशीले तद् व्रतं ब्रूहि यद्व्रतस्य प्रभावतः। आयुर्वृद्धिः शिशुर्मेऽपि जाता कमललोचने।।१०६।। **सुशीलोवाच–** न जानेऽहं व्रतं श्वश्रूजनि मानवतीहरौ। श्वशुरं धर्मपालं च श्वश्रूं च भवती तथा।।१०७।। मङ्गलां देवतां चैवं वरं तु युवयोः सुतम्। इत्युक्त्वा च सुशीला सा बुभुजे स्वान्तहर्षिता।।१०८।। **श्रीकृष्ण उवाच–** तस्माद् व्रतमिदं धर्म स्त्रीभिः कार्यं सदैव तु। **युधिष्ठिर उवाच–** फलमस्य श्रुतं कृष्णविधानं ब्रूहि केशव।।१०९।। **श्रीकृष्ण उवाच–** विवाहात् प्रथमं

वर्षमारभ्य पञ्चवत्सरम्। श्रावणे मासि भौमेषु चतुर्षु व्रतमाचरेत्।।११०।। प्रथमे वत्सरे मातुर्गेहे कर्तव्यमेव च। ततो भर्तृगृहे कार्यमवश्यं स्त्रीभिरादरात्।।१११।। तत्र तु प्रथमे वर्षे संकल्प्य व्रतमुत्तमम्। रम्ये पीठे च संस्थाप्य मङ्गलां च तदव्रत:।।११२।। गोधूमपिष्टरचितमपुलं दृषदं तथा। महान्तमेकं दीपं च घृतेन परिपूरितम्।।११३।। वर्त्या षोडशभिः सूत्रैः कृपया सहितं न्यसेत्। उपचारैः षोडशभिर्गन्धपुष्पादिभिस्तथा।।११४।। पत्रैपुष्पैः षोडशाभिर्नानाधान्यैश्च वीरकै:। धान्याकैस्तण्डुलैश्चैव स्वच्छैः षोडशसंख्यकै:।।११५।। अपामार्गस्य पत्रैश्च दूर्वाधर्त्तूरपत्रकै:। सर्वैः षोडशसंख्याकैर्बिल्वपत्रैश्च पञ्चभि:।।११६।। पूजयेन्मङ्गलां गौरीमङ्गलपूजां ततश्चरेत्। धूपादिकं निवेद्यार्थ वायनं तु समर्पयेत्।।११७।। ब्राह्मणाय तथा मात्रेऽन्याभ्यश्चैव यत्नत:। लड्डुकंचुकिसंयुक्तं सवस्त्रफलदक्षिणम्।।११८।। नीराजनं ततः कुर्याद् दीपैः षोडशसंख्यकै:। भोक्तव्या दीपकाश्चैव अन्नं लवणवर्जितम्।।११९।। रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः स्नात्वा समाहिता। विसर्जनं मङ्गलायां तु दीपमानं क्रमाच्चरेत्।।१२०।। पञ्चसंवत्सरेष्वेवं कर्तव्यं पतिमिच्छुभि:।

।। इति श्रीभविष्यपुराणे मङ्गलागौरी व्रतं विधिसहितं सम्पूर्णम् ।।

११.६ मङ्गलागौरी व्रत कथा – हिन्दी टीका

युधिष्ठिर जी बोले – हे नन्द नन्दन! हे गोविन्द बहुत सी कथाएँ सुनते-सुनते मेरे कान पुत्र और आयु आदि करने वाले उत्तम व्रत को सुनने के लिये आकुल हो उठे हैं। श्री कृष्ण जी बोले – हे बैरियों को मारने वाले! मैं सदा सुहाग देने वाला व्रत कहता हूँ। आप सावधान होकर सुनें, इस पर एक पुरानी कथा कहता हूँ।।२।। कुंडिन नाम के नगर में ब्राह्मणों का प्यारा धर्मपाल नामक धनाढ्य वैश्य रहता था।।३।। उसको कोई पुत्र नहीं था, इस कारण स्त्री सहित व्याकुल रहा करता था, उसके घर, शरीर में भस्म लगाये रुद्राक्ष पहिने।।४।। जटाधारी सुहावना एक भिक्षुक रोज भिक्षा माँगने आया करता था, पर वह उसके घर से भिक्षा नहीं लेता था, यह देख सेठानी बोली।।५।। हे स्वामिन्! यह जटिल भिक्षुक हमारे घर हमेशा आता है पर हमारे अन्न को नहीं लेता यह देख मुझे प्रतिदिन अधिक दु:ख होता है, यह सुन धर्मपाल अपनी स्त्री से बोला कि, हे प्यारी! किसी दिन छिपकर तू सोना लेकर आंगन में ही जा।।६।।७।। जब वह भिक्षा माँगने आवे तो उसकी झोली में सुवर्ण डाल देना।।८।। स्वामी के कथन के बाद उसकी स्त्री ने वैसा ही किया, जटिल ने शाप दे दिया कि, तुझको अपत्य न होगा।।९।। भिक्षुक के इन वचनों को सुन दुखित होकर बोली कि, आपने शाप तो दे दिया अब इसका उद्धार भी बता दीजिए।।१०।। ऐसा कहकर दीन वचन बोलती हुई उनके चरणों में गिर गई। तब वह जटिल बोला कि, मेरी आज्ञा से तुम अपने पति से कहना।।११।। कि, नीले वस्त्र पहिने नीले घोड़े पर चढ़ वन चला जाय, जहाँ घोड़ा गिर जाय वहाँ ही खोदना।।१२।। पक्षियों से युक्त सुन्दर मृग और वृक्षों से घिरा हुआ सोने का बना रत्न माणिक्यादि से विभूषित हुआ।।१३।। अनेक फूलों से ढका एक देव मंदिर देखेगा, उसमें भक्त वत्सला भवानी विराजती है।।१४।। उनकी विधिपूर्वक आराधना करने से शापोद्धार हो जायेगा ये सुखकारी वचन सुनकर उसने!!१५।। हे अरिन्दम कहकर! बारंबार चरण वन्दना की। उसी समय वह जटिल तो अन्तर्ध्यान

हो गया॥१६॥ उसके कथनानुसार वह अपने पति से बोली कि, हे पतिदेव! यहाँ पधारिये, भिक्षुक के वचन आदर के साथ सुन लें, इसके पीछे जो कुछ उन्होंने कहा था वह सब यथावत् कह सुनाया, पति ने भी आदर के साथ सुनकर॥१७॥ नीले वस्त्र पहनकर नीले घोड़े पर सवारी की, मार्ग में चलता हुआ वह अनेक तरह के वृक्षों को देखकर डर गया॥१८॥ मृग, सिंह, माखी, मच्छर और बिच्छुओं को देखकर तो और भी घबरा गया। आगे चलकर उसे एक तडाग मिला जो अत्यन्त शोभायमान हो रहा था॥१९॥ वह रक्त नील उत्पल और चकवों से निराला दीख रहा था, उसने वहाँ स्नान और तर्पण आदि किया॥२०॥ फिर घोड़े पर चढ़कर गहन वन को चला गया, घोड़े को स्खलित देखकर उसी क्षण घोड़े से उतर पड़ा॥२१॥ वहाँ तब तक आनन्द के साथ खोदता रहा जब तक कि देवालय न दिखे। तदनन्तर वहाँ उसने एक देवालय देखा जो चारों ओर से रत्न मुक्ताफल और माणिक्यों से सुशोभित था यह देख चकित हो जटिल के वाक्य का स्मरण करके पूजा की॥२२॥२३॥ सुवर्णयुक्त वस्त्र, शुभचन्दन, अक्षत्, चंपक आदि के पुष्प, धूप, दीप॥२४॥ तथा अनेकों पक्वान्नों सहित छः रसीले युक्त दुग्ध, घृत और शक्कर समेत अनेकों शाकों सहित नैवेद्य एवं कर शुद्धि के लिए मलयागिरी चन्दन और फल, ताम्बूल, दक्षिणा विधिपूर्वक समर्पण कर, परम प्रसन्न हुआ॥२५॥२६॥ महाधनी धर्मपाल को कमी क्या थी, श्रद्धा के साथ देवी का पूजन किया, सगुण के ध्यान के साथ बड़े गुप्त मन्त्रों का जप भी किया॥२७॥ देवी भक्त के पास आकर इसे प्रलोभन देने लगी। प्रसन्न होकर बोली कि, इसने यह पूजा कैसे की॥२८॥ जिसने यह पूजा की है उसे अद्‌भुत वर दूँगी, धर्मपाल यह सुनकर प्रसन्न हो देवी के आगे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया॥२९॥ भवानी बोली कि, हे निष्पाप धर्मपाल। तूने अच्छी तरह पूजा की है, हे मेरे प्यारे भक्त! तू वर माँग, मैं तुझे बहुत सा धन देना चाहती हूँ॥३०॥ धर्मपाल बोला कि आपकी कृपा से घर धन सम्पत्ति तो बहुत है, किन्तु मैं पितरों के तारने वाले सुयोग्य अपत्य को चाहता हूँ॥३१॥ क्योंकि, मेरे घर भिक्षुक आकर मेरे हाथ की भीख भी नहीं लेते, इससे मुझे और मेरी

स्त्री को बड़ा भारी कष्ट होता है।।३२।। उसके ये दीन वचन सुनकर देवी बोली कि, हे धर्मपाल! तेरे भाग्य में सुखदायक बेटा लिखा नहीं है।।३३।। तो भी आप क्या विधवा कन्या माँग रहे हो, या सुयोग्य अल्पायु पुत्र अथवा दीर्घायु अन्धा पुत्र माँगते हो।।३४।। धर्मपाल बोला कि, सुयोग्य अल्पायु पुत्र भी दे दो तो इतने से ही कृतकृत्य हो जाऊँगा, यदि पा जाऊँ तो नरक में पड़े पितरों का उद्धार हो जाये।।३५।। देवी बोली कि, मेरे पास तो यह शुण्डी बैठा हुआ है, इसकी नाभि पर चढ़कर।।३६।। समीप के आम से अद्भुत फल ले जा। पत्नी को देदे, इनसे पुत्र होगा, इसमें संशय नहीं है।।३७।। देवी के वचन सुनकर उसके पार्श्ववर्ती गणेश की नाभि पर चढ़कर मोह से बहुत से फल तोड़े।।३८।। पर उतर कर देखा तो एक ही दिखाई दिया, इस तरह कई बार उतरा चढ़ा बहुत से फल लिए पर एक ही दिखा।।३९।। यह देख गणपति बहुत क्षुब्ध हुए और उसे शाप दे दिया कि, सोलहवीं साल में तेरे पुत्र को साँप काट लेगा।।४०।। धर्मपाल उस फल को अच्छी तरह कपड़े में बाँधकर घर ले आया, वह फल पत्नी को दिया, वह पतिव्रता उस फल को खाकर।।४१।। पति सहवास करते ही गर्भवती हो गई, महीना पूरा होते ही नौवें महीने में उत्तम सुत पैदा किया।।४२।। पिता ने प्रसन्न होकर उसका जातकर्म कराया, छठे दिन छठी पूजी।।४३।। बारहवें दिन उसका शिवनाम रख दिया, छठे मास उसका अन्न प्राशन संस्कार कराया।।४४।। तीसरे वर्ष चूडाकर्म तथा आठवें वर्ष उपनयन करके वह परम प्रसन्न हुआ।।४५।। जब वह दस वर्ष का हुआ तो उसकी माँ बोली कि, अच्छे दिन इस बालक का विवाह भी कर देना चाहिये।।४६।। धर्मपाल बोला कि, मैंने बालक को काशी भेजने का संकल्प कर रखा है, यह काशी होकर आ जाये इसका विवाह हो जायेगा।।४७।। स्त्री से यह कह साले के साथ बेटे को काशी भेज दिया, वे दोनों बहुत सा धन साथ लेकर काशी चल दिये।।४८।। मार्ग में धर्म करते हुए प्रतिष्ठापुर आये वहाँ भव्य जगह में कन्याएँ खेलती दिखीं।।४९।। उसमें गौर वर्ण की एक सुशीला नाम की कन्या भी थी, उसके साथ उसकी सहेली लड़ गई।।५०।। तू रांड अभागिन हो ऐसी बहुत सी गालियाँ भी दीं। तब उससे सुशीला

बोली कि, ए अच्छे मुख वाली! तूने मुझे व्यर्थ गालियाँ दी हैं।।५१।। मेरी मानवती माँ ने गौरी व्रत कर रखा है। उस व्रत के प्रसाद से उसके सम्बन्ध की सभी स्त्रियाँ।।५२।। जन्मभर सुहागिन रहेंगी, उनकी लड़कियों की तो बात ही क्या है? हे भामिनी! मैं उस व्रत का प्रभाव बतलाती हूँ।।५३।। जहाँ-जहाँ उसकी धूप जाती है, वहाँ-वहाँ सुख हो जाता है सुशीला के इन वचनों को सुनकर उसकी लड़ने वाली माँ की आँखें आश्चर्य के मारे चढ़ गईं।।५४।। यह सुन भानजे के साथ काशी जाने वाला मामा अपने भानजे का विचार करने लगा कि, यदि इस कुमारी के हाथ से इसके सिर पर अक्षत गिर जाये तो यह सौ वर्ष की आयु का हो जाये।।५५।। कैसे इस कन्या के हाथ से इसके सिर पर अक्षत पड़े, यह बारंबार सोचने लगा तथा आश्चर्य भरी चौड़ी आँखों से उसी सुशीला को देखने लगा।५६।। सुशीला अपने घर चल दी उसके पीछे वे दोनों चल दिये, सुन्दरी सुशीला अपने घर चली गई वे उस घर के पास ही।।५७।। वहाँ उत्तम तडाग के किनारे अच्छी जगह पर रहने लगे विवाह के समय सुशीला का बाप हरि।।५८।। विवाह का उद्योग करने लगा, उसने हर को वर चुना, हर के माता-पिता ने हर को असमर्थ देखकर दोनों हाथ जोड़कर शिव के मामा के पास पहुँचे और बोले कि, इस सुयोग्य हरि की पुत्री सुशीला के साथ हमारे लड़के का विवाह पक्का हो चुका है, पर यह असमर्थ दीखता है, इस कारण आप सिर्फ लग्न काल के लिए शिव को दे दीजिए।।५९-६१।। लग्न होने के बाद शिव को हम दे देंगे, मातूल बोला कि, आप लग्न काल के लिए अवश्य ही शिव को ले सकते हैं।।६२।। अच्छे मुहूर्त्त में उन्होंने शिव के साथ सुशीला का विवाह कर दिया, उसने वहीं सुशीला के साथ शयन किया।।६३।। स्वप्न में मंगलागौरी माता का रूप धारण कर सुशीला से हितकारी वचन बोली।।६४।। कि, हे गौरांगि सुशीले! तेरे पति को खाने के लिए बड़ा भारी काला साँप आया है। खड़ी हो, उसके सामने दूध रख दे।।६५।। एक घट रख दे, वह उसके भीतर चला जायेगा तू अपने शरीर से वस्त्र निकाल कर उसका मुँह बाँध देना।।६६।। गौरी के कहने से सुशीला उठकर क्या देखती है कि, वैसा ही काला साँप फुंकार मार

रहा है, जो कुछ गौरी ने कहा था सुशीला ने वही किया उसके बाद वह सो गई॥६७॥६८॥ पीछे समीप के पड़ा हुआ वर बोला कि, मुझे भूख लग रही है अच्छे-अच्छे लड्डू खाने को चाहिये॥६९॥ सुशीला ने सुनकर सोने के पात्र में लड्डू रखकर पति को प्रदान किया। शिव ने लड्डू खाकर उस पात्र में अंगूठा पटक उस पात्र को किसी जगह छिपाकर रख दिया। पीछे भूमि पर सुखपूर्वक सोया वह सब बातें जानता था॥७०॥७१॥ प्रातःकाल उठकर अपने घर चला आया। सुशीला ने स्नानकर शुद्ध हो वह घड़े वाला वायना माँ को दे दिया॥७२॥ माता ने जो उसे खोलकर देखा तो उसमें श्रेष्ठ मुक्ताहार मिला। उसने प्रसन्न हो वह अपनी प्यारी लड़की को ही दे दिया॥७३॥ खेलने के समय हर मंडप में आया। माता ने खेलने के लिए सुशीला को आज्ञा दी॥७४॥ सुशीला बोली कि, जिसके साथ मेरा विवाह हुआ है वे यह नहीं है। इस कारण इसके साथ मेरी खेलने की इच्छा नहीं है॥७५॥ यह सुन सुशीला के माँ-बाप वहाँ से चल दिये। कन्या के पति को ढूँढने का उपाय अन्नदान ही समझा॥७६॥ उनकी दान करने की विधि यह थी कि, उस दिन से लेकर उन्होंने पुराणों के कहे विधान के अनुसार सुशीला से चरण धुलाये, मुद्रिका के साथ॥७७॥ जलधारा दी, हरि के पुत्र ने चन्दन तथा हरि ने ताम्बूल दिया मनुष्यों ने खाया॥७८॥ इत्यादि रीति से भिक्षुकों का सुखदाता उनका अन्नदान प्रवृत्त हुआ। इधर वे दोनों मामा भानजे सुखदायी काशी को चल दिये॥७९॥ आदर के साथ गंगा के निर्मल पानी में स्नान किया उत्तम धर्म करते हुए स्वर्गद्वार चल दिये॥८०॥ भिक्षुओं को स्थान-स्थान में पीतवस्त्र दिये तथा भिक्षुओं ने शिव के लिए चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया॥८१॥ विश्वेश्वर के स्थान में जाकर बारंबार नमस्कार स्तुतियाँ कीं पीछे अपने घर को चल दिये रास्ते में शिव मामा से बोला कि॥८२॥ मामा जी! मुझे शरीर में कुछ खराबी मालूम होती है। पीछे प्राणों के उत्क्रमण होने पर यमदूत आ उपस्थित हुए॥८३॥ मंगला गौरी के साथ उनका खूब युद्ध हुआ। मंगला ने उन सबको जीवित प्राण फिर शरीर में डाल दिये॥८४॥ अचानक शिव उठकर मामा से बोला कि, मैंने स्वप्न में मंगलादेवी और यम के नौकरों का युद्ध देखा

था।।८५।। मंगला गौरी ने उन सबको जीत लिया पीछे मैं नींद से खड़ा हो गया, मामा बोला कि, हे शिव! जो हो गया सो हो गया उसे फिर याद न कर।।८६।। चलो नगर चलो वहाँ देखने को उतावले हो रहे होंगे, वहाँ से चले और प्रतिष्ठापुर पहुँचे।।८७।। जहाँ पहिले ठहरे थे वहीं रसोई बनाना प्रारम्भ कर दिया, हरि की दासियों ने देखा कि, दोनों धैर्य और उदारता धारण करने वाले हैं।।८८।। दासी बोली कि, हरि के घर में अन्नदान होता है वहाँ जाओ, वे बोले कि, हम राहगीर हैं किसी के घर नहीं जाते।।८९।। दासी उनके वचन सुनकर घर गई वहाँ की सब बातें आदर के साथ स्वामी को सुना दीं।।९०।। दासियों के सब वचन आदर के साथ सुनकर बहुत से हाथी घोड़े और रत्न वस्त्र भेज दिये।।९१।। यह देख दोनों को बड़ा अचम्भा हुआ हरि के घर पहुँचे, हरि मामा को पूछकर शिव को पूजने गया।।९२।। चरण धोती हुई लड़की लज्जापूर्वक माँ से बोली कि, यही मेरा वर है।।९३।। मंगलकारी दर्शनों वाले शिव से आश्चर्य के साथ हरि पूछने लगे कि, हे शिव! यदि यहाँ कोई तेरा चिह्न हो तो मुझे बता दे।।९४।। हरि के वचन सुन शिव बड़ा सन्तुष्ट हुआ मेरा यह चिह्न तुम्हारे घर है। यह कहकर उसके घर आया।।९५।। वह पात्र जिसमें उसने अपनी मुद्रिका रखी थी, हरि को दिखा दिया। जिसे देख हरि ने कन्यादान कर दिया।।९६।। रत्न, वस्त्र, और बहुत सा सोना दिया, उस कन्या को साथ ले धनदान करते वह अपने नगर चल दिये।।९७।। श्रावण मंगलवार आ जाने पर उसने व्रत किया वे सब भोजन करके एक योजन पहुँचे।।९८।। सुशीला बोली कि, गौरी विसर्जन तथा दीपदान करके पीछे हमें माँ-बाप देखने चलना चाहिये।।९९।। ऐसा कहकर जहाँ आई थी वहीं गौरी का आवाहन किया, वहाँ उन्होंने सोने का उत्तम देवालय देखा।।१००।। वहीं उसने गौरी का विसर्जन और दीपदान किया। वहाँ से वे सब चल दिये। वे दोनों माँ-बाप तथा सास-श्वसुर को देखने के लिये व्याकुल हो उठे।।१०१।। जब वे कुंडिनपुर के पास पहुँचे तो वहाँ के आदमियों ने उन्हें देख आश्चर्य के साथ जाकर धर्मपाल से कहा कि।।१०२।। हे धर्मपाल! पत्नी के साथ तेरा पुत्र तथा तेरा साला हमने रास्ते आते देखे हैं, वे अभी तेरे पास आये जाते हैं।।१०३।। मनुष्य यह

कह ही रहे थे कि, इतने में वे सब भी वहीं पहुँच गये। माँ-बाप के प्यारे ने उन्हें जाकर प्रणाम किया।।१०४।। सास सुशीला से बोली कि, हे सुशीले! उस व्रत को कह जिस व्रत के प्रभाव से हे कमलनयनी! मेरे बालक की उम्र बढ़ गई।।१०५।।१०६।। सुशीला बोली कि, मैं उस व्रत को नहीं जानती, मेरा माँ-बाप मानवती और हरि जानते हैं, मैं तो तुम्हें अपनी मानवती माँ और धर्मपाल को अपना बाप हरि समझती हूँ।।७।। आपका पुत्र मेरा वर है उसे मङ्गला देवी ही मानती हूँ, यह कह परम प्रसन्न हो मङ्गला ने भोजन किया।।८।। श्रीकृष्ण जी बोले कि, हे ध र्मराज! इस व्रत को स्त्रियों को अवश्य ही करना चाहिये, युधिष्ठिरजी बोले कि।।१०९।।११०।। पहिले साल तो इसे माता के घर में करे, पीछे आदर के साथ पति के घर करती रहे।।१११।। इनमें पहिले वर्ष व्रत का संकल्प करे, रम्य पीठ पर मंगला देवी को अपने सामने विराजमान करे।।११२।। गेहूँ के चून के चकला लोढी बनावे एक बड़ा भारी चून दीपक सोलह बत्ती डालकर रखे, सोलहों उपचारों से गन्ध पुष्पादिकों से पूजे।।११३।।११४।। सोलह ही पत्र सोलह ही पुष्प तथा अनेक धान्य और जलिक तथा सोलह ही स्वच्छ धान्याक, तण्डुल।।११५।। अपामार्ग और धतूरे के पत्ते वे सब सोलह-सोलह रहने चाहिये तथा पाँच बिल्वपत्र हों।।११६।। तब सब चीजों से मङ्गलागौरी का पूजन करके पीछे अङ्गपूजा करे धूप आदि देकर वायना समर्पण करे।।११७।। ब्राह्मण माता तथा दोनों के लिए भी कंचुकी, वस्त्र, फल, दक्षिणा और लड्डू दें।।११८।। सोलह दीपकों से आरती करे, दीपक और लवण रहित अन्न का भोज करे।।११९।। रात में जागरण करके प्रातःकाल स्नान करे, क्रमशः मङ्गला का विसर्जन दीपमान करे।।१२०।। पति चाहने वाली को यह पाँच वर्ष तक करना चाहिये यह मुझसे सुन; प्रातःकाल स्नान करके उद्यापन कर संकल्प करे।।१२२।।१२३।। वेदवेदाङ्गों के जानने वाले आचार्य का वरण करे।। चार स्तंभ एवं चार द्वार वाला कदली के स्तंभ से मंडित।।१२४।। घंटे और चामरों से सजा हुआ मंडप बनाना चाहिए। बीच में वितान बाँध ‵, पाँच रंगों से सुशोभित कर।।१२५।। उसमें एक चौखूटी वेदी बनावे, चाँदी का शिल तथा सोने का लोढ़ी बनावें।।१२६।। चाँदी सोने का अभाव

हो तो पाषाण के ही रख ले उस वेदी पर पाँच रंगों से लिंगतोभद्र लिखें।।१२७।। उस पर एक द्रोण ब्रीहि रखे। सोना, चाँदी ताँबा का कलश स्थापित करें।।१२८।। पंचरत्न तथा सब औषधियाँ डाले उस पर बांबा या बांस का पात्र रखें।।१२९।। उस पर सोने की गौरी की मूर्ति विराजमान करे "गौरी मिमाय" इस मंत्र से मंगला का पूजन करे। हे राजन्! उनमें सोलही सूत की बत्ती डाले।।१३१।। उनसे आरती करे। चाँदी का दीया और सोने की बत्ती का समर्पण करे उस रात को पुराणों के श्रवण आदि से बितावे।।१३२।। हे युधिष्ठिर! प्रातःकाल अग्नि की प्रतिष्ठा करके होम करे। "गौरीर्मिमाय" इस मंत्र से घृत, अक्षत और तिलों की आहुति दे।।१३३।। बिल्वपत्रों की एक सौ आठ आहुति पृथक्-पृथक् दे, सोलह या आठ सपत्नीक ब्राह्मणों को।।१३४।। वस्त्रादि से पूजकर माँ को वायना दे, वह पक्कान्न से भरा हुआ ताम्बे का पात्र हो। उसके साथ वस्त्र आदि भी हों।।१३५।। गऊ और उपस्कर सहित पीठ आचार्य्य के लिए दे, पीछे परमान्न से ब्राह्मण भोजन करावे।।१३६।। पीछे हे युधिष्ठिर! इष्ट जनों के साथ मौन हो भोजन करे, ऐसे विधान के साथ करने से स्त्री विधवा नहीं होती।

यह श्रीभविष्यपुराणोक्त मंगलागौरीव्रत उद्यापन सहित पूरा हुआ।

११.७ संकष्टचतुर्थीव्रतम् – कथा

तत्र श्रावणकृष्णचतुर्थ्यां संकष्टचतुर्थीव्रतम्।। तच्च चन्द्रोदयव्यापिन्यां कार्यम्।। श्रावणे बहुले पक्षे चतुर्थ्यां तु विधूदये।। गणेशं पूजयित्वा तु चन्द्रायार्घ्यं प्रदापयेत्–इति कथायां तत्र व्रतपूजाविधानात्। दिनद्वये तद्व्याप्तौ पूर्वेव।। "मातृविद्धा गणेश्वर" इति वचनात्। दिनद्वयेऽव्याप्तौ परैव।। हेमाद्रौ–चन्द्रोदयाभावे चतुर्थी निशि षट्घटिकाव्याप्ता परैव व्रते। इति।।

अथ व्रतविधिः।। मासपक्षाद्युल्लिख्य तिथौ मम विद्याधन-पुत्रपौत्रप्राप्त्यर्थं समस्तरोगमुक्तिकामः श्रीगणेशप्रीत्यर्थं संकष्टचतुर्थीव्रतमहं करिष्ये।। तत्रादौ स्वस्तिवाचनं गणपतिपूजनं कलशार्चनं करिष्ये।। सौवर्णरौप्यताम्रमृन्मयाद्यन्यतमां कृत्वा जलपूर्णं पूर्णपात्रं वस्त्रयुतकुम्भोपरि स्थापयित्वा षोडशोपचारैः पूजयेत्।। तद्यथा–

लम्बोदरं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं रक्तवर्णकम्।
नानारत्नैः सुवेषाढ्यं प्रसन्नास्यं विचिन्तयेत्।
ध्यायेद्गजाननं देवं तप्तकाञ्चनसुप्रभम्।।
चतुर्बाहुं महाकायं सूर्यकोटिसमप्रभम्।।

इति ध्यानम्।। आगच्छ त्वं जगन्नाथ सुरासुरनमस्कृत।। अनाथनाथ सर्वज्ञ विघ्नराज कृपां कुरु।। सहस्रशीर्षा०।। गजास्याय नमो गजास्यमावाहयामि **इति आवाहनम्।** गोप्ता त्वं सर्वलोकानामिन्द्रादीनां विशेषतः।। भक्तदारिद्र्यविच्छेत्ता एकदन्तं नमोस्तु ते।। पुरुष एवेदं०।। विघ्नराजाय० **आसनम्।।** मोदकान्धारयन्हस्ते भक्तानां वरदायक।। देवदेव नमस्तेस्तु भक्तानां फलद भव। एतावानस्य०। लम्बोदराय० **पाद्यम्।।** महाकाय महारूप अनंतफलदो भव।। देवदेव नमस्तेऽस्तु सर्वेषां पापनाशन।। त्रिपादूर्ध्वं०।। शंकरसूनवे **अर्घ्यम्।।** कुरुष्वाचमनं देव सुरवन्द्य सुवाहन।। सर्वाघदलन-स्वामिन्नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते।। तस्माद्विराड०।। उमासुताय० **आचमनीयम्।।** स्नानं पञ्चामृतेनैव गृहाण गणनायक।। अनाथनाथ सर्वज्ञ नमो मूषकवाहन।। पयो दधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम्।। पञ्चामृतेन स्नपनं प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्।।

वक्रतुण्डाय०।। **पञ्चामृतंस्नानम्**।। गङ्गे च यमुने चैव गोदावरिसरस्वती।। नर्मदे सिन्धुकावेरी जलं स्नानाय कल्पितम्। यत्पुरुषेण०।। हेरंबाय० स्नानम्।। रक्तवस्त्रसुयुग्मं च देवानामपि दुर्लभम्।। गृहाण मङ्गलं देव लम्बोदर हरात्मज।। तं यज्ञं०।। शूर्पकर्णाय० वस्त्रम्।। ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण गणनायक।। आरक्तं ब्रह्मसूत्रं च कनकस्योत्तरीयकम्।। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत: संभृतं पृ०।। कुब्जाय० यज्ञोपवी०।। गृहाणेश्वर सर्वज्ञ दिव्यचन्दनमुत्तमम्।। करुणाकर गुञ्जाक्ष गौरीसुत नमोस्तु ते।। तस्माद्यज्ञातसर्वहुत: ऋच:सा०।। गणेश्वरा० गन्धम्०।। अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ: कुङ्कुमाक्ता: सुशोभिता:।। मया निवेदिता भक्त्या गृहाण गणनायक।। अक्षतान्।। सुगन्धिदिव्यमालां च गृहाण गणनायक।। विनायक नमस्तुभ्यं शिवसूनो नमोस्तु ते।। मालाम्।। माल्यादीनि सुगन्धी० तस्मादश्वा०।। विघ्ननाशिने नम: पुष्पाणि०।। अनेनैव नाम्ना दूर्वाकुङ्कुमादि दद्यात्।। अथाङ्गपूजा-गणेश्वराय० पादौपू०।। विघ्नराजाय० जानुनीपू०। आखुवाहनाय० ऊरूपू०। हेरंबाय० कटींपू०। कामारिसूनवे० नाभिंपू०। लंबोदराय० उदरंपू० गौरीसुताय० स्तनौपू०। गणनायकाय० हृदयंपू०। स्थूलकण्ठाय० कण्ठंपू०। स्कन्दाग्रजाय स्कन्धौपू०। पाशहस्ताय० हस्तौपू०। गजवक्राय वक्रंपू०। विघ्नहर्त्रे०। ललाटंपू०। सर्वेश्वराय० शिर: पूजयामि। श्रीगणाधिपाय० सर्वाङ्गंपू०।। दशाङ्गं गुग्गुलं धूपमुत्तमं गणनायक।। गृहाण देव देवेश उमासुत नमोस्तु ते।। यत्पुरुषं। विकटाय० धूपं०। सर्वज्ञ सर्वरत्नाढ्यं सर्वेश विबुधप्रिय।। गृहाण मङ्गलं दीपं घृतवर्तिसमन्वितम्।। ब्राह्मणोस्य०। वामनाय० दीपं०। नैवेद्यं गृह्यतां देव नानामोदकसंयुतम्। पक्वान्नफलसंयुक्तं षड्रसैश्चसमन्वितम्।। चन्द्रमामन०। सर्वदेवाय० नैवेद्यम्।। कृष्णावेण्यागौतमीनां पयोष्णीनर्मदाजलै:। आचम्यतां विघ्नराज प्रसन्नो भव सर्वदा।। आचमनम्।। फलान्यमृतकल्पानि सुगन्धीन्य घनाशन।। आनीतानि यथाशक्त्या गृहाण गणनायक।। सर्वार्तिनाशिने० फलं०। ताम्बूलं गृह्यतां देव नागवल्लया दलैर्युतम्।। कर्पूरेण समायुक्तं सुगन्धं मुखभूषणम्। विघ्नहर्त्रे न० ताम्बूलं०।। सर्वदेवाधिदेव त्वं सर्वसिद्धिप्रदायक।। भक्त्या दत्तं मया देव गृहाण दक्षिणां विभो।। सर्वेश्वराय देवाय विघ्नराज नमोस्तु ते।। नीराजनम्।। यानि कानि च पा० नाभ्या आसीदिति। प्रदक्षिणा:। नमोस्त्वनं०।। सप्तास्येति नमस्कार:।। यज्ञेनयज्ञमितिमंत्रपुष्पाञ्जलिम्।। एवं पूजा प्रकर्तव्या षोडशैरुपचारकै:।।

मोदकान्कारयेन्मातस्तिलजान्दश पार्वति।। देवाग्रे स्थापयेत्यपञ्चपञ्च विप्राय कल्पयेत्।। पूजयित्वा तु तं विप्रं भक्तिभावेन देववत्।। दक्षिणां च यथाशक्त्या दत्त्वा वै पञ्चमोदकान्।। पूजयेन्निशि चन्द्रं च अर्घ्यं दत्त्वा यथाविधि।। क्षीरसागरसंभूत सुधारूप निशाकर।। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रीतिवर्द्धनम्।। रोहिणीसहितचन्द्रमसे नमः इदमर्घ्यं०।। क्षीरोदार्णवसंभूत सुधारूपनिशाकर। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिण्या सहितः शशिन्।। रोहिणीसहितचन्द्राय० इदमर्घ्यम्०।। गणेशाय नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धिप्रदायक।। संकष्टं हर मे देव गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते।। संकष्टहरगणेशाय० इदमर्घ्यम्।। तिथीनामुत्तमे देवि गणेशप्रियवल्लभे। सर्वसंकष्टनाशाय चतुर्थ्यर्घ्यं नमोस्तु ते।। चतुर्थ्यै० अर्घ्यम्।। वायनमंत्रः—विप्रवर्य नमस्तुभ्यं मोदकान्वै ददाम्यहम्।। मोदकान्सफलान्पञ्च दक्षिणाभिः समन्वितान्। आपदुद्धरणार्थाय गृहाण द्विजसत्तम।। प्रार्थना अबुद्धमतिरिक्तं वा द्रव्यहीनं मया कृतम्।। तत्सर्वं पूर्णतां यातु विप्ररूप गणेश्वर।। ब्राह्मणान् भोजयेद्देवि यथान्नेन यथासुखम्।। स्वयं भुञ्जीत पञ्चैव मोदकान्पुलसंयुतान्।। अशक्तश्चैकमन्नं वा भुञ्जीत् दधिसंयुतम्।। अथवा भोजनं कार्यमेकवारं हिमाग्रजे।। प्रतिमां गुरवे दद्यादाचार्याय सदक्षिणाम्।। वस्त्रकुम्भसमायुक्तमादौ मन्त्रमिमंजपेत् – नमो हेरम्ब मदमोहित संकष्टान्निवारय निवारय।। इतिमूलमन्त्रमेकविंशतिवारं जपेत्।। विसर्जनमन्त्रः— गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने त्वं गणेश्वर।। व्रतेनानेन देवेश यथोक्तफलदो भव।।

११.८ संकष्ट चतुर्थीव्रत (हिन्दी टीका)

श्रावण कृष्ण चतुर्थी के दिन संकष्ट चतुर्थी का व्रत होता है इस व्रत को उस चतुर्थी में करना चाहिये जो कि चन्द्रमा के उदय में व्याप्त हो। क्योंकि, संकट चतुर्थी की व्रतकथा में, श्रावण शुक्ला चौथ को चन्द्रमा का उदय होने पर गणेशजी का पूजन करके चन्द्रमा को अर्घ देना चाहिये, यह चन्द्रोदय व्यापिनी चतुर्थी में व्रत की पूजा का विधान किया है। यदि दोनों ही दिन चन्द्रोदय व्यापिनी हो तो तृतीया से विद्धा पूर्वा ही ग्रहण की जाती है यह वचन मिलता है। यदि दोनों ही दिन चन्द्रोदय व्यापिनी न हो तो परली ही चतुर्थी का ग्रहण होता है। क्योंकि, चन्द्रोदय के अभाव में रात को छः घड़ी तक रहने वाली परा चतुर्थी का ही व्रत में ग्रहण होता है ऐसा हेमाद्रि ने कहा है। अब व्रत की विधि कहते हैं– सबसे पहिले संकल्प करना चाहिये कि अमुक मास, अमुक पक्ष और अमुक तिथि में विद्या, धन, पुत्र, पौत्र, प्राप्ति के लिये तथा समस्त रोगों से मुक्त होने के लिये श्रीगणेशजी की प्रसन्नता के लिये, संकष्ट चौथ का व्रत मैं करता हूँ तथा पहले स्वस्तिवाचन गणपति पूजन एवम् कलश का पूजन भी करूँगा।। सोने, चाँदी, ताँबे और मिट्टी में से अपने वित्त के अनुसार किसी भी धातु की गणेशमूर्ति बनाकर उसे कुंभस्थ पूर्ण पात्र पर वैध स्थापित करके सोलहों उपचारों से पूजन करना चाहिये। पूजन निम्नलिखित रीति से होता है– अनेक तरह के रत्नों से भली भाँति सुसज्जित, रक्तवर्ण, चार भुजा वाले, तीन नेत्र धारी, प्रसन्न मुख, लम्बोदर भगवान् का चिन्तन करना चाहिये। तपाये हुए सोने की प्रभा वाले, कोटि सूर्य के समान चमकीले बड़े लम्बे चौड़े शरीर के, चतुर्भुजी गजानन देव का ध्यान करना चाहिये। इन मंत्रों से ध्यान तथा हे सुरासुरनमस्कृत जगन्नाथ! तुम आओ। हे अनाथों के नाथ! सर्वज्ञ विघ्नराज! कृपा करो। इस मंत्र से तथा "ओम् सहस्त्र शीर्षा" इस मंत्र से तथा – गजास्य को नमस्कार है गजानन का आवाहन करता हूँ इनसे आवाहन

करना चाहिये। तुम इन्द्रादिक सब लोकों के गोप्ता हो, विशेष करके भक्तों के दारिद्र को नाश करने वाले हो, हे एकदन्त! तेरे लिये नमस्कार है, आप भक्तों के लिये फल देने वाले हो। इस मंत्र से तथा **ओम् एतावानस्य महिमा** इस मंत्र से तथा लम्बोदर के लिये नमस्कार है, इस मंत्र से पाद्य देना चाहिये। जैसे आप महाकाय और महारूप हैं उसी तरह अनन्त फल के देने वाले भी हो, हे सब पापों के नाश करने वाले देव-देव! तेरे लिये नमस्कार है, इस मंत्र से तथा **ओम् त्रिपादूर्ध्व** इस मंत्र से एवम् शंकर के सुत के लिये नमस्कार है इस मंत्र से अर्घ्य देना चाहिये। फिर आचमन करावे 'कुरुष्व' हे देव! हे देवताओं के पूज्य! हे सुन्दर मूसक के ऊपर आरूढ होने वाले! हे हाथी के मुँह वाले के लिये नमस्कार है मुँह का पूजन करता हूँ। इससे मुख तथा – ओम् विघ्न-हन्त्रे नमः ललाटं पूजयामि– विघ्नों के नाश करने वाले के लिये नमस्कार है ललाट का पूजन करता हूँ। इससे ललाट तथा – ओम् सर्वेश्वराय: नमः शिरः पूजयामि– सर्वेश्वर के लिये नमस्कार है। शिर का पूजन करता हूँ। इससे शिर, तथा – ओम् श्रीगणेशाय नमः सर्वाङ्गं पूजयामि श्रीगणेशजी के लिये नमस्कार है सब अंगों का पूजन करता हूँ, इससे सर्वाङ्ग पूजना चाहिये। तदनन्तर – 'दशाङ्गगुग्गुलं यह दशाङ्ग' गुग्गुल युक्त उत्तम धूप है। हे गणनायक! हे देव देवेश! हे उमासुत! आप इसे स्वीकृत करें, आपके लिये नमस्कार है। इस मंत्र से तथा यत्पुरुषं व्यदधुः इस मंत्र से एवम् विकटाय नमः, धूपमाघ्रापयामि विकटमूर्ति गणपति के लिये नमस्कार है, धूप का गन्ध अर्पित करता हूँ इससे धूप देना चाहिये। **सर्वज्ञ सर्वरत्नाढ्य** हे सर्वज्ञ, हे सब प्रकार के रत्नों से सम्पन्न, हे सबके ईश्वर, हे देवताओं के प्यारे घृत और बत्तीयुक्त इस माङ्गलिक दीपक को अङ्गीकृत करो! **ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्** इस मंत्र से तथा वामनाय नमः, दीपं दर्शयामि वामनरूप गणराज के लिये नमस्कार है– दीपक दिखा रहा हूँ। ऐसे कहकर दीपक दिखा दीपक पर अक्षत छोड़ कर हाथों को प्रक्षालित करे। फिर **नैवेद्यं गृह्यताम् देव** से बहुत से लड्डुओं एवं पक्वान्नयुक्त छः रस वाले भोज्य पदार्थों से रुचिर, इस नैवेद्य को ग्रहण करिये। इस मंत्र से तथा–**चन्द्रमा मनसो**

जातः इससे तथा – **सर्व देवाय नमः नैवेद्यं निवेदयामि** सबके पूज्य गणपति के लिये नमस्कार है मैं नैवेद्य निवेदित करता हूँ, जिससे नैवेद्य भोग लगा दें। कृष्णा, वेणी, यमुना, प्रयागराज, गौतमी, पयोष्णी और नर्मदा के जल से हे विघ्नराज! आप आचमन करो और सदा मुझ पर प्रसन्न रहो। इससे आचमन कराये। 'फलान्यमृत' हे पाप! और दुःखों को नष्ट करने वाले हे गण नायक! मैं यथाशक्ति अमृतसदृश मधुर एवं सुगन्धित फल आपके लिये लाया हूँ आप इनका स्वाद लें इसे तथा सर्वार्तिनाशिने नमः, फलं समर्पयामि–सब पीड़ाओं के नाशक गणेशजी के लिये नमस्कार है, मैं फल चढ़ाता हूँ ऐसा कहकर ऋतु फल चढ़ावें। 'ताम्बूलं गृह्यताम्' हे देव नागरपाल कपूर और सुगंधित पदार्थों से युक्त, मुख को विभूषित करने वाले ताम्बूल को ग्रहण करिये इससे तथा विघ्नहर्त्रे नमः मुखशुद्ध्यर्थं ताम्बूलं समर्पयामि विघ्नों के हरने वाले के लिये नमस्कार है आपकी मुखशुद्धि के लिये ताम्बूल चढ़ाता हूँ इतना कहकर ताम्बूल समर्पण करे। "सर्वदेवाधि" हे सब देवताओं के पूज्य, हे सबके प्रति सिद्धि देने वाले! मैं भक्ति से दक्षिणा चढ़ाता हूँ हे विभो! आप इसे स्वीकृत करिये। सर्वेश्वराय नमः, दक्षिणां समर्पयामि–सर्वेश्वर के लिये नमस्कार है दक्षिणा चढ़ाता हूँ इतना कहकर दक्षिणा चढ़ावें। फिर पाँच बत्ती बनाकर उस दीपक से आरती करता हुआ 'पञ्चबर्त्ति' इस पद्य को पढ़े, इसका यह अर्थ है कि हे विघ्नराज! पाँच बत्ती वाले प्रज्वलित इस मांगलिक दीपक को अङ्गीकृत करिये आपके लिये प्रणाम है। पीछे यानि कानि च पापानि, इस पूर्वोक्त पद्य को तथा **नाभ्या आसीत्** इस मन्त्र को पढ़ते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये **नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्त्रमूर्तये** इस पहले कहे हुए पद्य को तथा **सप्तास्यासन् परि॰** इस मंत्र को पढ़ता हुआ हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिये **ओम् यज्ञेन यज्ञमयजन्त** इस मन्त्र को पढ़कर पुष्पाञ्जली चढ़ावें। गणेशजी पार्वती से कहते हैं कि हे माता पार्वति! इस प्रकार सोलहों उपचारों से पूजा करनी चाहिये, पूजा के अन्त में तिलों के दश मोदकों में से पाँच गणपति के सम्मुख भेंट करें और पाँच लड्डुओं को देवता के समान आचार्य का पूजन करके उन्हें यथा शक्ति दक्षिणा के साथ दे दे। फिर रात में

चन्द्रोदय होने पर यथा विधि चन्द्रमा का पूजन करके, 'क्षीरसागर' आदि मन्त्रों से अर्घ्यदान करना चाहिये। इनका अर्थ यह है कि, हे क्षीरसमुद्र से उत्पन्न हे सुधा रूप! हे निशाकर! आप रोहिणी सहित मेरे दिये हुए गणेश के प्रेम बढ़ाने वाले अर्घ्य को ग्रहण करिये, रोहिणीसहित चन्द्रमा के लिये नमस्कार है। यह अर्घ्य चन्द्रमा को समर्पित करता हूँ, इस मंत्र से चन्द्रमा के लिये नमस्कार है। यह अर्घ्य चन्द्रमा को समर्पित करता हूँ, इस मंत्र से चन्द्रमा को अर्घ्य दे। तथा हे क्षीरसमुद्र से उत्पन्न होने वाले हे सुधारूप निशाकर! मैं अर्घ्य देता हूँ, हे शशिन्! रोहिणी सहित आप इसे ग्रहण करिये, रोहिणीसहित चन्द्रमा के लिये इस अर्घ को देता हूँ! इससे रोहिणी सहित चन्द्रमा के लिये अर्घ्य दें। तत्पश्चात् गणपति के लिये अर्घ्य देता हुआ 'गणेशाय' इत्यादि पढ़े। इसका यह अर्थ है कि, सर्वसिद्धियों के देने वाले गणेश जी महाराज आपके लिये नमस्कार है, हे देव! सब संकटों का हरण करिये तथा मेरे अर्घ्य दान को अङ्गीकृत करिये आपके लिये बारंबार नमस्कार है। कृष्णपक्ष की चौथ के दिन चन्द्रमा के उदय हो जाने पर पूजन करके शीघ्र ही प्रसन्न कर लिया है, हे देव! अर्घ्य ग्रहण करिये, आपको नमस्कार है। यह अर्घ संकटहर गणेश जी के लिए है मेरा नहीं है। पीछे चतुर्थी को भी अर्घ्य देना चाहिये कि, हे चतुर्थी! तुम तिथियों में श्रेष्ठ हो, तथा गणपति जी की अत्यन्त प्यारी हो इस कारण मैं अपने संकटों की निवृत्ति के लिये आपको प्रणाम करता हुआ अर्घ्यदान करता हूँ। फिर दक्षिणासहित फल और पाँच मोदकों का वायना आचार्य के लिये देवे और **'विप्रवर्येभ्यो नमः'** इसको पढ़े, इनका अर्थ यह है कि, हे विप्रवर्य्य! आपके लिये प्रणाम है, मैं मोदक प्रदान करता हूँ, हे द्विजोत्तम आचार्य! अप इन फल और दक्षिणा समेत पाँच मोदकों को मेरी आपत्तियाँ दूर करने के लिये स्वीकार कीजिये। फिर 'अबुद्धमतिरिक्त' इस मन्त्र से आचार्य साञ्जलि प्रार्थना करे कि, मैंने जो बिना जाना या बिना कहा हुआ किया वह या जितने द्रव्य की जरूरत थी उस द्रव्य से शून्य जो इस व्रतानुष्ठान को किया है, उससे जो त्रुटियाँ हो गयी हों, वे सब नष्ट हों और हे ब्राह्मण आचार्य

रूपी गणाधीश! आपकी कृपा से यह सब व्रतानुष्ठान सम्पूर्णता को प्राप्त हो। श्री गणपति जी अपने माता से कहते हैं कि, हे हिमालय नन्दिनी हे देवि! यथाविहित अथवा जैसा समय पर तैयार किया कराया हो उस अन्न से शान्तिपूर्वक आनन्द के साथ ब्राह्मणों को भोजन करावें, व्रत करने वाला फल एवं पञ्च मोदकों का भोजन करे, व्रत करने वाला असमर्थ हो तो दधि के साथ किसी भी एक अन्न का भोजन कर ले अथवा एक बार भोजन करके ही व्रतानुष्ठान करे। फिर गणेशजी की मूर्ति और दक्षिणा तथा वस्त्र एवम् कलश का दान आचार्य को दे दे। मूर्तिदान करने से पहिले यजमान को चाहिये कि वह "ओं नमो" इस मुख्य मन्त्र को २१ बार जपे। इस मन्त्र का यह अर्थ है कि, हे हेरम्ब! आपके लिये नमस्कार है, आप मद एवं मोहजन्य संकटों से बचाइये तदनन्तर **'गच्छ गच्छ'** इस मन्त्र को पढ़ता हुआ अक्षतों को पूजा स्थान में प्रक्षिप्त कर मेरे और पूजा कार्य को समाप्त करें ऐसा निवेदन करें। इसका यह अर्थ है कि, हे सुरश्रेष्ठ! हे गणेश्वर! आप अपने स्थान में सानन्द पधारें, मैंने जो यह आपका व्रतानुष्ठान किया है इसका जो शास्त्रकारों ने फल कहा है उनको मुझे दे। इस प्रकार संकट चतुर्थी के दिन की गणपति पूजन विधि समाप्त होती है।।

११.९ संकष्टव्रत कथा

अथ संकष्टव्रत कथा।। ऋषय ऊचुः।। दारिद्र्यशोकष्टाद्यैः पीडितानां च वैरिभिः।। राज्यभ्रष्टैर्नृपैः सर्वैः क्रियते किं शुभार्थिभिः।।१।। धनहीनैर्नरैः स्कन्द सर्वोपद्रवपीडितैः।। विद्यापुत्रगृहभ्रष्टै रोगयुक्तैः शुभार्थिभिः।।२।। कर्तव्यं किं वदोपायं पुनः क्षेमार्थसिद्धये।। **स्कन्द उवाच।।** शृणुध्वं मुनयः सर्वे व्रतानामुत्तम् व्रतम्।।३।। संकष्टतरणं नामामुत्रेह सुखदायकम्।। येनोपायेन संकष्टं तरन्ति भुवि देहिनः।।४।। यद्व्रतं देवकीपुत्रः कृष्णो धर्माय दत्तवान्।। अरण्ये क्लिश्यमानाय पुनः क्षेमाय सिद्धये।।५।। यथा कथितवान् पूर्वं गणेशो मातरं प्रति।। तथा कथितावाञ्छ्रीशो द्वापरे पांडवान्प्रति।।६।। ऋषय ऊचुः।। कथं कथितवानम्बां पार्वतीं श्रीगणेश्वरः।। यथा पृच्छन्ति मुनयो लोकानुग्रहकांक्षिणः।।७।। स्कन्द उवाच।। पुरा कृतयुगे पुण्ये हिमाचलसुता सती।। तपस्तप्तवती भूरि तेनालब्धः शिवः पतिः।।८।। तदास्मरत्सा हेरम्बं गणेशं पूर्वजं सुतम्।। तत्क्षणादागतं दृष्ट्वा गणेशं परिपृच्छति।।९।। पार्वत्युवाच।। तपस्तप्तं मया घोरं दुश्चरं लोकहर्षणम्।। न प्राप्तः स मया कान्तो गिरीशो मम वल्लभः।।१०।। संकष्टतरणं दिव्य व्रतं नारद उक्वान्।। त्वदीयं यद्व्रतं तावत् कथयस्व पुरातनम्।।११।। तच्छ्रुत्वा पार्वतीवाक्यं संकष्टतरणं व्रतम्।। प्रीत्या कथितवान् देवो गणेशो ज्ञानसिद्धिदः।।१२।। गणेश उवाच।। श्रावणे बहुले पक्षे चतुर्थ्यां तु विधूदये।। गणेशं पूजयित्वा तु चन्द्रायार्घ्यं प्रदापयेत्।।१३।। पार्वत्युवाच।। क्रियते केन विधिना किं कार्यं किं च पूजनम्।। उद्यापनं कदा कार्यं मन्त्राः के स्युस्तु पूजने।।१४।। कि ध्यानं श्रीगणेशस्य गणेश वद विस्तरात्।। गणेश उवाच।। चतुर्थ्यां प्रारुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम्।।१५।। ग्राह्यं व्रतमिदं पुण्यं संकष्टतरणं शुभम्।। कर्तव्यमिति संकल्प्य व्रतेऽस्मिन् गणपं स्मरेत्।।१६।। स्वीकारमन्त्रः—निराहारोऽस्मि देवेश यावच्चन्द्रोदये भवेत्।। भोक्ष्यामि पूजयित्वाहं संकष्टात्तारयस्व माम्।।१७।। एवं संकल्प्य राजेन्द्र स्नात्वा कृष्णतिलैः शुभैः।। आह्निकं तु विधायैत्र पश्चात्पूज्यो गणाधिपः।।१८।। त्रिभिर्मासैस्तदर्द्धेन तृतीयांशेन वा पुनः।।

यथाशक्त्या तु वा हैमी प्रतिमा क्रियते मम।।१९।। हेमाभावे तु रौप्यस्य ताम्रस्यापि यथासुखम्।। सर्वथैव दरिद्रेण क्रियते मृन्मयी शुभा।।२०।। वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कृते कार्यं विनश्यति।। जलपूर्णं वस्त्रयुतं कुम्भं तदुपरि न्यसेत्।।२१।। पूर्णपात्रं तत्र पद्मं लिखेदष्टदलं शुभम्।। कुम्भं तत्र देवतां तदुपरि न्यसेत्।।२१।। पूर्णपात्रं तत्र पद्मं लिखेदष्टदलं शुभम्।। देवतां तत्र संस्थाप्य गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत्।।२२।। एवं व्रतं प्रकर्तव्यं प्रतिमासं त्वयाद्रिजे।। यावज्जीवं तु वा वर्षाण्येकविंशतिमेव वा।।२३।। अशक्तोऽप्येकवर्षं वा प्रतिवर्षमथापि वा। उद्यापनं तु कर्तव्यं चतुर्थ्यां श्रावणेऽसिते।।२४।। स्वीकाराश्च तथा कार्यः संकष्टहरणे तिथौ।। गाणपत्यं तथाचार्य सर्वशास्त्र-विशारदम्।।२५।। श्रद्धया प्रार्थयेदादौ तेनोक्तं विधिमाचरेत्।। एकविंशतिविप्रांश्च वस्त्रालंकारभूषणैः।।२६।। पूजयेद्गोहिरण्याद्यैर्हुत्वाग्नौ विधिपूर्वकम्।। होमद्रव्यं मोदकाश्च तिलयुक्ता घृतप्लुताः।।२७।। अष्टोत्तरसहस्त्रं वा नोचेदष्टोत्तरं शतम्।। अष्टाविंशतिसंख्याकान्मोदकान्वा सशर्करान्।२८।। अशक्तोष्टौ शुभान् स्थूलाञ्जुहुयाज्जातवेदसि। वैदिकेन च मंत्रेण आगमोक्तेन वा तथा।।२९।। अथवा नाममंत्रेण होमं कुर्याद्यथाविधि।। पुष्पमण्डपिका कार्या गणेशाह्लाद-कारिणी।।३०।। पूजयेतत्र गणपं भक्तसंकष्टनाशनम्।। गीतवादित्रनिनादैर्भक्ति-भावपुरस्कृतैः।।३१।। पुराणेवेदनिर्घोषैस्तोषयेच्च गणेशवरम्। एवं जागरणं कार्यं शक्त्या दानादिकं तथा।।३२।। सपत्नीकमथाचार्यं तोषयेद्वस्त्रभूषणैः। उपानच्छत्रगोदानकमण्डलुफलादिभिः।।३३।। शय्यावाहनभूदानं धनधान्य-गृहादिभिः।। यथाशक्त्या प्रकर्तव्यं दारिद्र्याभावमिच्छता।।३४।। एकविंशति-विप्रांश्च भोजयेन्नामभिर्मम। गजास्यो विघ्नराजश्च लम्बोदर शिवात्मजौ।।३५।। वक्रतुण्डः शूर्पकर्णः कुब्जश्चैव विनायकः।। विघ्ननाशो हि विकटो वामनः सर्वदैवतः।।३६।। सर्वार्तिनाशी भगवान् विघ्नहर्ता च धूम्रकः।। सर्वदेवाधि देवश्च सर्वे षोडश वै स्मृताः।।३७।। एकदन्तः कृष्णापिङ्गो भालचन्द्रो गणेश्वरः।। गणपश्चैकविंशश्च सर्व एते गणेश्वराः।।३८।। दुर्गोपेन्द्रश्च रुद्रश्च कुलदेव्याधिकं भवेत्। विशेषेणाष्टसंख्याकैर्मोदकैर्हवनं स्मृतम्।।३९।। एवं कृते विधानेन प्रसन्नोऽहं न संशयः।। ददामि वाञ्छितान् कामांस्तद्व्रतं मत्प्रियं कुरु।।४०।। श्रीकृष्ण उवाच।। एवं तु कथितं सर्वं गणेशेन स्वयं नृप।। पार्वत्या तत्कृतं राजन् व्रतं संकष्टनाशनम्।।४१।। व्रतेनानेन सा प्राप

महादेवं पतिं स्वकम्।। तत्कुरुष्वमहाराज व्रतं संकष्टनाशनम्।।४२।। चतुर्थी संकटा नाम स्कन्देन कथिता ऋषीन्।। ऋषिभिर्लोककामैस्तैर्लोके तत्मिदं व्रतम्।।४३।। सूत उवाच।। कृतं युधिष्ठिरेणैतद्राज्यकामेन वै द्विज।। तेन शत्रुन्निहत्याजौ स्वराज्यं प्राप्तवान् स्वयम्।।४४।। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन व्रतं कार्यं विचक्षणैः।। येन धर्मार्थकामाश्च मोक्षश्चापि भवेत्किल।।४५।। यः करोति व्रतं विप्राः सर्वकामार्थसिद्धिदम्।। स वांच्छितफलं प्राप्य पश्चाद्गणपतिं व्रजेत्।।४६।। यदा यदा परं विप्रा नरः प्राप्नोति संकटम्।। तदा तदा प्रकर्तव्यं व्रतं संकष्टनाशनम्।।४७।। त्रिपुरं हन्तुकामेन कृतं देवेन शूलिना।। त्रैलोक्यभूतिकामेन महेन्द्रेण तथा कृतम्।।४८।। रावणेन कृतं पूर्वं बालिबन्धन-संकटे। स्वकीयं प्राप्तवाचाज्यं गणेशस्य प्रसादतः।।४९।। सीतान्देषणकामेन कृतं वायुसुतेन च।। संकल्प दृष्टवान्सोऽयं सीतां रामप्रियां पुरा।।५०।। दमयन्त्या कृतं पूर्वं नलान्वेषणकारणात्।। सा पतिं नैषधं लेभे पुण्यश्लोकं द्विजोत्तमः।।५१।। अहल्यापि पतिं लेभे गौतमं प्राणवल्लभम्।। विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी धनमाप्नुयात्।। पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते।।५२।।

इति श्रीस्कन्दपुराणोक्तं संकष्टचतुर्थीव्रतम्।।

११.१० संकष्टव्रत कथा (हिन्दी टीका)

कथा – ऋषिगणों ने भगवान् स्वामि कार्तिक जी से पूछा कि, हे प्रभो! दारिद्र्य, रोग तथा कुष्ठादि रोगों से महादु:खित एवम् वैरियों द्वारा राज्य से च्युत किये गये शुभाकांक्षी राजा, नरेशों को क्या करना चाहिये।।१।। हे स्कन्द सभी उपद्रवों से पीड़ित तथा विद्या, पुत्र, ग्रह और धन से विहीन, शुभाकांक्षी मनुष्यों को क्या करना चाहिये।।२।। वह कर्तव्य उपाय चाहिये जिससे उन्हें क्षेम और अर्थ की सिद्धि हो जाय, यह सुन स्कन्द बोले कि, हे ऋषिगणों! सब सावधान होकर सुनो, मैं एक उत्तम व्रत कहता हूँ।।३।। संकष्टतरण उसका नाम है जो इस लोक और परलोक दोनों में सुख को देने वाला है, प्राणी इसी उपाय से भूमण्डल पर सब कष्टों से पार हो जाते हैं।।४।। इस व्रत को देवकी पुत्र कृष्ण ने क्षेम और अर्थ सिद्धि के लिये धर्मराज को दिया था जब कि वो वन में दु:ख पा रहे थे।।५।। जैसे कि, गणेश जी ने अपनी माँ को सुनाया था, वैसे ही श्री कृष्ण परमात्मा ने द्वापर में पाण्डवों को सुनाया था।।६।। ऋषिगण कहने लगे कि, गणेश जी ने अपनी माता को क्यों सुनाया था, क्योंकि ऐसी बातें तो लोक का कल्याण चाहने वाले ऋषि लोग पूछते हैं।।७।। यह सुन स्कन्द बोले कि पहले पुण्य कृतयुग में सती हिमाचल की सुता ने घोर तप किया, पर शिव को पति के रूप में न पा सकी।।८।। उस समय पार्वती जी ने अपने पहले पुत्र गणपति हेरम्ब का स्मरण किंया, उसी समय गणेश आ उपस्थित हुए तब गणेश जी पूछने लगे।।९।। कि मैंने ऐसा दुश्चर घोर तप किया जिसकी कहानी सुनकर रोंगटे खड़े हो जायें, पर मेरे प्यारे गिरीश को मैं पति के रूप में न पा सकी।।१०।। देवर्षि नारद जी ने आपको संकट तरण नामक एक दिव्य व्रत कहा था, आप अपने उस पुराने व्रत को मुझसे कहिये। पार्वती जी के ऐसे वाक्य सुनकर ज्ञान और सिद्धि देने वाले गणेश जी परम प्रसन्नता के साथ, संकष्टतरण नाम के अपने व्रत को कहने लगे।।१२।।

श्रावण कृष्णा चौथ के दिन चतुर्थी में ही चन्द्रोदय होने पर गणेश जी का पूजन करके चन्द्रमा को अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।।१३।। यह सुन पार्वती जी बोली कि, उस व्रत का किस विधि से तथा कैसे पूजन होना चाहिये, कब उद्यापन हो और पूजन के मंत्र कौन से है।।१४।। हे गणेश! श्री गणेश का ध्यान कौन सा है, विस्तार के साथ सुना दीजिये। यह सुन गणेशजी बोले कि, चौथ के दिन उठ, दन्तधावन पूर्वक।।१५।। परम पवित्र इस संकष्ट तरण नाम के व्रत को ग्रहण करे, फिर व्रत का संकल्प कर इस व्रत में गणेश जी का स्मरण करें।।१६।। स्वीकार मंत्र – हे देव! जब तक चाँद का उदय न होगा उतने समय तक मैं निराहार रहूँगा, आपका पूजन करके ही भोजन करूँगा, आप मुझे संकटों से पार लगा दें।।१७।। भगवान् कृष्ण युधिष्ठिर जी से कहते हैं कि, हे राजेन्द्र! स्नानादि से निवृत्त हो, शुभ काल में तिलों से आह्निक कर्म करके पीछे गणपति का पूजन करना चाहिये।।१८।। गणेश जी पार्वती जी से कहते हैं कि तीन मासे की, डेढ मासे की अथवा एक मासे की सोने की गणेश जी की मूर्ति शक्ति के अनुसार बनवायें।।१९।। यदि सोने की न बनवा सके, तो चाँदी की या ताँबे की बनवा लें। यह भी न हो सके तो मिट्टी की ही बनवा लेनी चाहिये।।२०।। इस कार्य में धन का लोभ नहीं करना चाहिये लोभ से कार्य नष्ट होता है, इस मूर्ति को पानी से भरे एवम् वैध वस्त्रों से ढके हुए कुंभ के ऊपर, क्रमशः स्थापित कर देना चाहिये।।२१।। कलश पर पूर्णपात्र रख दे, वहाँ अष्टदल कमल लिखना चाहिये। वहाँ विधिपूर्वक देवता स्थापित करके पीछे वैध पूजन करना चाहिये।।२२।। हे गिरिजे! आप प्रतिमास इसी प्रकार व्रत करें जब तक कि आप जीवें अथवा इक्कीस बरस तक करें।।२३।। यदि शक्ति न हो तो एक वर्ष अथवा वर्ष में एक तो अवश्य ही करें। श्रावण कृष्ण चौथ के दिन उद्यापन करें।।२४।। संकष्टहरण चौथ के दिन स्वीकार करना चाहिये सब शास्त्रों के जानने वाले गणपति जी के व्रतों के विधानों को जानने वाले जो आचार्य हों, उनकी।।२५।। श्रद्धा से प्रार्थना करनी चाहिये, फिर जैसे वो कहें वैसे ही व्रत करना चाहिये। इक्कीस ब्राह्मणों को वस्त्र अलंकार और भूषणों से।।२६।। तथा गऊ और सोने आदि से पूजन करके विधि

पूर्वक हवन करें, इसमें होमद्रव्य, घी से भीगे हुए सतिल मोदक है।।२७।। एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ तथा अट्ठाईस मोदक चीनी के बने होने चाहिये।।२८।। यदि इतनी शक्ति न हो तो वैदिक मंत्र से अथवा गाणपत्य शास्त्र के मंत्र से बड़े-बड़े आठ सुन्दर लड्डुओं का अग्नि में हवन करना चाहिये।।२९।। अथवा नाम मंत्र से विधिसहित हवन करना चाहिये, गणेश जी को प्रसन्न करने वाला फूलों का मण्डप बनाना चाहिये।।३०।। भक्तों के कष्ट नाशने वाले गणेश जी का वहाँ पूजन करना चाहिये। भक्ति भाव से किये गये गाने बजाने के शब्दों से।।३१।। पुराण और वेद के शब्दों से गणेश जी को प्रसन्न करें। इस प्रकार रात को जागरण करके शक्ति के अनुसार दान करना चाहिये।।३२।। वस्त्र, भूषण, छत्र, जूती जोडा, गौ, कमण्डलु और फलादिकों से, सपत्नीक आचार्य्य को प्रसन्न कर देना चाहिये।।३३।। जिसकी यह इच्छा हो कि मेरे घर कोई दारिद्र्य न रहे उसे अपनी शक्ति के अनुसार शय्या, वाहन, भू, धन, धान्य और गृहादिकों से सत्कार करना चाहिये।।३४।। मेरे नाम से २१ ब्राह्मणों का भोजन करना चाहिये।। मेरे नाम—गजास्य, विघ्नराज, लम्बोदर, शिवात्मक।।३५।। वक्रतुण्ड, शूर्पकर्ण, कुब्ज, विनायक, विघ्ननाश, वामन, विकट, सर्वदैवत।।३६।। सर्वार्तिनाशी, भगवान् विघ्नहर्ता, धूम्रक, सर्वदेवाधिदेव।।३७।। एकदन्त, कृष्णपिङ्ग, भालचन्द्र, गणेश्वर और गणप हैं। ये इक्कीस गणनायक हैं।।३८।। दुर्गा, उपेन्द्र, रुद्र और कुलदेवी इनके नाम के चार ब्राह्मण अधिक हो जाते हैं विशेष करके आठ मोदकों का ही हवन कहा गया है।।३९।। विधिपूर्वक ऐसा करने से मैं प्रसन्न हो जाता हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है, मैं सब मनोकामनाओं को पूरा करता हूँ, हे मात! मेरे प्यारे इस व्रत को करो।।४०।। भगवान् श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिर जी से कहते हैं कि, इस प्रकार गणेश जी ने अपने आप कहा था कि पार्वती जी ने उस संकष्टनाशन व्रत को किया।।४१।। इसी व्रत के प्रभाव से पार्वती जी ने शिवजी को अपना पति पाया, हे राजन्! आप इस कष्टनिवारक व्रत को करिये।।४२।। स्कन्द ने यह संकष्ट चतुर्थी ऋषियों को सुनाई थी। लोक के कल्याण चाहने वाले ऋषियों ने इसे प्रचलित कर दिया।।४३।। सूत जी शौनकादिक महर्षियों से बोले कि, हे

द्विजो! राज्य की इच्छा से महाराज युधिष्ठिर ने इस व्रत को किया था इसी व्रत के प्रभाव से युद्ध में वैरियों को मारकर अपना राज्य पा लिया था।।४४।। इस कारण सबको प्रयत्नपूर्वक इस व्रत को करना चाहिये, जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मिल जाये।।४५।। हे ब्राह्मणों! जो सभी काम अर्थों की सिद्धि देने वाले इस व्रत को करता है वह वांछित फल को पाकर अन्त में गणपति को पा जाता है।।१४६।। हे ब्राह्मणों! जब-जब मनुष्यों को बड़ा भारी कष्ट प्राप्त हो सबको उस समय संकटचतुर्थी का व्रत करना चाहिये।।४७।। त्रिपुर को मारने के लिए शिवजी ने इस व्रत को किया था।।४८।। जब रावण को बालि ने बाँध लिया था, उस समय रावण ने भी इसी व्रत को किया था उसने भगवान् गणेश जी की कृपा से फिर अपना राज्य पा लिया था।।४९।। मैं सीता का पता पा जाऊँ इस इच्छा से इस व्रत का संकल्प हनुमान जी ने किया था इसके ही प्रभाव से वो सीता जी का पता लगा सके।।५०।। हे ब्राह्मणों! नल का पता पाने के लिये दमयन्ती ने भी इस व्रत को किया था, उसने पवित्र यशवाले नैषध नल को पति पाया।।५१।। अहल्या ने भी प्राणवल्लभ गौतम प्राप्त किया था। इस व्रत से विद्यार्थी को विद्या, धनार्थी को धन तथा सुपुत्रार्थी को पुत्र और रोगी को आरोग्य की प्राप्ति होती है।।५२।।

यह स्कन्दपुराण का संकष्टचतुर्थी का व्रत पूरा हुआ।

११.११ करकचतुर्थीव्रतम् – कथा (करवा चौथ)

अथ कार्तिककृष्णचतुर्थ्यामथवा दक्षिणदेशे आश्विनकृष्णचतुर्थ्यां करक चतुर्थीव्रतम्।। अत्र स्त्रीणामेवाधिकारः। तासामेव फलश्रुतेः।। आचम्य मासपक्षाद्युल्लिख्य मम सौभाग्यपुत्रपौत्रादि सुस्थिर श्रीप्राप्तये करकचतुर्थीव्रतं करिष्ये इति संकल्प्य वटं विलिख्य तदधस्ताच्छिवं गणपति षण्मुखयुक्तां गौरीं च लिखित्वा षोडशोपचारैः पूजयेत्।। पूजामन्त्र – नमः शिवायै शर्वाण्यै सौभाग्यं सन्ततिं शुभाम्।। प्रयच्छ भक्तियुक्तानां नारीणां हरवल्लभे।। इत्यनेन गौर्याः, ततो नमोन्तनामन्त्रेण शिवषण्मुखगणपतीनां पूजा कार्या।। ततः सपक्वान्नाक्षतसंयुक्तान् दशकरकान् ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्।। ततः पिष्टक-नैवेद्यं भोग्यं सर्वं निवेदयेत्।। ततश्चन्द्रोदयोत्तरं चन्द्रायार्घ्यं दद्यात्।।

अथ कथा–मान्धातोवाच।। अर्जुनं तु गते तप्तुमिन्द्रकीलगिरिं प्रति।। विषण्णमानसा सुभ्रू द्रौपदी समचिन्तयत्।।१।। अहो किरीटिना कर्म समारब्धं सुदुष्करम्।। बहवो विघ्नकर्तारो मार्गे वै परिपन्थिनः।।२।। चिन्तयित्वेति सा देवी कृष्णा कृष्णं जगद्गुरुम्।। भर्त्तु प्रियं चिकीर्षन्ती सापृच्छद्विघ्न-वारणम्।।३।। द्रौपद्युवाच।। कथयस्व जगन्नाथ व्रतमेकं सुदुर्लभम्।। यत्कृत्वा सर्वविघ्नानि विलयं यान्ति तद्वद।।४।। श्रीकृष्ण उवाच।। एवमेव महाभागे शम्भुः पृष्टः किलोमया।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्राह देवो महेश्वरः।।५।। शृणु देवि वरारोहे वक्ष्यामि त्वां महेश्वरि।। सर्वविघ्नहरेत्याहुः करकाख्यां चतुर्थिकाम्।।६।। पार्वत्युवाच।। भगवन् कीदृशी प्रोक्ता चतुर्थी करकाभिधा। विधानं कीदृशं प्रोक्तं केनेयं च पुरा कृता।।७।। ईश्वर उवाच।। शक्रप्रस्थपुरे रम्ये विद्वज्जनसमाकुले।। स्वर्णरौप्यसमाकीर्णे रत्नप्राकारशोभने।।८।। दिव्यनारीज- नालोकवशीकृतगत्रये।। वेदध्वनिसमायुक्ते स्वर्गादपि मनोहरे।।९।। वेदशर्मा द्विजस्तत्रावसद्देशे विदां वरः।। पत्नी तस्यैव विप्रस्य नाम्ना लीलावती शुभा।।१०।। तस्यां स जनयामास पुत्रान् सप्तामितौजसः।। कन्यां वीरावती नाम्नीं सर्वलक्षणसंयुताम्।।११।। नीलोत्पलाभनयनां पूर्णेन्दु सदृशाननाम्।। तां तु काले शुभदिने विधिवच्च द्विजोत्तमः।।१२।। ददौ वेदाङ्गविदुषे विप्राय

विधिपूर्वकम्।। आनन्तरे भ्रातृदारैश्चक्रे गौर्य्या व्रतं च सा।।१३।। चतुर्थ्यां कार्तिकस्याथ कृष्णायां तु विशेषत:।। स्नात्वा सायन्तने काले सर्वास्त: भक्तिभावत:।।१४।। विलिख्य वटवृक्षं च गौरीं तस्य तले लिखन्।। शिवेन विघ्ननाथेन षण्मुखेन समन्विताम्।।१५।। गन्धपुष्पाक्षतैर्गौरी मन्त्रेणानेन पूजयन्।। नम: शिवायै शर्वाण्यै सौभाग्यं सन्ततिं शुभाम्।।१६।। प्रयच्छ भक्तियुक्तानां नारीणां हरवल्लभे।। तस्या: पार्श्वे महादेवं विघ्ननाथं षडाननम्।।१७।। पुन: पुष्पाक्षतैर्धूपैरर्चयंश्च पृथक्पृथक्।। पक्वान्नाक्षतसंपन्नान् सदीपान् करकान् दश।।१८।। तथा पिष्टकनैवेद्यं भोजनं सर्वं न्यवेदयन्।। प्रतीक्षन्त्य: स्त्रिय: सर्वाश्चन्द्रमर्घ्यपरा: स्मिता:।।१९।। सा बाला विकला दीना क्षुत्तुड्भ्यां परिपीडिता।। निपपात महीपृष्ठे सुहृदुर्बान्धवास्तदा।।२०।। समाश्वास्य च वा तैस्तां मुखमभ्युक्ष्य वारिणा।। तद्भ्राता चिन्तयित्वैवमारुरोह महावटम्।।२१।। हस्ते चोल्कां समादाय ज्वलन्तीं स्नेहपीडित:। भगिन्यै दर्शयामास चंद्रं व्याजोवितं तदा।।२२।। तं दृष्ट्वा चार्तिमुत्सृत्य बुभुजे भावसंयुता।। चन्द्रोदयं तमाज्ञाय अर्घ्यं दत्त्वा विधानत:।।२३।। तद्दोषेण मृतस्त्वस्या: पतिधर्मश्च दूषित:।। पतिं तथाविधं दृष्ट्वा शिवसभ्यर्च्य सा पुन:।।२४।। व्रतं निरशनं चक्रे यावत्संवत्सरो गत:।। चक्रु: संवत्सरेऽतीते व्रतं तद्भ्रातृयोषित:।।२५।। पूर्वोक्तेन विधानने सापि चक्रे शुभानना।। तदा तत्र शची देवी कन्याभि: परिवारिता।।२६।। एतदेव व्रतं कर्तुमागता स्वर्गलोकत:।। वीरवत्यास्तदाभ्याशम- गमद्भाग्यत: स्वयम्।।२७।। दृष्ट्वा तां मानुषीं देवीं पप्रच्छ सकलं च सा। वीरावती तदा पृष्टा प्रोवाच विनयान्विता।।२८।। अहं पतिगृहं प्राप्ता मृतोऽयं मे पति: प्रभु:।। न जाने कर्मण: कस्य फलं प्राप्तं मयाधुना।।२९।। मम भाग्यदशाद्देवि आगतासि महेश्वरि।। अनुगृह्णीष्व मां मातर्जीवयाशु पतिं मम।।३०।। इन्द्राण्युवाच।। त्वया पितृगृहे पूर्वं कुर्वन्त्या करकव्रतम्।। वृथैवार्घ्यस्तदा दत्तो विना चन्द्रोदयं शुभे।।३१।। तेन ते व्रतदोषेण स्वामी लोकान्तरं गत:।। इदानीं कुरु यत्नेन करकव्रतमुत्तमम्।।३२।। पतिं ते जीवयिष्यामि व्रतस्यास्य प्रभावत:।। कृष्ण उवाच।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा व्रतं चक्रे विधानत:।।३३।। प्रसन्ना साऽभवद्देवी शक्रस्य प्राणवल्लभा।। तया व्रते कृते देवी जलेनाभ्युक्ष्य तत्पतिम्।।३४।। जीवयामास चेन्द्राणी देववच्च बभूव सा।। ततश्चागाद्गृहं स्वीयं रेमे सा पतिना सह।।३५।। धनं

धान्यं सुपुत्रांश्च दीर्घमायुः स लब्धवान्।। तस्मात्त्वयापि यत्नेन व्रतमेत-द्विधीयताम्।।३६।। सूत उवाच।। श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा चकार द्रौपदी व्रतम्।। तद्व्रतस्य प्रभावेण जित्वा तान् कौरवान्रणे।।३७।। लेभिरे राज्यमतुलं पाण्डवा दुःखनाशनम्।। याः करिष्यन्ति सुभगा व्रतमेतन्निशागमे।।३८।। तासां पुत्रा धनं धान्यं सौभाग्यं चातुलं यशः। करकं क्षीरसंपूर्णं तोयपूर्णमथापि वा।।३९।। ददामि रत्नसंयुक्त चिरं जीवतु मे पतिः।। इति मन्त्रेण कारकान् प्रदद्याद्द्विजसत्तमे।।४०।। सुवासिनीभ्यो दद्याश्च आदद्यात्ताभ्य एव च।। एवं व्रतं या कुरुते नारी सौभाग्यकाम्यया।। सौभाग्यं पुत्रपौत्रादि लभते सुस्थिरा श्रियम्।।४१।।

इति वामनपुराणे करकाभिधं चतुर्थीव्रतं सम्पूर्णम्।।

११.१२ करकचतुर्थी व्रत–कथा (करवा चौथ) (हिन्दी टीका)

अब कार्तिक वदि चतुर्थी के दिन या दक्षिणदेश में प्रसिद्ध आश्विनकृष्णा चतुर्थी के दिन होने वाले करक चतुर्थी के व्रत का निरूपण करते हैं – इस व्रत को करने का केवल स्त्रियों का ही अधिकार है; क्योंकि व्रत करने वाली स्त्रियों की ही फलश्रुति मिलती है। प्रथम आचमन करे फिर "ओम् तत्सत्" इत्यादि रीति से देश काल का स्मरण करे, फिर "मम" इत्यादि वाक्य द्वारा संकल्प करे कि, मैं अपने सौभाग्य एवं पुत्र पौत्रादि तथा निश्चल सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये करकचतुर्थी के व्रत को करूँगी। उस प्रकार संकल्प करने के बाद एक बट को लिखे उस, बट के मूलभाग में महादेवी, गणेशजी और स्वामिकार्तिक सहित पार्वती जी का आकार बनावें फिर प्राणप्रतिष्ठा करके षोडशोपचार से पूजन करे। पूजा के मंत्र – "शर्वाणी शिवा" के लिये प्रणाम है। हे महेश्वर भगवान की प्यारी! आज अपनी भक्त स्त्रियों को सौभाग्य और शुभ सन्तान प्रदान करें, इस मन्त्र से गौरी की पूजा करके पीछे, नमः जिनके अन्त में रहता है ऐसे नाम मन्त्रों से शिवजी, स्वामिकार्तिक तथा गणपति देव की पूजा करनी चाहिये। इसके पीछे पक्वान्न और अक्षतों के साथ दश करवे ब्राह्मणों को देने चाहिये। इसके पीछे पिष्टक का नैवेद्य और भोज्य सब निवेदन कर दे। पीछे चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा को अर्घ्य देना चाहिये। अब कथा–मान्धाता कहने लगे कि, जब अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर तप करने चले गये उस समय सुभ्रु द्रौपदी का चित्त कुम्हिला गया और चिन्ता करने लगी।।१।। कि अर्जुन ने बड़ा कठिन काम करना प्रारम्भ कर दिया है, यह निश्चय है कि मार्ग में विघ्न करने वाले बहुत से बैरी हैं।।२।। कृष्णा की यह इच्छा थी कि, पतिदेव के काम में कोई विघ्न न आवे इसी चिन्ता को करके जगदगुरु श्रीकृष्ण भगवान् से पूछा।।३।। द्रौपदी बोली हे जगन्नाथ! आप एक अत्यन्त गोप्य व्रत को बतावें, जिसके करने से सब ओर के विघ्न दूर

टल जायें।।४।। श्रीकृष्ण बोले कि, हे महाभागे! जैसा आपने मुझसे पूछा है, उसी प्रकार पार्वती जी ने महादेव जी से पूछा था उनके प्रश्न को सुनकर महादेव जी ने कहा कि।।५।। हे वरारोहे! हे महेश्वरी! तुम सुनो, मैं तुम्हें सब विघ्नहारिणी करक चतुर्थी का व्रत कहता हूँ।।६।। पार्वती ने पूछा कि हे भगवन्! करक चतुर्थी का माहात्म्य और इस व्रत को करने की क्या विधि है? आप कहिये यह व्रत पहले किसने किया था इसको भी कहिए।।७।। महादेव जी बोले कि, जहाँ बहुत से विद्वान् रहते हैं, जिस जगह चाँदी सोना एवं रत्नों की बहुलता है।।८।। जो सुंदर स्त्री पुरुषों के दर्शन से तीनों भुवनों को वशीभूत कर लेता है, वहाँ निरन्तर वेदध्वनि होती रहती है ऐसे स्वर्ग से भी रमणीय इन्द्रप्रस्थपुर में।।९।। वेदशर्मा नामक विद्वान् ब्राह्मण निवास करता था, उसकी स्त्री का नाम लीलावती था। वह स्त्री अतिसुन्दर थी।।१०।। उस वेदशर्मा से लीलावती में सात परम तेजस्वी पुत्र और एक सर्व लक्षण सुलक्षण वीरावती नामक कन्या उत्पन्न हुई।।११।। फिर वह ब्राह्मण अपनी नीलकमलदृश नेत्र वाली पूर्णचन्द्रमा के समान मुख वाली उस वीरावती कन्या को विवाह योग्य समय में।।१२।। वेदवेदाङ्ग (शिक्षाव्याकरणादि) शास्त्रज्ञ उत्तम ब्राह्मण के लिये विधिपूर्वक दान कर दिया, उसी समय वीरावती ने अपनी भाभियों के साथ गौरीव्रत किया।।१३।। फिर जब कार्तिक वदि चतुर्थी आई उस समय वीरावती और उसकी भाभी सब मिलकर बड़ै प्रेम से सन्ध्या के समय।।१४।। वँट के वृक्ष का चित्र बनाकर उसके मूल में महेश्वर, गणेश एवं कार्तिकेय के साथ गौरी को बनाकर।।१५।। गन्ध, पुष्प और अक्षतों से इस गौरी मन्त्र को बोलती हुई पूजने लगीं कि शर्वाणी शिवा के लिये नमस्कार है, सौभाग्य और अच्छी सन्तति।।१६।। उन स्त्रियों को दें जो, हे हर की प्यारी! तेरी भक्तिवाली हों, उसके पार्श्व में स्थित महादेव, गणेश और स्वामि कार्तिकेय को।।१७।। फिर, धूप, दीप और पुष्प आदि से जुदा जुदा पूजन कर पीछे पक्वान्न अक्षत और दीपकों सहित दश करवे।।१८।। तथा पिष्टक का नैवेद्य एवम् सब तरह का भोज्य, चन्द्रमा को अर्घ्य देने की प्रतीक्षा में बैठी हुई सब स्त्रियों ने निवेदन कर दिया।।१९।। वह बालिका भी भूख प्यास से पीड़ित थी इस कारण दीन

एवम् विकल होकर भूमि पर गिर पड़ी, उस समय उसके बान्धवगण रोने लगे॥२०॥ कोई उसको हवा करने लगा, कोई मुख पर पानी छिड़कने लगा, उसका भाई कुछ सोच-विचारकर एक बड़े भारी पेड़ पर चढ़ गया॥२१॥ बहन के प्रेम में पीड़ित था हाथ में एक जलती हुई मसाल ले रखी थी उस जलती को ही उसने चन्द्र बताकर दिखा दिया॥२२॥ उसे चाँद समझ, दुःख छोड़, विधिपूर्वक अर्घ देकर भाव के साथ भोजन किया॥२३॥ इसी दोष से उसका पति मर गया, धर्म दूषित हुआ। पति को मरा देख शिव का पूजन किया॥२४॥ फिर उसने एक साल तक निराहार व्रत किया, और उसकी भाभियों ने संवत्सर के बीत जाने पर वह व्रत किया॥२५॥ पहले कहे हुए विधान से शोभन मुख वाली वीरावती ने भी व्रत किया, उस समय कन्याओं से घिरी हुयी शची देवी॥२६॥ इसी व्रत को करने के लिये स्वर्ग लोक से चली आई और वीरावती के भाग्य से उसके पास अपने आप पहुँच गई॥२७॥ शची देवी ने उस मानुषी को देखकर उससे सब बातें पूछी, एवम् वीरावती ने नम्रता के साथ बातें बता दी॥२८॥ हे देवेश्वरि! मैं विवाह के बाद जब अपने पति के घर पहुँची तभी मेरा पति मर गया, न जाने मैंने ऐसा कौन उग्र पाप किया है, जिसका यह फल मिल रहा है॥२९॥ पर फिर भी आज मेरे किसी पुण्य का उदय हुआ है, जिससे हे महेश्वरि! आप यहाँ पधारी हैं, आपसे यही प्रार्थना है कि, आप मेरे पति को शीघ्र जीवित करने की कृपा करें॥३०॥ यह सुन इन्द्राणी बोली कि, हे वीरावति! तुमने अपने पिता के घर पर करक चतुर्थी का व्रत किया था, पर वास्तविक चन्द्रोदय के हुए बिना ही अर्घ देकर भोजन कर लिया था॥३१॥ इस प्रकार अज्ञान से व्रत भङ्ग करने पर यत् किञ्चिदपराध के कारण तुम्हारा पति मर गया है, इस कारण आप अपने पति के पुनर्जीवन के लिए विधिपूर्वक उसी करकचतुर्थी का व्रत करिए॥३२॥ मैं उस व्रत के ही पुण्य प्रभाव से तुम्हारे पति को जीवित करूँगी। श्री कृष्ण चन्द्र बोले कि, हे द्रौपदी! इन्द्राणी के वचन सुनकर उस वीरावती ने विधिपूर्वक करकचतुर्थी का व्रत किया॥३३॥ उसके व्रत के पूरा हो जाने पर इन्द्राणी भी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार प्रसन्नता प्रकट करती हुई एक चुलू जल

लेकर वीरावती के पति की मरण भूमि पर छिड़क कर उसके पति को।।३४।। जीवित कर दिया, वह पति देवताओं के समान हो गया। वीरावती अपने घर पर आकर अपने पति के साथ क्रीड़ा करने लगी।।३५।। वो धन, धान्य, सुन्दर पुत्र और दीर्घ आयु पा गया। इससे तुम भी अच्छी तरह इस व्रत को करो।।३६।। सूतजी शौनकादिक मुनियों से कहते हैं कि, इस प्रकार श्रीकृष्ण चन्द्र भगवान् के वचनों को सुनकर द्रौपदी ने करक चतुर्थी के व्रत को किया, उसी व्रत के प्रभाव से संग्राम में कौरवों को पराजित करके।।३७।। उसके पति पाण्डव सब दु:खों को मिटाने वाली अतुल राज्य संपत्ति को पा गये। और जो सुभगस्त्रियाँ इस व्रत को संध्याकाल में करेंगी और रात्रि को चन्द्रोदय में अर्घ्य देकर भोजन करेंगी।।३८।। उन स्त्रियों को पुत्र, धन, धान्य, सौभाग्य और अतुल यश की प्राप्ति होगी। दुग्ध या जल से भरे हुए रत्नसमेत करवे।।३९।। मैं दान करती हूँ, इससे मेरा पति चिरंजीवी हो, इस प्रकार कहकर उनको योग्य ब्राह्मण के लिये देना चाहिये, और।।४०।। इस व्रत में सुहागिन स्त्रियों के लिये ही देना चाहिये, सुहागिन स्त्रियों से ही लेना चाहिये। इस प्रकार जो स्त्री अपने सौभाग्यसुख सम्पत्ति के लिये इस व्रत को करती है उसको सौभाग्य पुत्र पौत्रादि तथा निश्चल सम्पत्ति मिलती है।।४१।।

यह वामनपुराण का करक चतुर्थी का व्रत पूरा हुआ।

११.१३ शीतलासप्तमी व्रतम् – कथा

शीतलासप्तमी।। अथ शुक्लादिश्रावणकृष्णसप्तम्यां शीतलाव्रतम्।। तच्च मध्याह्नव्यापिन्यां कार्यम्।। तथा च माधवीये हारीतः – पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः।। इति।। अथ व्रतविधिः। स्कान्दे– वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम्।। मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम्।। कुम्भे संस्थापयेद्देवि पूजा गृह्ण नमोऽतु ते।। शीतले शीतलाकारे अवैधव्यसुतप्रदे।। रावणस्यासिते पक्षे अर्घ्यं गृह्ण नमोऽस्तु ते।। सम्पूज्य सप्त गौरीश्च भोजयेच्च प्रयत्नतः।। अथ पूजा।। मास पक्षाद्युल्लिख्य मम इह जन्मनि जन्मान्तरे च अवैधव्यप्राप्तये अखण्डितभर्तृसंयोगपुत्रपौत्रादिधनधान्यप्राप्तये च शीतलाव्रतं करिष्ये।। तथा यथामिलितोपचारैः शीतलां पूजयिष्ये इति संकल्प्य अष्टदलयुते पीठे अव्रणं कलशं संस्थाप्यतदुपरि सौवर्णीं शीतलां संस्थाप्य वन्देहं शीतलां देवीमिति मंत्रेण ध्यात्वा ॐ शीतलायै नमः इति नाममन्त्रेण आवाहनम् आसनम् पाद्यम् अर्घ्यम् आचमनम् स्नानम् वस्त्रम् उपवस्त्रम् विलेपनम् अलंकारान् पुष्पाणि धूपम् दीपम् शीतले पञ्चपक्वान्नमिति मंत्रेण नैवेद्यम् करोद्वर्तनम् फलम् तांबूलम् दक्षिणाम् नीराजनम् पुष्पाञ्जलिं च समर्प्य प्रदक्षिणाम् नमस्कारान् शीतले दह मे पापमिति मन्त्रेण प्रार्थनां च कृत्वा शीतले शीतलाकारे इति मन्त्रेण विशेषार्घ्यं दद्यात्।। ततो व्रतसंपूर्णफलावाप्तये ब्राह्मणाय वायनं दद्यात्। तत्र मन्त्रः – दध्यन्नं दक्षिणायुक्तं वाणकं फलसंयुतम्।। शीतलाप्रीतये तुभ्यं ब्राह्मणाय ददाम्यहम्।। इति पूजनम्।। **अथ कथा।।** भविष्ये–कृष्ण उवाच। प्रसिद्धं श्रूयतां रम्यं नगरं हस्तिनापुरम्।। इन्द्रद्युम्नश्च राजाभून्नृपतिर्लोकपालकः।।१।। धर्मशीलाभिधा चासीत्तस्य भार्या यशस्विनी।। क्रियाकाण्डे रता साध्वी दानशीला प्रियंवदा।।२।। बभूव प्रथमः पुत्रो महाधर्मेति नामतः।। नन्दने पितृ वात्सल्यात्कालेऽन्यस्मिततो भवेत्।।३।। द्वितीयाथ तथा पुत्री तस्य जाता गुणोत्तमा।। पुत्री लक्षणसंपन्ना शुभकारीति नामतः।।४।। ववृधे सा पितुर्गेहे सर्वाङ्गगुणसुन्दरी।। नाम्ना रूपेण सा बाला सर्वासां च गुणाधि–

का।।५।। सामुद्रिकगुणोपेता पद्महस्ता प्रियंवदा।। कौण्डिन्यनगरे राजा सुमित्रो नाम नामतः।।६।। तत्पुत्रो गुणवान्नाम शुभकार्याः पतिर्बभौ।। वरो हि देहमानेन लक्ष्मीवान् रूपवान् गुणैः।।७।। गुणवाञ्छुभकारिण्याः पाणिं जग्राह धर्मवित्।। गृहीत्वा पारिबर्हाणि गतोऽसौ नगरं प्रति।।८।। पुनः समाययौ राजा गुणवान् हस्तिनापुरम्।। वृतः परिजनैः सर्वेस्तत्पुत्र्या नयनोत्सुकः।।९।। तं दृष्ट्वा शुभकरी सा सहर्षा जातसंभ्रमा।। प्रणम्य च पितुः पादौ तमूचे चारुहासिनी।।१०।। मया तात परिज्ञातं यदुक्तं पद्मयोनिना।। पातिव्रत्यसमो धर्मो नास्तीह भुवनत्रये।।११।। तस्मादाज्ञां देहि राजन् प्रहृष्टेनान्तरात्मना। रथमारुह्य यास्यामि स्वामिना स्वपुरं प्रति।।१२।। तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पितोवाच सुतां प्रति।। स्थित्वैकं वासरं पुत्रि शीतलाव्रतमुत्तमम्।।१३।। सौभाग्यारोग्यजनकम-वैधव्यकरं परम्।। कृत्वा याहि मतं ह्येतत्त्वन्मातुर्मम चैव हि।।१४।। इत्युक्त्वा व्रतसामग्रीं पूजोपकरणं तथा।। संपाद्य राजा तां सद्यः शीतलामर्चितुं नृपाः।।१५।। प्रेषयामास सरसि ब्राह्मणं वेदपारगम्।। सपत्नीकं तया सार्धं गता सा तद्वनान्तरे।।१६।। भ्रमन्ती वत्सरस्तत्र नापश्यद्विधिसाधनम्।। श्रान्ता भ्रमन्ती विजने स्मरन्ती शीतलां मुहुः।।१७।। ददर्श सा ततो नारीं वृद्धां रूपगुणान्विताम्। विप्रस्तु संभ्रमञ्छ्रान्तः सुप्तो निद्रावशं गतः।।१८।। दष्टोऽहिना मृतस्तस्य भार्या तन्निकटे स्थिता।। शुभकारीं ततो वृद्धा सोवाच करुणार्द्रधीः।।१९।। भविष्यति चिरंजीवी भर्ता ते राजकन्यके।। आगच्छा पूजानार्थाय दर्शयामि सरोवरम्।।२०।। तथा सह गता साध्वी तडागं विधिपूर्वकम्।। पूजयामास हर्षेण तोषयामास शीतलाम्।।२१।। तस्य वरं प्राप्य मुदा स्वमार्गं गन्तुमुद्यता।। ततः सा ददृशेऽरण्ये ब्राह्मणं दष्टसर्पकम्।।२२।। भार्यां तु तस्य निकटे रुदतीं ब्राह्मणीं मुहुः।। राजपुत्री लब्धवरा शीतलायाः पतिव्रता।।२३।। तयोस्तरुणदम्पत्योर्योग्यसौभाग्यदर्शनात्।। रुदती करुणं सापि शुशोच च मुहुर्मुहुः।।२४।। आश्वास्य ब्राह्मणी सा तु राजपुत्रीमुवाच ह।। तिष्ठ तिष्ठ क्षणं सुभ्रु प्रविशामि हुताशनम्।।२५।। अनेन सह गच्छामि स्वर्गलोकं सुखावहम्।। तस्यास्तद्वच आकर्ण्य राजपुत्री दयान्विता।।२६।। सस्मार शीतलां देवीं महावैधव्यमञ्जनीम्।। आगच्छशीतला तत्र वरं दातुं शुचिस्मिता।।२७।। शीतलोवाच।। वरं वरय वत्से त्वं किं दुःखं चारुहासिनि।। शीतलाव्रतजं पुण्यं देहि त्वं ब्राह्मणीं शुभाम्।।२८।। तेन पुण्यप्रभावेण भर्तास्या निर्विषो

भवेत्।। इति देव्या वचः श्रुत्वा अवदद् ब्राह्मणीं ततः।।२९।। बुबोधाशु ततो विप्रश्चिरं सुप्तो यथा पुनः।। शीतलाया व्रते बुद्धिर्ब्राह्मण्याश्चाभवत्तदा।।३०।। अकरोत्सापि तत्पूजां भक्तिभावपुरःसरा।। तत्रान्तरे राजपुत्र्याः पतिरागाद्व-नान्तिकम्।।३१।। सोपि दष्टोऽथ सर्पेण गच्छन्त्यग्रे ददर्श तम्।। विललाप ततः साध्वी सख्या सह वनान्तरे।।३२।। शीतलोवाच।। वत्से मया पूर्वमुक्तं स्मर तद्वरवर्णिनि।। शीतलाव्रतचारिण्या वैधव्यं नैव जायते।।३३।। स्वयमुत्थाय कल्याणि पतिं सुप्तं गृहे यथा।। बोधयाशु तथा भीरु व्रतं वैधव्यशाशनम्।।३४।। इत्युक्त्वा बोधयामास भर्तारं सा पतिव्रता।। भर्तापि मुदितो दृष्ट्वा स्वां प्रियां प्रीतिमानभूत्।।३५।। दृष्ट्वा तु महदाश्चर्यं तद्ग्रामस्थायिनो जनाः।। सर्वे ते विस्मयं जग्मुर्ब्राह्मणीपतिरक्षणात्।।३६।। ब्राह्मणी हर्षिता वृद्धां प्रणिपत्य प्रतिव्रता।। देहि मातर्नमस्तेऽस्तु अवैधव्यावियोगिनी।।३७।। अन्यापि शीतलायास्तु व्रतं नारी करिष्यति।। अवैधव्यमदारिद्रयमवियोगं स्वभर्तृतः।।३८।। तथेत्यन्तर्दधे देवी शीतला कामरूपिणी।। शीतलाया वरं लब्ध्वा जगामात्मीयवेश्मनि।।३९।। पद्माकरावासिसुविश्ववन्द्यासमर्हणासादितविश्वमङ्गला।। प्रसादमासाद्य च शीतलाया राज्ञः सुता पार्वतिवद्बभूव।।४०।।

इति भविष्ये शीतलाव्रतं सम्पूर्णम्।।

११.१४ शीतलासप्तमी व्रत– कथा (हिन्दी टीका)

अब शीतलासप्तमी व्रत कहते हैं– यह व्रत शुक्ल पक्ष से मासारम्भ के मानानुसार श्रावण वदि सप्तमी को करना चाहिये। इसमें सप्तमी मध्याह्न व्यापिनी होनी चाहिए। कालमाधव में हरीतस्मृति का प्रमाण मिलता है कि पूजाप्रधान व्रतों में मध्याह्नव्यापिनी तिथि ग्राह्य है। स्कन्दपुराण में लिखा है कि प्रथम शीतला देवी के सम्मुख आकर साञ्जलि प्रार्थना करके कि रासभ (गर्दभ) वाहना, दिगम्बरा (नग्न), हाथों में मार्जनी (झाड़ू) और कलश को धारण करने वाली, मस्तक पर जिसे शूर्प (छाज) है ऐसी शीतला देवी की मूर्ति कलश पर स्थापित करे। 'ओं शीतलायै नमः' शीतला के लिये नमस्कार इस नाम मन्त्र से उसे स्नानादि करावे। फिर पाँच प्रकार का पक्वान्न, सघृत दधि और भात यह नैवेद्य आपको निवेदन करता हूँ, हे देवि! हे सुन्दरि! आप इस नैवेद्य का भोग लगाओ। ऐसे नैवेद्य लगाकर दक्षिणा समर्पण करे। पीछे पूजन समाप्त करके प्रार्थना करें कि, हे शीतले! आप मेरे पापों को दग्ध करो। मुझे पुत्र पौत्रादिकों का सुख, धन और धान्य की सम्पत्ति का दान करो। हे देवि! मैंने जो आपका पूजन किया है इसे अङ्गीकार करो, आपके लिये नमस्कार है। पीछे अर्घ्यदान करे, उस समय 'शीतले' इस श्लोक को पढ़े। इसका यह अर्थ है कि, हे शीतल आकारवाली! हे स्त्रियों को सौभाग्य और पुत्र देने वाली! हे शीतले! श्रावण वदि सप्तमी के दिन मेरे दिये हुए इस अर्घ्य को स्वीकार करो, तुम्हारे लिये नमस्कार है। फिर सात वर्ष की सात कन्याओं का प्रेम से पूजन करके अच्छी तरह भोजन करावे। इस व्रत के आरम्भ में 'ओं तत्सत् ३ अद्यैतस्य ब्रह्मणे' इत्यादि वाक्य योजना करके मास पक्षादिरूप काल और भारत वर्षादिरूप देश, गोत्रादि रूप अपने स्वरूप का उल्लेख करके 'मम' इत्यादि मूल में लिखे वाक्य को पढ़कर संकल्प करे। यह संकल्प स्त्रियों को ही उपयुक्त है, इसका यह भाव है कि, अमुक गोत्र वाली अमुक नाम्नी जो

मैं हूँ, मुझे इस और दूसरे जन्मों में सौभाग्य मिले, पति के अखण्डित संयोग (सम्भोग) सुख की प्राप्ति हो। पुत्र, पौत्रादि तथा धनधान्य की सम्पत्ति प्राप्त हो; इसलिये शीतला सप्तमी व्रत और जो ये पूजन के उपचार इकट्ठे हुए हैं इनसे शीतला का पूजन करूँगी। एक चौकी पर वस्त्र बिछाकर उस पर अक्षतों से अष्टदल कमल का आकार करे, उसमें अच्छिद्र कलश स्थापित करे, उस कलश पर सुवर्णमयी शीतलामूर्ति को स्थापित करे। पीछे 'ओं शीतलायै नमः आवाहयामि, शीतला के लिये नमस्कार शीतला का आवाहन करती हूँ। इस नाम मन्त्र से आवाहन करे। ऐसे ही 'ओं शीतलायै नमः आसनमर्पयामि, इहागत्य अत्रतिष्ठ' श्री शीतला के लिये नमस्कार आसन देती हूँ। यहाँ आकर यहाँ बैठें इस नाम मन्त्र से आसन प्रदान करें। इसी प्रकार वाक्य कल्पना करते हुए, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवस्त्र, चन्दन, अलंकार, पुष्प, धूप और दीपक दान करे। 'शीतले पञ्च' इस पहिले कहे हुए मन्त्र से भोग लगाकर नाम मन्त्र से करोद्वर्त्तन, फल, ताम्बूल, दक्षिणा, आरती, पुष्पाञ्जलि चढ़ावें। फिर नाम मन्त्र से प्रदक्षिणा करके वन्देऽहं शीतलां' इस पहले कहे हुए मन्त्र से प्रणाम, 'शीतले दह पापं' इस मन्त्र से प्रार्थना और 'शीतले शीतलाकारे' इस पूर्वोक्त मन्त्र से विशेष अर्घ्य दान करे। फिर व्रत के पूर्णफल की प्राप्ति के लिये ब्राह्मण के लिये वायना दे। उसका 'दध्यन्नं' यह मन्त्र है। इसका यह अर्थ है कि, शीतला की प्रीति के लिये मैं दधि, अन्न, फल और दक्षिणासहित वायना तुम्हें देती हूँ।।

इस व्रत की कथा भविष्यपुराण में इस प्रकार है श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे नृपते! आप सुनें। हस्तिनापुर नामक एक नगर है, उसमें लोकों का रक्षक इन्द्रद्युम्न नाम का राजा था।।१।। उसकी पतिव्रता यशस्विनी, धर्मशीला नाम की स्त्री थी, वह अनेकों पुण्यानुष्ठान करने वाली उदार चित्तवाली और मधुर भाषिणी थी।।२।। उसको पहले एक पुत्र हुआ, उसका महाधर्म नाम रख दिया, उस पर पिता का वात्सल्य प्रेम था। इससे वह सदा प्रसन्न रहता था, दूसरी बार शुभकारी नाम की कन्या उत्पन्न हुई। यह कन्या भी गुणों से उत्कृष्ट एवम् शुभ लक्षणों से युक्त थी।।३।।४।। पिता इस पुत्री को भी वत्सला से आनंदित करता था।

यह शुभकारी अपने पिता के घर में सब अङ्ग और गुणों से सुन्दर एवं नाम और सुन्दरता से भी सब लड़कियों में उत्कृष्ट थी।।५।। सामुद्रिक शास्त्र में जो शुभ लक्षण कहे हैं उनमें सम्पन्न, कर में कमल चिह्नवाली और मधुरभाषिणी थी। कौण्डिन्य नगर में एक सुमित्र नाम का राजा था।।६।। सुमित्रा का गुणवान् नाम का पुत्र शुभकारी का पति हुआ, देह के मान से गुणों से श्रेष्ठ था, रूपवान् और लक्ष्मीवान् था।।७।। धर्मनिष्ठ गुणवान् राजसुता का विधिवत् पाणिग्रहण किया पीछे ससुराल से बहुत सा पारिबर्ह (दहेज) लेकर अपने पिता की राजधानी चला गया।।८।। वह राजकुमारी कुछ दिन रह कर अपने पति के घर से पिता के घर चली आयी, पीछे राजकुमार अपने कौण्डिन्यपुर वाले बान्धवों के साथ गौना करने के लिये हस्तिनापुर आया।।९।। इसको देखते ही शुभकारी शुभ राशि के नेत्र प्रेम आनन्द से पूर्ण हो गये। फिर अपने पति के साथ कौण्डिन्य पुर जाने के लिए उद्यत हो प्रसन्नता से; चारु (मधुर मन्द मन्द) हास करने लगी सम्भ्रम हो गया, अपने पिता के समीप जा उनके चरणों में प्रणाम करके प्रार्थना की।।१०।। कि हे तात! विधाता ने जो कहा है कि तीनों लोकों में पातिव्रत्य के बराबर कोई धर्म नहीं है, यह मैं जान गई।।११।। उसी को पालन करने के लिये कौण्डिन्यपुर जाती हूँ अतः आप प्रहृष्ट अन्तःकरण से अनुमति दीजिए, जिससे मैं रथ में बैठकर स्वामी के साथ अपने घर को जाऊँ।।१२।। इन्द्रद्युम्न राजा अपनी पुत्री से बोला कि, हे पुत्रि! तुम अभी एक दिन यहाँ और ठहरो, शीतला व्रत करो।।१३।। यह व्रत स्त्रियों के सौभाग्य और आरोग्य को बढ़ाने वाला है। इसके अनुष्ठान से वैधव्य भय नष्ट होता है। यह मेरी और तुम्हारी माता की सलाह है।।१४।। ऐसे कहकर उसे ठहराय शीतला के पूजन की सामग्री इकट्ठी करायी, शीतला जी के पूजन का स्थान वन में, तालाब के कूल पर बिताया, फिर राजा ने उस पुत्री को व्रत की सामग्री दे जलाशय पर शीतला पूजन के लिये भेज दिया।।१५।। पूजन कराने के लिए एक वेदवेत्ता सपत्नीक ब्राह्मण को उसके पीछे भेजा। वह शुभकारी सम्भ्रम से आगे जंगल में दौड़कर चली गयी।।१६।। पर उसे कहीं भी शीतला स्थान नहीं मिला। अतः घूमती-घूमती थक गयी पर शीतला जी

का बारंबार स्मरण करती हुई आगे तालाब को खोजते-खोजते फिरने लगी।।१७।। उसने वहाँ एक बूढ़ी सुन्दर स्त्री देखी। जो पूजन कराने के लिये ब्राह्मण भेजा गया था वह न राजकुमारी के पास पहुँचा और न उस तालाब पर ही, किन्तु रास्ते में ही भटकता-भटकता थक गया, अतः उसे नींद आ गयी।।१८।। उसके पास ब्राह्मणी बैठ गयी। फिर किसी दुष्ट सर्प ने वहाँ ऐसा डसा कि, वह वहाँ ही उसी क्षण मर गया। इधर उस राजकुमारी शुभकारी से उस वृद्ध स्त्री ने दयार्द्र होकर कहा।।१९।। कि हे राजकन्ये! तुम्हारा भर्ता चिरंजीवी होगा, तुम मेरे साथ पूजन के लिये आवो, मैं तुझे तालाब दिखाती हूँ।।२०।। शुभकारी उसके साथ तालाब पर गयी, वहाँ पर प्रसन्न चित्त होकर राजकुमारी ने शीतला जी का विधिवत् पूजन किया एवम् शीतला जी को संतुष्ट भी किया।।२१।। फिर शीतला देवी ने प्रसन्न होकर वर दिया, वर मिलने पर अपने घर के रास्ते की ओर चलने की तैयारी की तब उसने कुछ दूर चलकर जंगल में सर्प के डंक से मरा हुआ ब्राह्मण देखा।।२२।। उसके पास उसकी ब्राह्मणी भी बारंबार ऊँचे स्वर से रोदन कर रही थी। शीतला देवी की प्रसन्नता से जिसे सौभाग्य वर मिला है वह साध्वी राजसुता शुभकारी।।२३।। उन तरुण ब्राह्मण और ब्राह्मणी की दशा देखती हुई करुण स्वर से रोती हुई बारंबार चिन्ता करने लगी।।२४।। पतिव्रता ब्राह्मणी ने राजसुता को आश्वासन देकर कहा कि, जब तक चिता, चिन इस पति के साथ हुताशन में प्रविष्ट न हों तब तक तुम यहाँ ही ठहरो, जावो मत, ठहरो।।२५।। पति के साथ हुताशन में प्रवेश करने से स्त्रियों के लिये स्वर्ग सुख होता है। ब्राह्मणी के वचन सुन शुभकारी और भी दया विष्ट हो।।२६।। महान् बैधव्य दुःख को भी विनष्ट करने वाली भगवती शीतला देवी का स्मरण करने लगी। शीतलादेवी प्रसन्नता से मन्द-मन्द मधुर हँसती हुई वहाँ वर देने चली आई।।२७।। और बोली कि, हे वत्से! हे प्रियपुत्रि! वर माँगो, हे चारुहासिनी! तुझे कौन-सा दुःख उपस्थित हुआ है? जिसको मिटाने के लिये मेरा स्मरण किया। यदि तुम इस ब्राह्मणी के दुःख से दुःखित हो, तो शीतला के व्रत का पुण्यफल इसको दे दो।।२८।। उस पुण्य फल से सर्प का विष दूर हो जायेगा, यह झट अभी

जीवित होकर प्रबुद्ध होवेगा। श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिर से कह रहे हैं कि शीतला के इन वचनों को सुन उस राजकुमारी ने दयावश हो अपने किये शीतलाव्रत के पुण्य को उसे दे दिया।।२९।। उस पुण्यफल के मिलने से वह ब्राह्मण जैसे कोई बहुत देर से सोता हुआ जागता है वैसे ही निर्विष हो त्वरित प्रबुद्ध हो गया। ऐसे पुण्यप्रभाव को देखने से ब्राह्मणी के मन में भी शीतला व्रत करने का प्रेम उत्पन्न हो गया।।३०।। इससे प्रेम वश ही ब्राह्मणी ने भी शीतला जी का पूजन किया। इसी बीच राजपुत्री शुभकारी के प्रेम से अन्वेषण करता हुआ उसका पति गुणवान् भी वहाँ आ रहा था कि रास्ते में।।३१।। उसे भी सर्प ने डस लिया और वह प्रतिव्रता राजसुता अपने संग उस वृद्धा शीतला और दोनों के लिये आ रही थी, कुछ दूर पर आगे पति को भी वहाँ उसी तरह गिरा देख वो ब्राह्मणी के साथ विलाप करने लगी।।३२।। तब शीतला वहाँ पधार कर बोली कि, हे वत्से! हे वरवर्णिनि! सुन्दरि! मैंने पूर्व में जो कहा था उसे याद करो, शीतला के व्रत को जो स्त्री करती है, उसे वैधव्य का दु:ख कभी भी नहीं होता।।३३।। इससे तुम विलाप मत करो, खड़ी हो घर में सुप्त पुरुष को जैसे जगाया करते हैं, वैसे ही इसे भी तुम खड़ी होकर स्वयं अपने हाथ से इसके हाथ को पकड़ कर खड़ा करो। हे भीरु! पर मेरे व्रत का अनुष्ठान करती रहना, क्योंकि यह वैधव्य के दु:ख का भञ्जन करने वाला है।।३४।। ऐसे जब भगवती शीतला जी ने कहा, तब वह शुभकारी खड़ी होकर उस अपने मृत पति को देखकर और प्रिया अपने पति को जीवित देखकर दोनों प्रसन्न हो गये।।३५।। वहाँ के रहने वाले जन, इस बड़े भारी आश्चर्य को देखकर आश्चर्यचकित हो गये, ब्राह्मणी पति के रक्षण से।।३६।। परम प्रसन्न हुई, क्योंकि, जो पतिव्रता थी उसने उस वृद्धा को प्रणाम करके कहा कि, हे मात:! मुझे वो वर दे कि, मैं कभी विधवा और वियोगिनी न हूँ।।३७।। यह भी आपसे वर माँगती हूँ कि, जो भी स्त्री कोई शीतला का (आपका) व्रत करे, वह भी विधवा, दरिद्रा और वियोगिनी न हो।।३८।। जैसे उस ब्राह्मणी ने प्रार्थना की उस वृद्धा स्त्री ने यही कहा कि, ऐसा ही हो। फिर वह अन्तर्हित हो गयी। क्योंकि वह स्वयं अपनी इच्छा से रूप धारण करने वाली

शीतला देवी ही थी, न कि वृद्ध और कोई दूसरी स्त्री थी; ऐसे शीतला देवी का वर मिलने से वह राजकुमारी अपने पति और उन ब्राह्मण-ब्राह्मणी के साथ अपने पिता के घर चली गई।।३९।। शीतला देवी के प्रसाद का लाभ कर विश्ववन्द्या शीतला के समर्पण (पूजन) करने से जिसने समस्त जगत् के आनन्दमङ्गल प्राप्त किये हैं, ऐसी पार्वती जी की भाँति पद्माकर कमलयन या लक्ष्मी से पूर्ण खजानों को अपने भवनों में विलासिनी हुई।।४०।।

यह श्रीभविष्यपुराण का शीतला व्रत है।

११.१५ जन्माष्टमी व्रत – पारणादि निर्णयः

अथ कृष्णादिमासेन भाद्रकृष्णाष्टम्यां जन्माष्टमीव्रतम्।। तच्च अर्धरात्रव्यापिन्यां कार्यम् "रोहिण्या सहिता कृष्णा मासि भाद्रपदेऽष्टमी।। अर्धरात्रे तु योगोऽयं तारापत्युदये तथा।। नियतात्मा शुचिः सम्यक्पूजां तत्र प्रवर्तयेत्।" इति विष्णुधर्मोत्तरे तस्य पूजाकालत्वोक्तेः।। दिनद्वये अर्धरात्र-व्याप्तावव्याप्तौ वा परैव।। प्रातः संकल्पकाले सत्त्वाद्दिवारात्रियोगात्, वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमी संयुताष्टमी" इति ब्रह्मवैवर्त्ते सप्तमीयुक्तानिषेधाच्च।। यदापूर्वेद्युर्निशीथे केवलाष्टमी उत्तरेद्युर्निशीथास्पर्शिन्यष्टमी रोहिणीयुक्ता तदा पूर्वेव ग्राह्या–कर्मकालसत्त्वात्।। रोहिणीयोगस्तु केवलं फलातिशयार्थो नवमीबुधावियोगवन्न तु निर्णयोपयोगी। इतरथा–प्रेतयोनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं नरैः।। यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता।। किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः। किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यस्तु मुक्तिदा।। इति सरोहिणीमप्यष्टमीं विहाय बुधनवमीयुता कार्यापद्येत।। सोमेनेत्यस्य सोमवारेणेत्यर्थ इति केचित्।। "तारापत्युदये तथा" इति विष्णु धर्मोत्तरैकमूलकल्पनालाघाच्चन्द्रोदये चेति मयूखे।। उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी सकला यदि।। भवेत्तु बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता।। अपि वर्षशतेनापि लभ्यते यदि वा न वा।। तत्र उदयशब्दश्चन्द्रोदयपरः।। सूर्योदयपरत्वे तु यदा पूर्वेद्युर्निशीथे केवलाष्टमी उत्तरेद्युर्निशीथास्पर्शिन्यष्टमी रोहिण्या युक्ता सती बुधयुक्ता तदैवोत्तरा स्यात्।। अन्यतरायेऽप्येतद्वचनप्रवृत्तरेद्युर्व्रतमेवं पूर्वेद्युर्निशीथेशऋक्षाष्टमीसत्त्वे बुधाधिक्यादुत्तरेद्युर्व्रतापत्तिरिति।। यच्च विष्णुरहस्ये–प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता कृष्णा नभसि चाष्टमी।। मुहूर्त्तमपि लभ्येत सोपोष्या च महाफला।।इति।।

अत्रापि मुहूर्त्तपदं निशीथाख्यमुहूर्त्तपरम्।। यत्त्विदमत्यन्ताशुद्धम्।। तथात्वे वाक्यस्यैवानर्थक्यप्रसङ्गात्।। यदि हि शुद्धाप्यष्टम्यर्द्धरात्रे वर्तमाना ग्राह्या, तदा रोहिणीसहिता सुतरामिति किं वचनेन।। मुहूर्त्तमप्यहोरात्रे यस्मिन्युक्तं हि लभ्यते।। अष्टम्या रोहिणीऋक्षं तां सुपुण्यामुपावसेत्।। इति विष्णुरहस्ये

एव स्पष्टैवाहोरात्रसंबंधि यत्किंचिन्मुहूर्त्तप्रतीतिरिति कालतत्त्वविवेचने तद्विपरीतम्।। ऋक्षयोगस्य स्तावकत्वेन सार्थक्यात्।। किञ्चैतद्वचनद्वयगतापि-शब्दस्य स्वार्थे तात्पर्याभावेन ऋक्षयोगस्तवकत्वेन प्राशस्त्यबोधकत्वस्यैवो-चित्वादिति।। यत्पुनरतत्रोक्तं कर्मकालव्याप्तिशास्त्रादेव प्रधानभूताया अष्टम्या एव अर्धरात्रसत्त्वेन प्राप्तं ग्राह्यत्वम्।। दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणी कला।। रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्।। इति वचनेन रोहिणीयोगाभावविषये विशेषः क्रियते। एवं तस्यार्थ– दिवावच्छेदेन रात्र्यवच्छेदेन वा कलामात्रापि चेद्रोहिणी अष्टम्यां नास्ति तदैव चन्द्रोदय– सहितामर्धरात्र-व्यापिनीमिति यावत्।। दिनद्वयेऽति तादृश्या अभावे बहुरात्रि- संयुतामुत्तरां प्रकुर्वीतेति।।तन्न।। नेदं कर्मकालशास्त्रबाधकमन्यथाप्यर्थसंभवात्।। तथाहि, दिनद्वये वैषम्येण निशीथे स्पर्शे अहोरात्रावच्छेदेन रोहिणीयोगाभावे च विशेषणाधिक्येनेन्दुसंयुता अधिकनिशीथ व्यापिनी ग्राह्येति यावत्।। रोहिणीयोगे त्वधिकनिशीथव्यापिनीमपि विहाय स्वल्पेपि निशीथयोगिनी रोहिणीयुतैव ग्राह्येति व्याख्यानन्तरं मयूखे द्रष्टव्यम्।। पारणं तु तिथिभान्ते कार्यम्।। तदाह भृगुः—जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च।। पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च पारणाम्।। इति।। निषेधोऽपि ब्रह्मवैवर्त्ते—अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात्पारणं क्वचित्।। हन्यात्पुराकृतं कर्म उपवासार्जितं फलम्। तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं च चतुर्गुणम्।। तस्मात्प्रयत्नात्कुर्वीत् तिथिभान्ते च पारणम्।। इति तत्र दिवसे उभयान्ते पारणमिति मुख्य पक्षः।। एकतरान्ते त्वनुकल्पः।। यदा तु तिथि नक्षत्रयोरन्तरस्यैव दिनेऽन्तस्तदा रात्रौ पारणानिषेधादन्यतरान्ते पारणाम्यनुज्ञानाद्दिवैवान्यतरान्ते कार्या।। अत एव वह्निपुराणे भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि शस्तं भारत पारणम्।। इति।। इति जन्माष्टीनिर्णयः।

प्रध्माय वेणु रुचिरे कदम्बे कदम्बमाहुय वराङ्गनानाम्।।
निधूयमानं यमुनानिकुञ्जे रतोऽच्युतः सोऽवतु मां प्रपन्नम्।
केशप्रसारणं यत्र कामिन्याः कामिना कृतम्।
तत्र तस्यैव रूपस्य देहि मे दर्शमच्युत।।
संसारसागरे घोरे माषवस्त्वां समाश्रित।
कृपया पाहि देवेश! शरण्योऽसि जनार्दन।।

११.१६ जन्माष्टमी व्रत का निर्णय एवं पारण विचार

कृष्णपक्ष से मास का प्रारम्भ मानने पर भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को जन्माष्टमी का व्रत होता है। इसमें अर्धरात्रव्यापिनी अष्टमी होनी चाहिये, इसमें प्रमाण देते हैं कि, इसका पूजन विधान रात में किया है कि, भाद्रपदमास की रोहिणी सहिता कृष्णाष्टमी आधी रात के समय हो तो समाहित चित्त वाले पवित्र पुरुष को चाहिये कि, ऐसे समय में पूजन करना भली भाँति प्रारंभ कर दे। व्रत में केवल अर्धरात्रव्यापिनी अष्टमी को सामान्य रूप से ग्रहण किया है कि, अर्ध रात्र व्यापिनी अवश्य होनी चाहिये। फिर इसी की पुष्टि में अर्धरात्रि को पूजाविधान करने वाला वचन रख दिया है। इससे प्रतीत होता है कि, केवल रात्रि के पूजन मात्र को दिखाने के लिये ही वचन रख दिया है। बाकी उस वचन के पदार्थ का साध्य अर्धरात्रव्यापिनीपने में कोई उपयोग नहीं है। यह जन्माष्टमी के व्रत की सामान्य विवेचना है कि और कुछ हो या न हो पर निशीथव्यापिनी अष्टमी अवश्य होनी चाहिये।। वैसी ही दो दिन रहने वाली अष्टमियों में से व्रताष्टमी कौन सी है? इस बात के निर्णय के लिये लिखते हैं कि, यदि दो दिन अर्धरात्रव्यापिनी न हो, तो भी परा का ही ग्रहण होता है। इसमें कारण तीन है – पहला तो परा मानने से प्रातःकाल व्रत संकल्प के समय अष्टमी मिल जायेगी। दूसरे रात दिन यह अष्टमी रहेगी। तीसरे ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में ऐसा कहा है कि सप्तमी के साथ रहने वाली अष्टमी को प्रयत्न के साथ छोड़ दे। इन तीनों कारणों से दो दिन अर्धरात्रव्यापिनी होने या न होने में परा का ही ग्रहण करना चाहिये।। पूर्वा का ग्रहण उस समय होता है जबकि, पहले दिन अर्धरात्रव्यापिनी अष्टमी हो, दूसरे दिन रोहिणी नक्षत्र के साथ अष्टमी हो पर निशीथ का स्पर्श न करती हो, इसमें कारण यही है कि पूर्वा में अर्धरात्र के पूजन के समय अष्टमी बनी रहती है पर उत्तरा में नहीं रहती। विरोध परिहार तो केवल यही विचार करने से हो जाता है कि, दोनों दिन अर्धरात्रव्यापिनी न हो अथवा

दोनों ही दिन हो तो परा का ग्रहण है, पर एक दिन अर्धरात्रि में व्याप्ति हो दूसरे दिन दिन में हो तो पूर्वा का ग्रहण होता है यह परा और पूर्वा के ग्रहण करने के हेतुओं में भेद हो गया। इससे दोनों वाक्यों में कोई विरोध नहीं दीखता है। योग विशेष का विचार करे तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, योग विशेष फल के अतिशय के लिये है, खास नहीं है! यही बात नीचे सिद्ध करते हैं। सबसे पहले रोहिणी के ही योग पर विचार करते हैं। रोहिणी योग तो केवल फल का अतिशय दिखाने के लिये है जैसे कि नवमी और बुध के योग हैं उक्त नक्षत्र का योग किसी निर्णय के योग्य नहीं है। यदि ऐसा मानोगे तो यह जो पद्म में लिखा मिलता है कि, "उन मनुष्यों ने प्रेत योनि को प्राप्त हुए, अपने पुरुषों का प्रेतपना मिटा दिया जिन्होंने श्रावण (भाद्रपद) मास की रोहिणी नक्षत्र के साथ रहने वाली कृष्णा अष्टमी का व्रत किया था। यदि उस दिन बुधवार भी हो और सोमवार के उदय के साथ हो तो उसको विशेष फल का कहा गया है। यदि ऐसी अष्टमी नवमी के साथ संयुक्त हो तो कोटि कुलों की मुक्ति देने वाली है।' इससे रोहिणी युक्त अष्टमी को छोड़कर ऐसी ही बुध और नवमी से युक्ता करनी चाहिये यह सिद्धान्त हो जायेगा। इस कारण यह मानना ही चाहिये कि, रोहिणी आदि का योग, फलविशेष के लिये है, कोई खास बात नहीं है कि, ये आवश्यक ही हो। सोम–शब्द आया है, **"सोमेनापि विशेषतः"** इस पद्य के अन्दर, इस पर विचार होता है कि, इसका क्या अर्थ है? किसी ने इसका चन्द्रवार अर्थ किया है जो कि, निर्णयसिन्धु में झलकता है कि, ऐसा बुधवार या चन्द्रवार हो पर इसका यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि, विष्णुधर्म में **"तारापत्युदये सति"** यानी तारापति चन्द्रमा के उदय होने पर, यह वाक्य पड़ा है, इससे चन्द्रोदय का लाभ होता है कि, चन्द्रमा का उदय हो इसी के आधार पर सोम का **"चन्द्रवार"** अर्थ न कर चन्द्रोदय करना चाहिये यह मयूख में लिखा है, इससे यह निश्चय होता है कि ''सौमेन'' का अर्थ चन्द्रोदय के साथ है सोमवारी नहीं है। परयुता का माहात्म्य – भी स्कन्द में वर्णन किया है कि, उदयकाल में थोड़े समय तो अष्टमी हो और बाकी सब नवमी हो, वह भी अष्टमी बुधवार

और रोहिणी नक्षत्र से युक्त हो तो अत्यन्त ही उत्तम है पर यह सौ वर्ष में भी मिले या न मिले। उदय शब्द जो इसमें आया है, इसका निर्णयसिन्धु कार ने सूर्य्योदय अर्थ किया है, कोई इसका चन्द्रोदय अर्थ करते हैं, पर यह कहना उनका ठीक नहीं, क्योंकि चन्द्रोदय काल में कुछ अष्टमी रहने पर संपूर्ण नवमी का वार में योग हो नहीं सकता तथा दूसरा कोई प्रमाण भी नहीं है इस कारण उदय का अर्थ सूर्योदय करना चाहिये।। इस पर व्रत राजकार कहते हैं कि, यहाँ उदय शब्द चन्द्रोदय परक ही है, सूर्य्योदय नहीं है। यदि सूर्य्योदय परक मानोगे तो यह दोष होगा क्योंकि, पहिले दिन खाली अष्टमी निशीथव्यापिनी हो पर दूसरे दिन निशीथ काल का स्पर्श न करने वाली अष्टमी रोहिणी युता होती हुई बुधयुता होगी तब ही उत्तरा ली जायेगी इसके अभाव में नहीं ली जा सकती। क्योंकि जितने वचन होते हैं वे सब मुख से ही कहे होते हैं, यही उदय को सूर्य्य के मानने में दोष होगा। यदि यह कहें कि, विना बुध के रोहिणी के योगमात्र से ही उत्तरा का ग्रहण हो जायेगा तो यह भी होना चाहिये कि, रोहिणी के योग के बिना भी केवल बुधवार के ही योग से उत्तरा का ग्रहण हो जाना चाहिये क्योंकि, रोहिणी और बुधवार इन दोनों के योग में से एक के न रहने पर भी यह वचन प्रवृत्त होता है यह स्वीकार किया है, दूसरे नक्षत्र के योग की तरह वार का योग भी प्रशंसा का कारण होता है। इससे यह बात सिद्ध हो गयी कि, **"उदये"** इससे चन्द्र के ही उदय का ग्रहण है सूर्य का नहीं, एक और बात है कि, जैसे पहले दिन आधी रात के समय केवलाष्टमी हो और दूसरे दिन अर्धरात्रि से पहले रोहिणी नक्षत्र और बुध का योग हो तब इस वचन से दूसरे दिन का व्रत होगा। इसी तरह पहले दिन आधी रात के समय चन्द्रमा का उदय और रोहिणी नक्षत्र हो पर दूसरे दिन बुध की अधिकता में भी दूसरे दिन का व्रत होना चाहिये। किन्तु ऐसा होता नहीं है इसमें भी चन्द्रोदय ही लेना चाहिये। यह जो विष्णुरहस्य में लिखा हुआ है कि भाद्रपद कृष्णाष्टमी यदि रोहिणी नक्षत्र सहित एक मुहूर्त्त भी मिले तो उसमें व्रत करने से महाफल होता है इसमें जो मुहूर्त्तपद पड़ा हुआ है वह निशीथ नाम के मुहूर्त्त से तात्पर्य रखता है ऐसा कोई कहते हैं। पर यही

इसका तात्पर्य है तो यह तात्पर्य अत्यन्त अशुद्ध है क्योंकि, ऐसा मानने से वचन ही व्यर्थ होगा जब कि, शुद्धा भी अष्टमी अर्धरात्रि में रहने वाली ग्रहण की जाती है, यदि रोहिणी सहित मिल जाये तो अच्छी तरह ग्रहण कर ली जायेगी वचन की क्या आवश्यकता है। जिस अहोरात्र में अष्टमी रोहिणी नक्षत्र मुहूर्त्त पर भी युक्त मिल जाये तो उस सुपुण्या में उपवास करें। यह विष्णु रहस्य में लिखा है कि दिनरात सम्बन्धी रोहिणी नक्षत्र युत अष्टमी किंचिन्मुहूर्त्त भी प्रतीति हो तो भी ग्रहण कर ले, इससे यह बात परिस्फुट प्रतीत हो जाती है कि, पूर्वोदाहृत विष्णुरहस्य के वचन में जो मुहूर्त्त पद है वह दिन रात में कोई भी मुहूर्त्त हो यह अर्थ रखता है निशीथाख्य मुहूर्त्तपरक नहीं है। जो उसके मुहूर्त्तपद का निशीथ का मुहूर्त्त अर्थ करते हैं कालतत्त्व में उनसे विपरीत अर्थ किया है। यदि यह कहें यह क्यों रख दिया है तो यह भी नहीं कह सकते क्योंकि नक्षत्र के योग की प्रशंसा के लिये वचन के होने से वाक्य सार्थक हो जाता है, एक और यह बात है कि, **"मुहूर्त्तमपि"** इस वचन में **अपि** शब्द पड़ा हुआ है तथा दूसरे वचन में भी इस प्रकार अपि शब्द आया है इसका कोई स्वार्थ में तो तात्पर्य है नहीं, इससे नक्षत्र के योग की स्तुति करने वाला होने के कारण प्रशंसा का बोधक मानना ही उचित जान पड़ता है, जो फिर वहाँ ही यह कहा है कि, कर्म (पूजादिक के) काल में व्याप्ति (उपस्थित) को विषय करके कहने वाले शास्त्र से ही प्रधानभूत अष्टमी का आधी रात में रहने के कारण उसे ग्राह्यत्व प्राप्त है यानी पूजा का समय जो आधी रात है उसमें अष्टमी के रहते उस अष्टमी में व्रत होगा, ऐसा शास्त्र प्रतिपादित करता है। इसके विषय में यह कहना है कि, "दिन या रात दोनों में रोहिणी का एक भी कहा नहीं है तो आधी रात को रहने वाली चन्द्रोदय सहिता अष्टमी को व्रत करना चाहिये।" इस वचन से रोहिणी योग के प्रभाव में भी यह विशेष विधान किया है कि चन्द्रोदय सहिता को ही ले। इसी प्रकार ही इस वाक्य का अर्थ है कि, दिन या रात में एक कला भी रोहिणी न हो तो चन्द्रोदय के साथ आधी रात को पूजन के समय रहने वाली अष्टमी ही लेनी चाहिये। यदि दो दिन हो तो दोनों में व्रत करना चाहिये। ऐसा कोई कहते

हैं। पर ऐसा नहीं होना चाहिये, क्योंकि यह कर्मकाल के शास्त्र का बाधक नहीं है इसका दूसरी तरह भी अर्थ हो सकता है। यही दिखाते हैं कि, दोनों दिन समानता से अर्धरात्रव्यापिनी न हो तथा अहोरात्र पर रोहिणी नक्षत्र का योग न रहता हो तब विशेष की अधिकता से चन्द्रोदय के साथ रहने वाली जो अर्धरात्रि में अधिक देर तक रहने वाली अष्टमी हो उसका ग्रहण करना चाहिये। रोहिणी के योग में हो तो अधिक रात्रि तक रहने वाली अष्टमी को छोड़कर थोड़ी भी अर्धरात्रि के साथ योग रखने वाली रोहिणीयुता अष्टमी ग्रहण करनी चाहिये। इसकी दूसरी व्याख्या आचार मयुख में देखनी चाहिये। आचार्यों के मत में कृष्णाष्टमी पूर्वा और शुक्लाष्टमी परा ग्रहण की जाती है, व्रत मात्र में कृष्णाष्टमी और नवमीयुता शुक्लाष्टमी लेनी चाहिये यह अष्टमी के ग्रहण का सामान्य विचार है कि, व्रत में कृष्णाष्टमी पूर्वा और शुक्लाष्टमी परा ली जाती है। शिव और शक्ति के उत्सवों में तो दोनों ही पक्षों की उत्तरा का ही ग्रहण होता है यह विशेष है कि, शक्ति और शिव व्रतों में दोनों ही पक्षों की उत्तरा अष्टमी ली जाती है।

जन्माष्टमी—भगवान् कृष्ण को हुए पाँच हजार सत्ताइस के लगभग वर्ष बीत गये। कल्पतरु में ब्रह्म पुराण का प्रमाण दिया है कि अट्ठाईसवें कलियुग में भाद्रपद कृष्णा अष्टमी के दिन देवकी के पुत्र प्रकट हुए थे। यह अष्टमी दो प्रकार की है, एक तो केवल जन्माष्टमी और दूसरी जयन्ती। जयन्ती किसे कहते हैं? अब हम इसी पर विचार करते हैं। रोहिणी सहिता को जयन्ती कहते हैं क्योंकि, वह्निपुराण में लिखा हुआ है कि, भाद्रपद कृष्णा अष्टमी यदि रोहिणी नक्षत्र से युक्त हो तो वह जयन्ती कहलाती है, उसमें प्रयत्न के साथ व्रत करना चाहिये। दूसरा प्रमाण विष्णु रहस्य का है कि, भाद्रपदमास में कृष्ण पक्ष की अष्टमी रोहिणी नक्षत्र से युक्ता हो तो वह जयन्ती कहलाती है। इन दोनों प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया कि रोहिणीयुक्ता अष्टमी जयन्ती कहलाती है। यह उत्तमा, मध्यमा और अधमा इन भेदों से तीन तरह की होती है। यदि अहोरात्र रोहिणी का योग हो तो उत्तमा, अर्धरात्र मात्र में योग हो तो मध्यमा तथा दिवस वा रात्रि में थोड़ा-सा योग हो तो अधमा है। अर्धरात्रि

का रोहिणी योग भी चार प्रकार का होता है। १—पहले दिन ही अर्ध २—दूसरे दिन ही अर्ध ३—दोनों दिन ही अर्ध ४—हो तो सही पर निशीथ के समय न हो, इनमें चौथा योग भी तीन तरह का होता है – पहले दिन अर्धमात्र में अष्टमी हो और पर दिन रोहिणी हो, २—पर दिन अष्टमी हो और पहले रोहिणी हो, ३—दोनों दिन दोनों का अर्धरात्र में सम्बन्ध न हो।

पारणविधि— तिथि और नक्षत्र में अन्त में पारणा करनी चाहिये, यही भृगु ने भी कहा है कि, जन्माष्टमी, दशरथ ललिता और शिवरात्रि इनको पूर्वविद्धा ही करनी चाहिये तथा तिथि और नक्षत्र के समाप्त होने पर ही पारण करना चाहिये। व्रत तिथि-अष्टमी में पारणा का निषेध भी ब्रह्मवैवर्त्त में किया है कि, अष्टमी और रोहिणी में कभी पारण न करे, क्योंकि ऐसा करने से पहिले पवित्र कर्म और उपवास से इकट्ठे किए फल नष्ट होते है। आठगुणा तिथि और चौगुना नक्षत्र अपने में पारणा करने से फल को नष्ट करते हैं, इस कारण व्रत-तिथि और व्रत नक्षत्र के बीत जाने पर पारणा करें। इसमें भी दो पक्ष हैं, दिन में व्रततिथि और नक्षत्र के बीत जाने पर पारणा करे यह मुख्य पक्ष है, एक के बीतने पर पारणा करने का गौणपक्ष है जब कि, व्रततिथि या व्रत नक्षत्र में किसी से किसी का दिन में ही अन्त हो जाये। रात में तो पारणा का निषेध है। पर किसी के भी अन्त में पारणा कर सकते हैं। इस प्रकार का विधान है, इससे दिन में ही पारणा होनी चाहिये, चाहे नक्षत्र की समाप्ति में की जाये चाहे व्रततिथि की समाप्ति में की जा रही हो। अग्निपुराण में लिखा है कि, हे भारत! चाहे तो नक्षत्र के अन्त में पारणा करें चाहे तिथि के बीत जाने पर पारणा करे लेकिन दिन में ही करना श्रेष्ठ है।।

पारणा प्रत्येक व्रत के अन्त में होती है इस कारण पारणा का विचार करते हैं, व्रत के दूसरे दिन भोजन को पारण कहते हैं, यह दूसरे दिन कब करनी चाहिये? इस पर अब तक व्रतराज के विचार कहे गये थे। अब धर्मसिन्धु के विचार इस प्रकार हैं – यदि केवल तिथि का उपवास हो तो उसके बीतने पर तथा नक्षत्रयुक्त तिथि का उपवास हो तो

दोनों के अन्त में पारणा करनी चाहिए, यदि ऐसा हो कि, व्रत के तिथि नक्षत्रों में से किसी एक का अन्त दिन में मिलता हो पर दोनों का अन्त रात में ही मिले तो किसी भी एक के अन्त में दिन में ही पारण कर लेना चाहिये। व्रतराज में दोनों के अन्त में दिन में ही पारणा करे ऐसा लिखा है। यदि व्रत के दूसरे दिन व्रततिथि और व्रत नक्षत्र दोनों का ही अन्त मिल गया तो ठीक ही है, नहीं तो फिर तीसरे दिन पारणा विधान का मुख्य सिद्धान्त समझना चाहिये। निर्णयसिन्धुकार कहते हैं कि, यदि व्रततिथि और व्रत नक्षत्र इन दोनों में से दिन में किसी का भी अन्त न मिलता हो तो आधी रात से पहिले एक किसी के अन्त में अथवा तिथि नक्षत्र दोनों के ही अन्त में पारणा कर लेनी चाहिये। यह कब तक करनी चाहिये इस पर निर्णयसिन्धुकार कहते हैं कि, निशीथ के एक क्षण पहले भी दोनों में से किसी का या दोनों का अन्त हो तो पारणा निशीथ में भी कर लेनी चाहिये। ऐसे समय भोजन हो नहीं सके तो फलादिक से ही पारणा कर लेनी चाहिये। अनुकल्प में व्रतराजकार तो किसी एक के आभास में पारणा मानते हुए भी रात में पारणा का निषेध होने से दिन में ही व्रततिथि या व्रतनक्षत्र किसी की भी समाप्ति होने पर दिन में ही पारणा चाहते हैं। निर्णयसिन्धुकार ''केचित्तु'' करके इस बात का खण्डन करते हैं कि, कोई तो ऐसा कहते हैं कि, अर्धरात्रि में पारणा नहीं करनी चाहिये, किन्तु ऐसे बखेड़े में तीसरे दिन पारणा दिन में हो किन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि यदि असक्त हो तो बिना व्रत तिथि और नक्षत्र की समाप्ति हुए भी बिना व्रत के दूसरे दिन प्रातःकाल देव पूजनादि करके पारणा कर लेनी चाहिये। निर्णयसिन्धु में व्रतराज की तरह ब्रह्मवैवर्त्त का वचन लिखा है, दूसरा हेमाद्रि का वचन मिलता है कि, तिथि और नक्षत्र की जब समाप्ति हो अथवा नक्षत्र या तिथि की समाप्ति मिल जाय तो अर्धरात्रि में पारणा की जा सकती है, पीछे तो तीसरे दिन पारणा होगी इससे रात्रि के पारणा पक्ष को निर्णयसिन्धुकार ने मुख्य माना है पर व्रतराज ने रात्रि की पारणा का निषेध किया है यह व्रतराज और निर्णयसिन्धु में भेद है। ब्रह्मवैवर्त्त में लिखा हुआ है कि "सब उपवासों में दिन में ही पारणा करना इष्ट है" यानी रात में पारणा नहीं करनी

चाहिये। निर्णसिन्धुकार कहते हैं कि, दूसरे दिन दिन में ही व्रततिथि और व्रतनक्षत्र इन दोनों की समाप्ति तथा एक की समाप्ति मिल जाये तो दिन में ही पारणा करे। धर्मसिन्धु की तरह निर्णयसिन्धु भी निशीथ के पूर्वपक्ष तक दोनों या किसी की समाप्ति में पारणा मानता है। यदि दो दिन व्रत न कर सकते तो उसके लिए उत्सव के अन्त में अथवा नित्यकर्म से निवृत्त होकर प्रातःकाल ही पारणा कर लेनी चाहिये। यह उसने सिद्धान्त किया है।

११.१७ अथ श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रतप्रयोगः

व्रतपूर्वदिने दन्तधावनपूर्वकं कृतैकभक्तो व्रतदिने कृत्नित्यक्रियो देवताः प्रार्थयेत् – सूर्यः सोमो यमः कालसन्ध्या भूतान्यहःक्षपा।। पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खेचरा नराः।। ब्रह्मशासनमास्थाय कल्पन्तामिह सन्निधिम्।। इत्युक्त्वा सफलं पुष्पाक्षतजलपूर्णं ताम्रपात्रमादाय मासपक्षाद्युल्लिख्य अमुक फलकामः पापक्षयकामो वा कृष्णप्रीतये कृष्णजन्माष्टमीव्रतं करिष्ये इति संकल्प्य।। वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये।। उपवासं करिष्यामि कृष्णाष्टम्यां नभस्यहम्।। अद्य कृष्णाष्टमीं देवीं नभश्चन्द्रं सरोहिणीम्।। अर्चयित्वोपवासेन भोक्ष्येऽहमपरेऽहनि एनसो मोक्षकामोऽस्मि यद्गोविन्द-वियोनिजम्।। 'तन्मे मुञ्चतु मां त्राहि पतितं शोकसागरे।। आजन्ममरणं यावद्यन्मया दुष्कृतं कृतम्।। तत्प्रणाशय गोविन्द प्रसीद पुरुषोत्तम।। इत्युक्त्वा पात्रस्थं जलं निक्षिपेत्।। ततः कदलीस्तंभवासोभिसराम्रपल्लवयुतसजलपूर्ण-कलशैर्दीपैः पुष्पमालाभिर्युतमगुरुधूपितमग्निखड्गकृष्णच्छागरक्षमणिद्वारन्य-स्तमुसलादियुतं मंगलोपेतं षष्ठ्यां देव्याधिष्ठितं देवक्याः सूतिकागृहं विधाय तस्य समन्ताद्भित्तिषु कुसुमाञ्जलीन्देवगन्धर्वादीन् खड्गचर्मधरवसुदेवदेवकी नन्दयशोदागर्गगोपीगोपान्कंसनियुक्तान् गोधेनुकुञ्जरान्यमुनां तन्मध्ये कालिय-मन्यच्च तत्कालीनं गोकुलचरितं यथासंभवं लिखित्वा सूतिकागृहमध्ये प्रच्छदपटावृतं मञ्चकं स्थापयित्वा मध्याह्ने नद्यादौ तिलैः स्नात्वा अर्धरात्रौ श्रीकृष्णं सपरिवारं सुपूजयेत्।।

अथ पूजाविधिः येभ्यो मातैवापित्रे इति मन्त्रौ जपित्वा आगमार्थं त्विति घण्टानादं कृत्वा अपसर्पन्त्विति छोटिकामुद्रया भूतान्युत्सार्य तीक्ष्णदंष्ट्रेति क्षेत्रपालं संप्रार्थ्य आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य मम सहकुटुम्बस्य क्षेमस्थैर्यविजयाभयायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थं धर्मार्थकाममोक्षाख्यचतुर्विधपुरुषार्थं सिद्ध्यर्थं निशीथे सपरिवार श्रीकृष्णप्रीत्यर्थंच पुराणोक्तप्रकारेण पुरुषसूक्तविधानेन च यथासंभवनियमेन यथामिलितद्रव्यैर्जन्माष्टमीव्रताङ्गत्वेन परिवारसहित श्रीकृष्णपूजनमहं करिष्ये इति संकल्प्य कलशार्चनं शंखार्चनं च कुर्यात्।

पुरुषसूक्तेन न्यासान्कुर्यात्।। रङ्गवल्लीसमायुक्ते सर्वतोभद्रमण्डले।। अव्रणं सजलं कुम्भं ताम्रं मृन्मयमेव वा।। संस्थाप्य वस्त्रसंवीतं कण्ठदेश सुशोभितम्।। पञ्चरत्नसमायुक्तं फलगन्धाक्षतैर्युतम्।। सहिरण्यं समासाद्य ताम्रेण पटलेन वा। वंशमृन्मयपात्रेण यवपूर्वेन चैव हि।। आच्छादयेच्च चैलेन लिखेदष्टदलं ततः।। काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृन्मयी तथा।। वार्क्षी मणिमयी चैव वर्णकैलिखिताथवा।। इत्युक्तान्यतमां प्रतिमां विधाय अग्न्युत्तारणं कृत्वा प्रतिमाकपोलौ स्पृष्ट्वा तद्देवतामूलमन्त्रं प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं नमोन्तं नाम।। अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाश्चरन्तु च।। अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन।। इति मन्त्रं च पठन् प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्।। अस्या इत्यस्य स्थाने तत्तद्देवतानाम ग्राह्यम्। गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादैर्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रवरवृतकरैः किंकरैः सेव्यमाना।। पर्यंके स्वास्तृते या मुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता जयति सुवदना देवकी दिव्यरूपा।। इति देवकीम्।। माँ चापि बालकं सुप्तं पर्यंके स्तनपायिनम्। श्रीवत्सवक्षसं शान्तं नीलोत्पलदलच्छविम्।। इति श्रीकृष्णं च ध्यात्वा ॐ देवक्यै नम इति देवकीम्। ॐ श्रीकृष्णाय नम इति तत्प्रतिमायां कृष्णमावाह्य ॐ नमो देव्यै श्रियै इति श्रियम्।। वसुदेवाय नम इति वसुदेवम्। ॐ यशोदायै नम इति यशोदाम्। ॐ नन्दाय नम इति वसुदेवम्। ॐ बलदेवाय नम इति बलदेवम्। ॐ चण्डिकायै नम इति चण्डिकां चावाह्य। ॐ सपरिवाराय कृष्णाय नम इति नाममन्त्रेण कृष्णं पूजयेत्।। तद्यथा – ॐ सपरिवाराय कृष्णाय नमः आसनम्।। ॐ सपरिवाराय कृष्णाय॰ आचमनीयम्।। योगेश्वराय देवाय योगिनां पतये विभो।। योगोद्भवाय नित्याय गोविन्दाय नमो नमः।। स्नानम्।। ॐ सप॰ कृष्णाय॰ वस्त्रम्। ॐ सप॰ कृष्णाय॰ यज्ञोपवीतम्।। ॐ सप॰ कृष्णाय॰ चन्दनम्।। स॰कृ॰ पुष्पाणि॰।। अथाङ्गपूजा–गोविन्दाय॰ पादौ पूजयामि।। माधवाय॰ जंघे पू॰।। मधुसूदनाय॰ कटीं॰ पू॰।। पद्मनाभाय॰ नाभिं पू॰।। हृषीकेशाय॰ हृदयं पू॰।। संकर्षणाय स्तनौ पू॰।। वामनाय॰ बाहू पू॰।। दैत्यसूदनाय॰ हस्तौ पू॰।। हरिकेशाय नमः कण्ठं पू॰।। चारुमुखाय॰ मुखं पू॰।। त्रिवित्तमाय॰ नासिकां पू॰।। पुण्डरीकाक्षाय॰ नेत्रे पू॰।। नृसिंहाय॰ नेत्रे पू॰।। उपेन्द्राय॰ ललाटं पू॰।। हरये न॰ शिरः पू॰।। श्रीकृष्णाय सर्वाङ्गं पूजयामि।। यज्ञेश्वराय देवाय तथा

यज्ञोद्भवाय च।। यज्ञानां पतये नाथ गोविन्दाय नमोनमः।। धूपदीपौ।। विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च।। विश्वस्य तापये तुभ्यं गोविन्दाय नमो नमः।। नैवेद्यम् ॐ सं०कृ० आचमनीयम् करोद्वर्तनम् फलम् ताम्बूलम् दक्षिणाम् नीराजनम् पुष्पाञ्जलिम्।। इति भविष्यपुराणोक्तः पूजाक्रमः।। गारुडे तु यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसंभवाय गोविन्दाय नमो नम इति अर्घ्ये।। सर्वेषां यज्ञपदानां स्थाने योगपदयुक्तोऽयमेव मन्त्रः स्नाने।। तथैव विश्वपदयुक्तो नैवेद्य।। तथैव धर्मपदयुक्तः स्वाहान्तस्तिलहोमे।। विश्वपदयुक्त एव शयने।। सोमपदयुक्तश्चन्द्रपूजायां इति मन्त्रा उक्ताः।। ततो गव्यघृतेनाग्नौ वसोर्धारा, क्वचिद्गुडघृतेनेति।। ततो जातकर्म-नालच्छेदषष्ठीपूजानामकरणकर्माणि संक्षेपेण कार्याणि।। ततश्चन्द्रोदये रोहिणीयुतं चन्द्रं स्थण्डिले प्रतिमायां वा नाममन्त्रेण संपूज्य। शंखे तोयं समादाय सपुष्पकुशचन्दनम्।। जानुभ्यामवनीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत्।। क्षीरोदार्णव-संभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव।। गृहाणार्घ्यं शशांकेदं रोहिण्या सहितो मम।। इति अर्घ्यम्।। ज्योत्स्नायाः पतये तुभ्यं ज्योतिषं पतये नमः।। नमस्ते रोहिणीकान्त सुधावास नमोऽस्तु ते।। नमो मण्डलदीपाय शिरोरत्नाय धूर्जटे। कलाभिर्वर्ध-मानाय नमश्चन्द्राय चारवे।। इति प्रणमेत्।। अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम्।। वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम्।। वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम्।। दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम्।। गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम्।। अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारणम्।। अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम्।। नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम्।। पीताम्बरधरं नित्यं वनमालादिभूषितम्।। श्रीवसांकं जगत्सेतुं श्रीकृष्ण श्रीधरं हरिम्।। शरणं त्वां प्रपद्येऽहं सर्वकामार्थसिद्धये।। प्रणमामि सदा देवं वासुदेवं जगत्पतिम्।। इति मन्त्रैः प्रणम्य।। त्राहि मां सर्वलोकेश हरे संसार—सागरात्।। त्राहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो। सर्वलोकेश्वर त्राहि पतितं मां भवार्णवे।। देवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसागरात्।। त्राहि मां सर्वदुःखघ्न रोगशोकार्णवाद्धरे।। दुर्वृत्तात्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत्।। सोऽहं देवातिर्वृत्तस्त्राहि मां शोकसागरात्।। पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं 'मायाव्यज्ञानसागरे।। त्राहि मां देवदेवेश त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षिता। यद्वाल्ये

यच्च कौमारे यौवने यच्च वार्धके।। तत्पुण्यं वृद्धिमायातु पापं हर हलायुध।। इति मन्त्रैः प्रार्थयेत्।। ततः स्तोत्रं पठन् पुराणश्रवणादिना जागरं कुर्यात्।। द्वितीयेऽह्नि प्रातःकाले स्नानादिनित्यकर्म कृत्वा पूर्ववद्देवं पूजयित्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्।। तेभ्यः सुवर्णधेनुवस्त्रादि दत्त्वा कृष्णो मे प्रीयतामिति वदेत्।। यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्।। भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः।। नमस्ते वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।। शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा मां विसर्जयेत्।। इति प्रतिमामुद्वास्य तां ब्राह्मणाय दत्त्वा पारणं कृत्वा व्रतं समापयेत्।। सर्वस्मै सर्वेश्वराय सर्वेषां पतये सर्वसंभवाय गोविन्दाय नमो नम इति पारणे।। भूताय भूतपतये नम इति समापने मन्त्रः।।

इति पूजाविधिः।

११.१८ जन्माष्टमी व्रत प्रयोग (हिन्दी टीका)

व्रत दिन से पूर्व दिन दन्तधावनादि समस्त नैत्यिक कर्म करके एक बार भोजन करे। दूसरे दिन मलमूत्र त्यागकर नित्यकर्तव्य कर्म्म से निवृत्त होकर देवताओं की प्रार्थना करे कि, सूर्य, चन्द्र, यम, काल दोनों सन्ध्या, प्रतिसन्ध्या (सायंसन्ध्या), भूत (प्राणिमात्र), दिन, रात्रि, वायु, दिक्पाल, पृथिवी, आकाश, नक्षत्र और मनुष्य ये सभी ब्रह्माजी की आज्ञा लेकर यहाँ सन्निहित हो। इस प्रकार साञ्जलि प्रार्थना करने के बाद फल, पुष्प, अक्षत एवं जल से पूर्ण ताँबे के पात्र को हाथ में लेकर 'ओम तत्सत्' इत्यादि वाक्य कल्पना करके देश, काल और अपने गोत्र एवं नाम का स्मरण करके जिस कामना से व्रत करना हो उसको कहता हुआ अमुक फल की अभिलाषा वाला, या (यदि कामना से नहीं किन्तु कर्त्तव्य भावना से व्रत करता हो तो उसको कहता हुआ) पापों के क्षय का अभिलाषी मैं श्रीकृष्ण भगवान् की प्रीति के लिए जन्माष्टमी के व्रत को करूँगा, ऐसा संकल्प करे। इसके बाद भगवान् का साञ्जलि ध्यान करता हुआ प्रतिज्ञा करे कि, वासुदेव भगवान् की प्रसन्नता से समस्त पापों के क्षय के लिए आज मैं भाद्रपदकृष्णाष्टमी के दिन उपवास करूँगा। दूसरे दिन भोजन करूँगा। हे गोविन्द! मैं आपसे मोक्ष पद की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता हूँ। मैंने अब तक दूसरी-दूसरी नीच योनियों में पाप किया है उसके दु:ख से मुझे निर्मुक्त कीजिये। आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं शोक समुद्र में डूबा हुआ हूँ। मैंने जन्म से अब तक इस जन्म में भी पापकर्म किये हैं हे गोविन्द! उसे आप विनष्ट कीजिये हे पुरुषोत्तम! आप प्रसन्न हो। इस प्रकार कहकर ताम्रपात्र के जलादिकों को भूमि पर या किसी जलपात्र में डाले। फिर अनेक केले के स्तम्भ तथा वस्त्र और आम के कोमल पत्रों सहित जलपूर्ण अनेक कलश, दीपक एवं पुष्पमालाओं से चारों ओर से सजाया हुआ एवम् अगर, धूप से सुगन्धित अग्नि, खड्ग, कृष्णच्छाग और रक्षासूत्रों से सुरक्षित, द्वार भागों में मुसलादिकों से सुशोभित, माङ्गलिक दर्पण आदि सहित षष्ठी देवी की

मूर्ति से युक्त देवकी का सूतिकागृह बनाये उसके चारों ओर भित्तियों में कुसुमाञ्जलि लिये हुये देव, गन्धर्व और यक्ष नागादिकों के चित्र, खड्ग, चर्म, रक्षक, ढाल पाणि, वसुदेव जी, देवकी नन्द, यशोदा, गर्गाचार्य, गोप और गोपिकाओं के चित्र, कंस की आज्ञा से प्राप्त पूतनादि तथा इनके मरणादि सूचक चित्र एवं वृषभ, गौ, कुंजर यमुना, यमुनागत कालिया के दशमावस्था के चित्र और गोवर्धन धारणादि एवं उस बाल्यावस्था में गोकुल के किये चरितों के चित्रों को यथासम्भव लिखकर सूतिकागृह के मध्य भाग में चारों ओर कपड़े से ढके हुए पर्यङ्क को बिछावे मध्याह्न में ही आप नद्यादि किसी पवित्र जलाशय पर तिल स्नान करे। अर्ध रात्रि के पर्य्यन्त भगवान् के ध्यानादि करता रहे। अर्धरात्रि के पीछे परिवार सहित श्रीकृष्णचन्द्र की तथा देवकी आदि की प्रतिमाओं का पूजन करे।

अब पूजनविधि लिखते हैं– **ओं येभ्यो माता मधुतम् पिन्वते। एवापित्रे विश्वदेवाय** इन दो मंत्रों को जपकर **ओम् आगमार्थं तु देवानाम्** इस पूर्वव्याख्यातमंत्र को पढ़कर घण्टा बजावे। **ओं अपसर्पन्तु भूतानि** इस पूर्वोक्त मंत्र को पढ़ता हुआ चुटकी बजावे और चुटकी बजाने का अर्थ मानो भूतपिशाचों को यहाँ से निकाल दिया है ऐसा मन और प्राणायाम करके देश, काल को कह, कुटुम्ब सहित मेरी क्षेम, स्थैर्य्य विजय, अभय, आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य की अभिवृद्धि तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों तरह के पुरुषार्थों की सिद्धि के लिये अर्धरात्र के समय बलदेवादि सब परिवारसहित श्रीकृष्ण भगवान की प्रसन्नता के लिये पुराणों की कही हुई विधि के अनुसार तथा पुरुष सूक्त के विधान से जैसा हो सके उसी नियम से तथा जो प्राप्त हो जाये उसी द्रव्य से जन्माष्टमी के व्रत के अङ्ग रूप से परिवार सहित श्रीकृष्णचन्द्र जी का पूजन करूँगा ऐसा संकल्प करके कलश और शंख का पूजन करना चाहिये। रङ्गवल्ली सहित सर्वतोभद्र मण्डल पर ताँबे या मिट्टी का पानी से भरा हुआ कलश स्थापित करे, वह पूजाक्रम से ढका हुआ कण्ठदेश में सुशोभित पंचरत्नों से समायुक्त फल और अक्षतों से युक्त एवम् सोने सहित हो, उसे जौ के भरे हुए ताँबे के अथवा बाँस या मिट्टी के पात्र से ढक दें, उसके बाद सबको कपड़े से ढक दे उस पर अष्टदल कमल

लिखे, सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, मिट्टी, काष्ठ और मणि आदि में से किसी की भी बनी हुई प्रतिमा अथवा चित्रपट तैयार कराकर अग्न्युत्तारण करने योग्य का अग्नि उत्तारण संस्कार करके प्रतिमा के कपोल को छूता हुआ नाम के आदि में प्रणव और अन्त में नमः तथा नाम को चतुर्थी का एक वचन करने से उसी देवता का मूल मंत्र बन जाता है। इसी प्रकार **'ओम् श्रीकृष्णाय नमः'** इस मूल मंत्र को एक सौ आठ बार जपे, फिर **'अस्यै'** इस मंत्र को बोलकर प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। मंत्रार्थ इस देवता के लिए प्राणप्रतिष्ठित हों, इस देवता के लिए प्राण संचार करें, इस देवता के लिये पूजनार्थ अथवा इस अर्चावतार के लिये कोई पूजन का अभिलाषी भक्त देवपने को पूज्य प्रतिष्ठित करता है। **"अस्यै"** इसके स्थान में उस-उस देवता का नाम ग्रहण करना चाहिये। **"गायद्भि"** इस मंत्र से देवकी जी का ध्यान करे। इसका यह अर्थ है कि, किन्नर, अप्सरा, यक्षादिगण, गान वेणु और वीणा की ध्वनि से जिसको प्रसन्न करते हैं, भृङ्गार (जलझारी) दर्पण और कलश हाथों में लेकर बहुत से बाल जन जिसकी सेवा में समाहित चित्त हो रहे हैं। सुन्दर शय्यास्तरण से शोभित किये हुए पर्यंक पर आरूढ, प्रसन्नमुख श्रीकृष्णचन्द्र जिसके गोद में विराजमान है ऐसी दिव्य सौन्दर्य्य शालिनी, मन्द मुसकान करती हुई देवकी विजय को प्राप्त हो। **'वन्देऽहं'** इससे श्री कृष्णचन्द्र का ध्यान करे। इसका यह अर्थ है कि, पर्यङ्क पर शयन करके माता के स्तनपान करते हुए बालमूर्ति वक्ष:स्थल में श्रीवत्सचिह्न से शोभायमान, शान्त, नीलकमल के दल के समान सुन्दर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ- **'ओं देवक्यै नमः'** देवकी के लिये नमस्कार इससे देवकी का। **'ओं श्रीकृष्णाय नमः'** श्रीकृष्ण लिये नमस्कार इससे श्रीकृष्ण की प्रतिमा में श्रीकृष्ण का आवाहन करके पीछे **'ओं नमो दैव्यैधियै'** इससे श्री का, **'ओं वसुदेवाय नमः'** वसुदेव के लिये नमस्कार इससे वसुदेव का; **'ओं यशोदायै नमः'** यशोदा के लिये नमस्कार इससे यशोदा का; **'ओं नन्दाय नमः'** नन्द के लिये नमस्कार इससे नन्द का; **'ओं बलदेवाय नमः'** बलदेव के लिये नमस्कार इससे बलदेव का; **'ओं चण्डिकायै नमः'** चण्डिका के लिये नमस्कार इससे

चण्डिका का आवाहन करके **'ओं सपरिवाराय कृष्णायनमः'** बलदेवादि परिवार सहित कृष्ण के लिये नमस्कार इस नाम, मंत्र से कृष्ण का पूजन करना चाहिये। इसी मंत्र को पृथक-पृथक् बोलकर आसन, पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय, समर्पण करना चाहिये, हे विभो! भक्तियोग से भक्तों के लिये प्रकट होने वाले स्वः शाश्वत योगियों के, अधिपति योगेश्वर देव गोविन्द को बारंबार नमस्कार है, इससे स्नान, फिर उसी पूजन के नाममंत्र से क्रमशः वस्त्र, यज्ञोपवीत, चन्दन और पुष्प समर्पण करना चाहिये।। अंग पूजा – गोविन्द-पाद, माधव-कंधा, मधुसूदन-कटी। पद्मनाभ-नाभि। हृषीकेश-हृदय। संकर्षण-स्तन। वामन-बाहू। दैत्यसूदन-हस्त। हरिकेश-कंठ। चारुमुख-मुख। त्रिविक्रम-नासिका। पुण्डरीकाक्ष-नेत्र। नृसिंह-श्रोत्र। उपेन्द्र-ललाट। हरि-शिरः। श्रीकृष्ण, सर्वाङ्ग। ये ऊपर लिखे हुए सोलह नाम तथा इनके साथ पाद आदि अंग तथा सोलहवाँ सर्वाङ्ग है, इनमें एक अंग को द्वितीया विभक्ति का एक वचनान्त तथा दो होने वाले जंघा आदि को द्वितीया विभक्ति का द्विवचनान्त करके आये हुए भगवान् के नाम का नाममंत्र बनाके सबके पीछे "पूजयामि" लगाकर पुष्पों से पूजन करना चाहिये यानि एक-एक बोलकर एक-एक अंग पर फल चढ़ाने चाहिये। यज्ञ से प्रकट होने वाले या यज्ञों को प्रकट करने वाले यज्ञों से अधिपति यज्ञेश्वर देव गोविन्द के लिये बारंबार नमस्कार है, इससे धूप, दीप देने चाहिये। विश्व को उत्पन्न करने वाले विश्व के अधिपति सर्वरूप विश्वेश्वर आप गोविन्द के लिये बारंबार नमस्कार है, इससे नैवेद्य, पहले कहे हुए मूलमंत्र से आचमनीय, करोद्वर्तन, फल, ताम्बूल, दक्षिणा नीराजन और पुष्पांजलि समर्पण करना चाहिये। यह भविष्यपुराण का कहा हुआ पूजा क्रम पूरा हुआ।। गरुड़पुराण में तो – **'ओं यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसंभवाय गोविन्दाय नमो नमः'** यह मूलमंत्र लिखा है। इसका अर्थ है कि, यज्ञ से प्रकट होने वाले यज्ञपति, यज्ञरूप, गोविन्द के लिये बारंबार नमस्कार है इससे दोनों को अर्घ्य दे। इस मंत्र के साथ यज्ञ पदों की जगह योगपद कर देने से यह मंत्र स्नान का हो जायेगा, विश्वपद कर देने से नैवेद्य का होगा। तथा अन्त में नमः की जगह स्वाहा तथा यज्ञ की जगह सर्वत्र धर्मपद कर देने

से तिलहोम में प्रयुक्त हो जायेगा। विश्वपद के लगाने से शयन में तथा सोमपद के लगाने से चन्द्रमा की पूजा में प्रयुक्त हो जायेगा। ये पूजा के मंत्र कह दिये गये हैं। रही अर्थ की बात, उसमें भी यज्ञ शब्द की जगह योग आदिक पद डालने से अर्थ भी प्रायः वैसा ही हो जायेगा। फिर गऊ के घी की धारा या गुड़ मिश्रित घृत की धारा अग्नि में डालता हुआ वसोर्धारा करे। तदनन्तर जातकर्म्म, नालच्छेदन, षष्ठीपूजन और नामकरण संस्कारों को सूक्ष्म रीति से करे। चन्द्रोदय के समय में भूमि पर रोहिणी समेत चन्द्रमा का चित्र चावलों से लिखकर या प्रतिमा में पूजन करे। उसके बाद शङ्ख में पुष्प, कुश, चन्दन और जल लेकर धरती में जानू टेककर रोहिणी सहित चन्द्रमा के लिये अर्घ्य दान करे। उसका **'क्षीरोदार्णव'** यह मन्त्र है। इसका यह अर्थ है कि, हे क्षीरसमुद्र से अवतार धारण करने वाले हे अत्रिऋषि के गोत्र में प्रकट होने वाले! हे शशाङ्क! आप रोहिणी समेत इस मेरे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण करें। **"ज्योत्स्नायाः"** इत्यादि दो मन्त्रों से प्रणाम करें, अर्थ यह है कि, ज्योत्स्ना (चाँदनी) रात्रि के नाथ, ज्योतियों (नक्षत्रों) के स्वामी रोहिणी के प्राणप्रिय और अमृत के निधान आपके लिये प्रणाम है। गगनमण्डल में प्रकाश करने वाले दीपक स्वरूप, महेश्वर के शिरोभूषण, कलाओं से बढ़ने वाले सुन्दर मूर्ति चन्द्रमा के लिये प्रणाम है। 'अनघं' इत्यादि छः मूल में पूर्व लिखे मन्त्रों से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को प्रणाम करे, इनका यह अर्थ है कि, निर्मल (अनघ), वामनावतार धारण करने वाले या दैत्यों से देवताओं की ली हुई विभूति को वापिस कराने वाले, शूरवंश में अवतार धारण करने वाले, वैकुण्ठ के नाम पुरुषोत्तम, वासुदेव, हृषीकेश, माधव, मधुसूदन, वराह (यज्ञस्वरूप), पुण्डरीकाक्ष–श्वेतकमल सदृश नेत्र वाले, नृसिंह, दैत्यों के शत्रु, दामोदर, पद्मनाभ, केशव, गरुडध्वज, गोविन्द, अच्युत, दुष्टों के दमनकारी। (कृष्ण), अनन्त अपराजित, अधोक्षज, त्रिभुवन के बीज (कारण) स्वरूप, उत्पत्ति, पालन और संहार के कारण, अजन्मा, अमर, सर्वव्यापी (विष्णु), त्रिलोकीनाथ, तीनों लोकों को तीन पदों से आक्रान्त करने वाले (त्रिविक्रम) नारायण (जलशायी) चतुर्भुज शंख, चक्र और गदा के धारण करने वाले

पीताम्बरधारी, नित्य वनमाला से विभूषित, श्रीवत्सचिह्न से शोभित वक्ष'स्थल वाले, जगत् के मर्य्यादास्वरूप, श्री कृष्ण (लक्ष्मी के मन को हरने वाले), श्रीधर, हरि आप हैं, मैं अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये आपकी शरण आया हूँ। सदा क्रीडादि करने वाले, जगदीश्वर वासुदेव आप है, आपको प्रणाम करता हूँ। **"त्रीहि मां"** इत्यादि सार्ध पाँच मन्त्रों को पढ़कर श्रीकृष्णचन्द्र की प्रार्थना करें। इनका यह अर्थ है कि, हे सब लोकों के नाथ! हे हरे! आप संसार सागर से मेरा उद्धार करें। समस्त पापों के अन्तक! हे प्रभो! आप दुःख और शोकों के समुद्र से मेरा उद्धार करें।। हे सर्वलोकेश्वर! संसार समुद्र में पड़ा हुआ, मुझको आप बचाइये। हे देवकीनन्दन! हे पुण्डरीकाक्ष! मैं मायावी हूँ स्वयम् अज्ञानसमुद्र में डूबा हुआ हूँ, हे देव! देवों के भी नाथ! आप मेरी रक्षा करें, आपसे इतर मेरा कोई रक्षक नहीं है। मैंने बाल्य, यौवन और बुढ़ापे की अवस्था में जो धर्म्माचरण किया है वह बढ़े, हे हलायुध! जो मैंने पापाचरण किया है उसे नष्ट कीजिये। फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के स्तोत्र भागवतादि पुराण श्रवण करता हुआ जागरण करे। दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानादि नित्य कर्म करके पूर्वोक्त विधि से भगवान् का पूजन करे, ब्राह्मणों को भोजन करावे। उनको सुवर्ण, गौ और वस्त्रादि देकर, **'श्रीकृष्णो मे प्रीयताम्'।** श्रीकृष्णचन्द्र मेरे ऊपर प्रसन्न हों इस प्रकार कहे। देवकी देवी ने वसुदेव से, धारण करके जिस देव को भौम ब्रह्म की रक्षा करने के लिये प्रकट किया है। उस ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र के लिये नमस्कार है। गऊ और ब्राह्मणों के हितकारी वासुदेव के लिये नमस्कार है। शान्ति हो, कल्याण हो **'यं देवं'** इसको पढ़कर मेरा, (श्रीकृष्ण चन्द्र का) विसर्जन करे इस प्रकार प्रतिमा के विसर्जन के पीछे उसे आचार्य को दे दे। पीछे सर्वस्व सर्वात्मा, सर्वेश्वर, सभी के रक्षक (पति) सभी से सम्भव होने वाले, गोविन्द के लिये बारम्बार प्रणाम है इतना कहकर पारणा करे। "भूताय" (भूतात्मा) भूतपति के लिये नमस्कार है इससे व्रत समाप्त करें।

यह श्रीकृष्णाष्टमी के व्रत के प्रसङ्ग में श्रीकृष्ण पूजाविधि समाप्त हुई।

११.१९ श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतम्

अथ कथा।। युधिष्ठिर उवाच।। जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि विस्तरेण ममाच्युत।। कस्मिन्काले समुत्पन्नं किं पुण्यं को विधिः स्मृतः।।१।। श्रीकृष्ण उवाच।। मल्लयुद्धे परावृत्ते शमिते कुमुरान्धके।। स्वजनैर्बन्धुभिः स्त्रीभिः समैः स्निग्धैः समावृते।।२।। हते कंसासुरे दुष्टे मथुरायां युधिष्ठिर।। देवकी मां परिष्वज्य कृत्वोत्सङ्गे रुरोद ह।।३।। वसुदेवोऽपि तत्रैव वात्सल्यात्प्ररुरोद ह।। समालिङ्ग्याश्रुवदनः पुत्रपुत्रेत्युवाच ह।।४।। सगद्गदस्वरो दीनो बाष्पर्याकुलेक्षणः।। बलभद्र च मा चैव परिष्वज्य मुदा पुनः।।५।। अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।। उभाभ्यामद्य पुत्राभ्यां समुद्भूतः समागमः।।६।। एवं हर्षेण दाम्पत्यं हृष्टं पुष्टं तदा ह्यभूत्। प्रणिपत्य जनाः सर्वे बभूवस्ते प्रहर्षिताः।।७।। एवं महोत्सवं दृष्ट्वा मामूचुर्मधुसूदनम्।। जना ऊचुः।। प्रसादः क्रियतामस्य लोकस्यार्तस्य दुःखहन्।।८।। यस्मिन्दिने च प्रासूत देवकी त्वां जनार्दन।। तद्दिनं देहि वैकुण्ठ कुर्मस्तत्र महोत्सवम्।।९।। एवं स्तुतो जनोघेन वासुदेवो ममेक्षितः।। विलोक्य बलभद्रं च मां च हृष्टतनूरुहः।।१०।। उवाच स ममादेशाल्लोकाञ्जन्माष्टमीव्रतम्।। मथुरायां ततः पश्चात्प्रायं सम्यक् प्रकाशितम्।।११।। कुर्वन्तु ब्राह्मणाः सर्वे व्रतं जन्माष्टमी दिने।। क्षत्रिया वैश्यजातीयाः शूद्रा येऽन्त्येऽपि धर्मिणः।।१२।। युधिष्ठिरः उवाच।। कीदृशं तद्व्रतं देवदेव सर्वेरनुष्ठितम्।। जन्माष्टमीति संज्ञं च पवित्रं पापनाशनम्।।१३।। येन त्वं पुष्टिमायासि कात्स्न्र्येन प्रभवाव्यय।। एतन्मे तत्त्वतो ब्रूहि सविधानं सविस्तरम्।।१४।। श्रीकृष्ण उवाच।। मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां निशीथे कृष्णपक्षके।। शशांके वृषराशिस्थे ऋक्षे रोहिणीसंज्ञके।।१५।। योगेऽस्मिन्वसुदेवाद्धि देवकी मामजीजनत्।। भगवत्याश्च तत्रैव क्रियते सुमहोत्सवः।।१६।। योगेऽस्मिन्कथतेऽष्टम्यां सिंहराशिगते रवौ।। सप्तम्यां लघुभुक् कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम्।।१७।। उपवासस्य नियमं रात्रौ स्वप्याज्जितेन्द्रियः।। केवलेनोपवासेन तस्मिञ्जन्मदिने मम।।१८।। सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।। उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासोगुणैः

सह।।१९।। उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः।। ततोऽष्टम्यां तिलैः स्नात्वा नद्यादौ विमले जले।।२०।। सुदेशे शोभनं कुर्याद्देवक्याः सूतिकागृहम्।। सितपीतैस्तथा रक्तैः कर्बुरैरितरैरपि।।२१।। वासोभिः शोभितं कृत्वा समन्तात्क-लशैर्नवैः।। पुष्पैः फलैरनेकैश्च दीपालिभिरितस्ततः।।२२।। पुष्पमालाविचित्रं च चन्दनागुरुधूपितम्।। अति रम्यमनौपम्यं रक्षामणिविभूषितम्।।२३।। हरिवंशस्य चरितं गोकुलं च विलेखयेत्।। ततो वादित्रनिनदैर्वीणावेणुरवाकुलम्।।२४।। नृत्यगीतक्रमोपेतं मङ्गलैश्च समन्ततः।। वेष्टकारीं लिखेत लौह खड्गं च यत्नतः लिखेत्।।२५।। क्षरे विन्यस्य मुसलं रक्षितं रक्षापालकैः।। षष्ठ्या देव्याधिष्ठिदं च तद्गृहं चोत्सवैस्तया।।२६।। एवं विभवसारेण कृत्वा तत्सूतिकागृहम्।। तन्मध्ये प्रतिमा स्थाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता।।२७ काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृण्मयी तथा।। वार्क्षी मणिमयी चैव वर्णकैलिखिता तथा।।२८।। सर्वलक्षणसम्पूर्णा पर्यंके चाष्टशल्यके।। प्रतप्तकाञ्चनाभासां महाहा सुतपस्विनीम्।।२९।। प्रसूतां च प्रसुप्तां च स्थापयेन्मञ्चकोपरि।। मां तत्र बालकं सुप्तं पर्यंके स्तनपायिनम्।।३०।। श्रीवत्सवक्षसं शान्तं नीलोत्पलदलच्छविम्। यशोदां तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे सूतिकागृहे।।३१।। तद्वच्च कल्पयेत् पार्थ प्रसूतां वरकन्यकाम्।। तथैव मम पार्श्वस्थाः कृताञ्जलिपुटा नृप।।३२।। देवा ग्रहास्तथा नागा यक्षविद्याधरामराः।। प्रणताः पुष्पमालाप्रचारुहस्ताः सुरासुराः।।३३।। सञ्चरन्त इवाकाश प्रहारैरुदितोदितैः।। वसुदेवोऽपि तत्रैव खड्गचर्मधरः स्थितः।।३४।। कश्यपो वसुदेवोऽयमदितिश्चैव देवकी।। शेषो वै बलदेवोऽयं यशोदादितिरन्वभूत्।।३५।। नन्दः प्रजापतिर्दक्षो- गर्गश्चापि चतुर्मुखः।। गोप्यश्चाप्सरसश्चैव गोपश्चापि दिवौकसः।।३६।। एषोऽवतारो राजेन्द्र कंसोऽयं कालनेमिजः।। तत्र कंसनियुक्ताश्च मोहिता योगनिद्रया।।३७।। गोधेनुकुञ्जराश्चैव दानवाः शस्त्रपाणयः।। नृत्यतश्चाप्सरोभिस्ते गन्धर्वा गीततत्पराः।।३८।। लेखनीयश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे।। इत्यत्रमादि यत्किंचिद्विद्यते चरितं मम।।३९।। लेखयित्वा प्रयत्नेन पूजयेद्भक्तितत्परः।। रम्यमेवं बीजपूरैः पुष्पमालादि-शोभितम्।।४०।। कालदेशोद्भवैः पुष्पैः फलैश्चापि युधिष्ठिर।। पाद्यार्घ्यैः पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः सह।। मन्त्रेणानेन कौन्तेय देवकी पूजयेन्नरः।।४१।। गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादैर्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रवरवृत

करैः किंकरैः सेव्यमाना।। पर्यंके स्वास्तुते यामुदिततरमुखी पुत्रिणी सभ्यगास्ते सा देवी देवमाता जयतु च ससुता देवकी कान्तरूपा।।४२।। पादावभ्यञ्जयन्ती श्रीदेवक्याश्चरणान्तिके।। निषण्णा पंकजे पूज्या दिव्यगन्धानुलेपनैः।।४३।। पंकजैः पूजयेद्देवीं नमो देव्यै श्रिया इति।। देववत्से नमस्तेऽस्तु कृष्णोत्पादनतत्परा।।४४।। पापक्षयकरा देवी तुष्टिं यातु मयार्चिता।। प्रणवादिनमोऽन्तं च पृथङ्नामानुकीर्तनम्।।४५।। कुर्यात्पूजा विधिज्ञश्च सर्वपापानुत्तये।। दैवक्ये वसुदेवाय वासुदेवाय चैव हि।।४६।। बलदेवाय नन्दाय यशोदायै पृथक् पृथक्।। क्षीरादिस्नपनं कृत्वा चन्दनेनानुलेपयेत्।।४७।। विध्यन्तरमपीच्छन्ति केचिदत्रैव सूरयः।। चन्द्रोदये शशांकाय अर्घ्यं दत्त्वा हरि स्मरन्।।४८।। अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम्।। वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम्।।४९।। वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंह ब्रह्मणः प्रियम्।। समस्तस्यापि जगतः सृष्टिस्थित्यन्तकारकम्।।५०।। अनादिनिधनं विष्णुं त्रैलोक्येशं त्रिविक्रमम्।। नारायणं चतुर्बाहु शंखचक्र- गदाधरम्।।५१।। पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम्।। श्रीवात्सांकं जगत्सेतुं श्रीपतिं श्रीधरं हरिम्।।५२।। 'योगेश्वराय देवाय योगिनां पतये नमः।। योगोद्भवाय नित्याय गोविन्दाय नमो–नमः।।५३।। यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च।। यज्ञानां पतये नाथ गोविन्दाय नमो नमः।।५४।। विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च।। विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमो नमः।।५५।। जगन्नाथ नमस्तुभ्यं संसारभयनाशन।। जगदीशाय देवाय भूतानां पतये नमः।।५६।। धर्मेश्वराय धर्माय संभवाय जगत्पते।। धर्मज्ञाय च देवाय गोविन्दाय नमो नमः।।५७।। एताभ्यां चैव मन्त्राभ्यां नैवेद्यं शयनं तथा। चन्द्रायार्घ्यं च मन्त्रेण अनेनैवाथ दापयेत्।।५८।। क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भभव।। गृहाणार्घ्यं शशांकेश रोहिण्या सहितो मम।।५९।। ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः।। नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं नः प्रति– गृह्यताम्।।६०।। स्थण्डिले स्थापयेद्देवं शशांकं रोहिणीयुतम्।। दैवक्या वसुदेवं च नन्दं चैव यशोदया।।६१।। बलदेवं मया सार्धं भक्त्या परमया नृप।। संपूज्य विधिवद्देहि किं नाप्नोत्यति दुर्लभम्।।६२।। एकादशीनां विंशत्यः कोटयो याः प्रकीर्तिताः।। ताभिः कृष्णाष्टमी तुल्या ततोऽनन्तचतुर्दशी।।६३।। अर्धरात्रे वसोर्धारां पातयेद्द्रव्यसर्पिषा।। ततो वर्धापयेन्नालं षष्ठीनामादिकं

मम॥६४॥ कर्तव्यं तत्क्षणाद्रात्रौ प्रभाते नवमीदिने। यथा मम तथा कार्यो भगवत्या महोत्सवः॥६५॥ ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्॥ हिरण्यं मेदिनीं गावो वांसासि कुसुमानि च॥६६॥ यद्यदिष्टतमं ततत्कृष्णो मे प्रीयतामिति॥ यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्॥६७॥ भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः॥ नमस्ते वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च॥६८॥ शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा मां विसर्जयेत्॥ ततो बन्धुजनौघं च दीनानाथांश्च भोजयेत्॥६९॥ भोजयित्वा सुशान्तांस्तान् स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥ एवं यः कुरुते देव्या देवक्याः सुमहोत्सवम्॥७०॥ प्रतिवर्ष विधानेन मद्भक्तो धर्मनन्दन॥ नरो वा यदि वा नारी यथोक्तं लभते फलम्॥७१॥ पुत्रसन्तानमारोग्यं सौभाग्यमतुलं लभेत्॥ इह धर्मरतिर्भूत्वा मृतो वैकुण्ठमाप्नुयात्॥७२॥ तत्र देवविमानेन वर्षलक्षं युधिष्ठिर॥ भोगान्नानाविधान् भुक्त्वा पुण्यशेषादिहागतः॥७३॥ सर्वकामसमृद्धे च सर्वाशुभविवर्जिते॥ कुले नृपतिशीलानां जायते हृच्छयोपमः॥७४॥ यस्मिन् सदैव देशे तु लिखितं तु पटार्पितम्॥ मम जन्मदिनं भक्त्या सर्वालंकार-भूषितम्॥७५॥ पूज्यते पाण्डवश्रेष्ठ जनैरुत्सवसंयुतैः॥ परचक्रभयं तत्र न कदापि भवेत्पुनः॥७६॥ पर्जन्यः कामवर्षी स्यादीतिभ्यो न भयं भवेत्॥ गृहे वा पूज्यते यत्र देवक्याश्चरितं मम॥७७॥ तत्र सर्वं समृद्धं स्यान्नोपसर्गादिकं भवेत्॥ पशुभ्यो नकुलाद्यालात्पापरोगाच्च पातकात्॥७८॥ राजतश्चोरतो वापि न कदाचिद्भयं भवेत्॥ संसर्गेणापि यो भक्त्या व्रतं पश्येदनाकुलम्॥ सोऽपि पापविनिर्मुक्तः प्रयाति हरिमन्दिरम्॥७९॥ जन्माष्टमीं जनमनोनयनाभि-रामां पापापहां सपदि नन्दितनन्दगोपाम्॥ यो देवकीं सुतयुतां च भजेद्धि-भक्त्या पुत्रानवाप्य समुपैति पदं स विष्णोः॥८०॥

इति भविष्योत्तरे जन्माष्टमीव्रतकथा।

११.२० श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत (हिन्दी टीका)

कथा – राजा युधिष्ठिर बोले कि, हे अच्युत! जन्माष्टमी व्रत की कथा आप विस्तृत रूप से कहिये। इस व्रत का प्रचार किस समय हुआ है। इसका क्या फल है इसके करने की विधि क्या है?॥१॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे युधिष्ठिर! जब मल्लयुद्ध का भय निवृत्त हो गया। कुकुर एवम् अन्धक (यादव विशेष) आनन्दित हो गये अपने बान्धव, स्त्री, बराबर वाले और सुहृज्जन परस्पर में मिल गये॥२॥ मथुरा में दुष्टात्मा कंस दैत्य मार दिया गया, ऐसे समय अत्यन्त आह्लादित हुई देवकी देवी मुझे छाती से लगा, गोद में बैठा मेरे शिर पर प्रेम से अश्रुसेवन करती हुई रोने लगी॥३॥ यहाँ पर वसुदेव जी भी वत्सला से रोदन करने लगे, अश्रुपूर्ण मुख हो "हे पुत्र पुत्र" इस प्रकार कहकर अपनी छाती से लगा लिया॥४॥ गद्‌गद स्वर एवं प्रेमाश्रुओं से नेत्र डबडबा गये हृदय भर आया, बलभद्र जी और मेरा प्रेम से आलिंगन फिर करके आनन्दपूर्वक बोली कि॥५॥ आज जन्म सफल हुआ, आज मेरा जीवन सुधरा है। क्योंकि आज तुम दोनों पुत्रों से मिली हूँ॥६॥ हे राजन्! इस प्रकार वे दोनों स्त्री पति देवकी जी एवं वसुदेव जी उस समय में हृष्ट हो गये। अत्यन्त आनन्दित होते हुए सभी मथुरा वासी लोग उस महोत्सव को देख मुझको प्रणाम कर पूछने लगे कि, हे सभी दुखित लोगों के दुःखों को नष्ट करने वाले कृष्ण! आप अनुग्रह कीजिये॥७॥८॥ हे जनार्दन! जिस दिन देवकी जी ने तुम्हें जन्मा था वह दिन फिर आप कीजिये, जिससे उस दिन आपके जन्मोत्सव मनाने का हमें अवसर मिले॥९॥ जब इस प्रकार बहुत जनों ने प्रार्थना की और वसुदेव ने भी मेरी तरफ दृष्टि डाली यानी उस दिन को देखने की अभिलाषा प्रगट की तथा मुझे और बलराम को देखकर उनका शरीर रोमांचित हो गया॥१०॥ तब मेरे आदेश से वसुदेव ने लोगों को जन्माष्टमी का व्रत बता दिया, हे पार्थ! मथुरा में इस प्रकार होने पर सर्वत्र भलीभाँति प्रकाशित हो

गया॥११॥ मैंने कहा कि, हे ब्राह्मणों! मेरे जन्माष्टमी के दिन तुम सभी क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं गर्भवती स्त्रियाँ भी व्रत को करो॥१२॥ राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि, हे देव देव! वह जन्माष्टमी नामक पवित्र पापों को नष्ट करने वाला व्रत किस प्रकार किया जाता है, जिसे सब मथुरावासी जन मिलकर करते हैं॥१३॥ हे प्रभवाव्यय! जिस व्रत के करने से आपको प्रसन्नता होती है इससे आप इस जन्माष्टमी के व्रत की विधि विस्तृत रूप से कहिये॥१४॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष में अष्टमी को अर्द्धरात्रि के समय रोहिणीनक्षत्र और वृष का चन्द्रमा था॥१५॥ ऐसे योग के रहते वसुदेव जी से देवकी ने मुझे उत्पन्न किया था। अतः सब लोग उसी समय मेरे जन्मोत्सव को मनाते हैं। भगवती (देवकी जी या यशोदाजी के यहाँ प्रगट हुई कात्यायनी देवी) का महोत्सव भी वे इसी दिन मनाते हैं॥१६॥ यह योग जब सिंह राशि पर सूर्यनारायण हो, तब प्राप्त होता है। इसलिये व्रत करने वाला उस अष्टमी से पूर्व सप्तमी के दिन दन्तधावनादि नित्यकर्म करके भोजन के समय एक बार भी बहुत हल्का भोजन करे, जिससे प्रमाद आलस्य, मद आदि न हों॥१७॥ दूसरे दिन (जन्माष्टमी के दिन) व्रत करने का नियम करे। रात्रि में व्रत के पूर्व दिन जितेन्द्रिय (ब्रह्मचर्य्यनिष्ठ) हो, शयन करे। स्त्रीसङ्ग से पराङ्मुख हो भूतल पर पवित्र वेश में ही शयन करे, न कि, पर्यंक पर और न स्त्री के साथ मेरे जन्माष्टमी के दिन (दूसरे दिन) केवल उपवास करे इसे करने से॥१८॥ मनुष्य सप्तजन्मों में किये पापों से अवश्य निर्मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं है "पापों से निवृत्त हुये पुरुष के, व्रताधिकारियों के जो गुण बताये हैं उन गुणों के साथ रहने को उपवास कहते हैं, उसमें कोई भी भोग नहीं होता" सप्तमी की रात्रि बीतने पर, अष्टमी के दिन प्रातःकाल ही उठकर मलमूत्र त्यागादि से निवृत्त हो नदी तालाब आदि किसी एक जलाशय के पवित्र जल में तिल डाल कर स्नान करे॥१९॥२०॥ अपने घर सुन्दर पवित्र वेश में एक मनोरम देवकी जी का सूतिका गृह बनावें। उस स्थान को चारों ओर सफेद, पीत, लाल, हरे और विविध रङ्गवाले॥२१॥ नवीन वस्त्रों से सजावें तथा नूतन अव्रण जलपूर्ण घट जहाँ तहाँ सब ओर (अर्थात्

दरवाजे तथा कोणों में) रख दे। अनेक रंग के पुष्प, अनेक तरह के फल सब जगह रखे। दीपकों की श्रेणी प्रज्वलित करके उसे चारों ओर सजा कर ऊपर की ओर रखे।।२२।। विचित्र २ पुष्पों की मालाओं को इतस्तत: बाँधे, चन्दन से अर्चित करे, अगर की धूप से धूपित करे।। सर्षप और रायी, सुपारी एवं रक्तसूत्र इनकी पोटलियाँ (रक्षामणि) बाँधकर उस सूतिकागृह को अत्यन्त अद्भुत सुन्दर बनावे।।२३।। हरिवंश पुराण में जो मेरे चरित वर्णन किये हैं, जो मैंने गोकुल में गोवर्धन धारण नागमथनादि कर्म्म किये हैं, इन सबके चित्र लिखें। फिर वीणा, वेणु, मृदंग, गोमुख एवं शंखादिकों के शब्द से उसको गुंजित करे।।२४।। नाच गान करे और करावे। स्वयं माङ्गलिक गान करे। उस स्थान के चारों ओर वेष्टकारी अर्थात् भूतबाधादि भय को दूर करने वाली औषधि एवम् लोहे की तलवार और काले रंग का बकरा यातुधानादि के भय की निवृत्ति के लिये बाँधे।।२५।। द्वार पर मूसल रक्खे, द्वारपालों को द्वारों पर समाहित करके खड़ा करे।।२६।। उस सूतिका गृह में षष्ठी देवी का स्थापन करे, नानाविध उत्सव करें। हे राजन्! इस प्रकार अपनी सम्पत्ति के अनुसार उस सूतिकागृह को सजावें, उसके मध्य में मेरी प्रतिमा स्थापित करे। यह प्रतिमा आठ तरह की होती है।।२७।।१ सुवर्णमयी, २. राजतमयी, ३. ताम्रमयी, ४. पित्तलमयी, ५. मृण्मयी, ६. काष्ठमयी, ७. रत्नमयी और आठवीं रंगों से चित्रित की हुई।।२८।। यह प्रतिमा ऐसी हो, जिसमें मेरे सभी लक्षण दें। एक पर्यंक उस सूतिकागृह में सजावें, उसके आठ भागों में भूतबाधा की निवृत्ति के लिये आठ कीले लगावे उस पर शय्या बिछावे। उस पर सुन्दर तपाये हुए सुवर्ण के समान दिव्यकान्ति शालिनी, महाभागा, पतिव्रता।।२९।। देवकी जी की प्रतिमा स्थापित करे। यह प्रतिमा ऐसी अवस्था वाली होनी चाहिये, मानों पुत्र उत्पन्न कर शयन कर रही है। कृष्ण उसी पर्य्यंक पर देवकी जी के मानों स्तनपान कर रहे हैं ऐसी अत्यन्त बालक अवस्था की मेरी प्रतिमा को शयनावस्था के रूप में रखे।।३०।। श्रीवत्सचिह्न से चिह्नित वक्ष:स्थल वाली, शान्ताकृति, नीलकमल के पत्र के समान कान्तिशालिनी प्रतिमा होनी चाहिये। (यद्यपि सुवर्णादि धातुओं से कल्पित प्रतिमायें श्यामच्छवि की हो नहीं सकती, तथापि

कस्तूरी एवं हरिचन्दन से वैसी वही बना ले यानी कस्तूरी या और किसी सुन्दर या सुगन्धित पदार्थ से उसे ऐसी आच्छादित करे जिससे श्याम ही प्रतीत हो। श्री वत्सचिह्न तो सुवर्णाकार रोगों की दक्षिण की ओर घुमेरी का है, या भक्तजन उस प्रतिमा में वैसे ही भावना करे) एक ओर उसी सूतिकागृह में यशोदा जी की सुवर्णादिकों की प्रतिमा या रङ्गकल्पितमूर्ति सुशोभित करें।।३१।। जैसे देवकी जी के समीप में स्तनपान करती हुई भगवान् की सुप्तावस्था वाली प्रतिमा सजाई थी, वैसे ही यशोदा जी के पास में सुन्दर कन्या मानों अभी जन्मी है ऐसी स्थित करे। मेरे पार्षदों के चित्र या प्रतिमाएँ खड़ी करें, इनका ऐसा स्वरूप होना चाहिये, मानों ये अञ्जलि बाँध के स्तवन करते हैं।।३२।। ऐसे ही नवसूर्यादिग्रह, शेष, वासुकिप्रभृति नाग, कुबेरादि यक्ष, चित्रकेतु प्रभृति विद्याधर, इन्द्रादि देवता प्रमत्त होकर पुष्पमाला हाथों में लेकर गले में पहिराने के लिये खड़े हुए हैं ऐसे स्वरूप में स्थापित या चित्रित करें। ऐसे ही और सभी देवता एवं दानवों के।।३३।। चित्रादि हों कि, मानों आकाश में वे प्रहार, रोदन एवं चिल्लाहट करते हैं। खड्ग एवं चर्म्म हाथ में लिये हुए वसुदेव जी का चित्र भी वहाँ पर सजावे।।३४।। वसुदेवजी कश्यप मुनि हैं, देवकी जी साक्षात् अदिति है, बलदेव जी शेष भगवान् हैं और यशोदादिति है।।३५।। नन्दजी दक्षप्रजापति, चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा, गर्गाचार्य, गोपिका अप्सरायें और गोप दूसरे दूसरे देवता हैं। व्रती ऐसी भावना रखे।।३६।। हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! कंस कालनेमि दैत्य का अवतार है। इससे मुझे मारने की इच्छा से प्रसूति के घर का बंदोबस्त, अपने बीर नौकरों से कराया था, पर वे उस समय यशोदा जी से प्रगट हुई योग माया रूपा कन्या के प्रभाव से ऐसे निद्रित हुए कि, जिससे किसी को कुछ भी ज्ञान ही न रहा।।३७।। वृषभ, गऊ, हस्ती एवं दैत्यों को शस्त्रपाणि तथा अप्सरा और गन्धर्वों को नृत्य गायन परायण सा लिखे।।३८।। एक यमुना हृद का चित्र लिखे, उसमें कालिय नाग का निवास लिखे। ऐसे ही जो जो मैंने चरित किये हैं।।३९।। उनके चित्र भी जहाँ तहाँ लिखने चाहिये। भक्तितत्पर हो पूजन करना चाहिये। सूतिका गृह को बीजपुर एवं पुष्पमालादिकों के वितान से शोभायमान करे।।४०।। हे

युधिष्ठिर! ऋतु और देश के अनुकूल उत्पन्न हुए पुष्प, फल एवम् गन्ध और अक्षत मिले हुए पाद्य अर्घों से इस मन्त्र से देवकी जी का पूजन करे।।४१।। "गायद्भिः" इस मूलोक्त पहले कहे मन्त्र से देवकी जी की प्रार्थना करे।।४२।। वहाँ पर ही लक्ष्मी जी का चित्र ऐसा स्थापित करे कि, देवकी जी के चरणों के पास अभ्यञ्जन करती हुई कमल पर विराजमान है। सुन्दर चन्दन से अर्चित कर उन लक्ष्मी जी का भी पूजन करना चाहिये।।४३।। कमल चढ़ावे और 'ओं नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः' देवी महादेवी और शिव के लिये निरंतर नमस्कार है, इस मन्त्र को पढ़ता रहे। इसी मन्त्र से और भी उपचार करे। फिर प्रार्थना करे 'देववत्से' इस मन्त्र से देवकी जी को प्रणाम करे कि, सब देवता जिसके बालक है ऐसी है देवकि देवि! आपके लिये नमस्कार है। आप ही श्रीकृष्णचन्द्र को उत्पन्न करने वाली हो, आपका पूजन किया है, पापों को नष्ट करने वाली आप प्रसन्न होकर मेरे सब पापों को क्षीण करें। प्रणव आदि में और नमः अन्त में हो ऐसे देवकी आदि का पूजन उनके नाम मन्त्रों से होना चाहिये।।४४।।४५।। इससे सब पाप नष्ट होते हैं यह पूजा, विधि करनी चाहिये। देवकी के लिये, वसुदेव के लिये वासुदेव के लिये।।४६।। बलदेव, नंद, यशोदा इन सबको इनके नाम मन्त्रों से क्षीरादि का स्नान कराकर चन्दन का लेप करे।।४७।। (पूजाविधिवेत्ता उच्चारण करते रहे।) ये नाम मन्त्र ही सब पापों को नष्ट करने वाले हैं। अतः इनकी नाममन्त्रों से सभी को अलग-अलग पूजा करके प्रार्थना करे कि, मैं अपने पापों के विध्वंस के लिये पाद्य चढ़ाता हूँ। अर्घ्य दान करता हूँ, श्रीकृष्ण आप के नाम मन्त्रों में नामों को किस प्रकार चतुर्थ्यन्त रूप से पढ़ें? इस आशंका में "देवक्यै" इत्यादि एक श्लोक से उन नाम मन्त्रों का क्रम दिखाया है। यहाँ कुछ विद्वान् भगज्जन पूजन की दूसरी विधि भी चाहते हैं कि, चन्द्रमा के निर्मल प्रकाश में रोहिणी सहित चन्द्रमा के लिये अर्घ देकर निम्नलिखित चार श्लोकों से भगवान् का स्मरण करे इनका अर्थ पूजन विधान में कर चुके हैं।। ४८-५२।। 'योगेश्वराय' इससे स्नान कराना चाहिये कि, योग से प्रत्यक्ष होने वाले नित्य एवम् योगियों के अधिपति योगेश्वर गोविन्द कृष्ण के लिये बारंबार

नमस्कार है।।५३।। 'यज्ञेश्वराय' इससे धूप चढ़ावे कि, (यज्ञ से प्रगट होने वाले एवम् यज्ञों को प्रगट करने वाले) यज्ञपति यज्ञेश्वर गोविन्द देव के लिये बारंबार नमस्कार है।।५४।। 'विश्वेश्वराय' इससे दीपक दिखावे कि विश्व को उत्पन्न करने वाले विश्वरूप विश्वपति विश्वेश्वर तुम गोविन्द के लिये बारंबार नमस्कार है।।५५।। 'जगन्नाथ' इससे उन पदार्थों को भोग लगावे जो कि, प्रसूति के समय स्त्रियाँ खाया करती हैं कि, हे संसार के भय को नष्ट करने वाले हे जगन्नाथ! तुम्हारे लिये नमस्कार है आप जगदीश एवं भूतों के स्वामी हैं।।५६।। 'धर्मेश्वराय' इससे शयन करावे कि, धर्म के जानने वाले, धर्म के ईश्वर, धर्म के उत्पन्न करने वाले, धर्मरूप देव गोविन्द के लिये बारंबार नमस्कार है। 'जगन्नाथ' इससे नैवेद्य एवं 'धर्मेश्वराय' इससे शयन कराना चाहिये। पीछे 'क्षीरोदार्णव' इससे एक अर्घ्य दे तथा दूसरा 'ज्योत्स्नापते' इससे दे। पहला – हे अत्रिगोत्री क्षीरसमुद्र से उत्पन्न होने वाले, हे शश के चिह्न वाले नक्षत्र और रात्रि के ईश, रोहिणीसहित आप मेरे अर्घ्य को ग्रहण करिये। दूसरा – हे चाँदनी रात के स्वामी! तेरे लिये नमस्कार है, हे नक्षत्रों के अधि पति! तेरे लिये नमस्कार है, हे रोहिणी के प्यारे! तेरे लिये नमस्कार है, हमारे अर्घ्य को ग्रहण करिये।। ५७-६०।। स्थण्डिलपर रोहिणी समेत चन्द्रमा की स्थापना करें। देवकी सहित वसुदेव जी की तथा यशोदा सहित नन्दलाल की तथा बलदेव सहित मेरी। परमभक्ति के साथ पूजा करे। इससे ऐसा कौन सा पदार्थ है जो नहीं मिल सकता। ६१-६२।। अब जन्माष्टमी के उपवास एवं महोत्सव मनाने का माहात्म्य स्वयं श्रीमुख से कहते हैं कि, बीस करोड़ बार किये हुए एकादशी व्रतों के समान अकेला कृष्ण जन्माष्टमी व्रत है, इसके समान ही अनन्तचतुर्दशी का व्रत है।।६३।। निशीथ काल में घृत से वसोर्धारा का सेचन करे। सात वसोर्धारा लिखकर उन पर घृत आदिकों के पूजनपूर्वक षष्ठीपूजनादि, नालच्छेदन, नामकरणादि सब कर्म्म मेरा।।६४।। कर्मकाण्डानुसार रात्रि में करे दूसरे दिन प्रभात काल में उठकर जैसा महोत्सव मेरे जन्म के निमित्त किया था उसी प्रकार भगवती योग माया के जन्मोत्सव के निमित्त भी करे। सुवर्ण, पृथिवी, गऊ, वस्त्र और पुष्प और।।६६।। जो जो इस लोक में

अपने को प्रिय मालूम हो वे सब दक्षिणा के स्वरूप, में दे। या ब्राह्मणों को शक्त्यनुसार दक्षिणा देकर व्रती पुरुष को इस लोक में जो सुवर्ण, पृथिवी, गऊ, वस्त्र, पुष्प आदि रूचिकर हों वे सब पदार्थ मेरे को अर्पण करे। दक्षिणादान या मेरे समर्पण के समय किसी पदार्थ के बदले में प्रार्थना न करे, किन्तु 'कृष्णो मे प्रीयताम्' इससे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो इतना ही कहे। जल को जमीन पर डाल मेरा विसर्जन करता हुआ 'यं देवे' यहाँ से शिवं चास्तु' यहाँ तक मूलोक्त वाक्य को पढ़े। इनका अर्थ पूर्व में लिख आये हैं। इसके बाद सब बान्धवों एवं दीन अनाथ जनों को भोजन करावे।। ६७-६९।। इन सभी शान्त सज्जनों को भोजन कराकर आप भी भोजन करे, उस समय मौनी रहे। जो पुरुष देवकी देवी का महोत्सव प्रतिवर्ष विधिवत् करता है। हे धर्म्मनन्दन! वह मेरा भक्त है। इस महोत्सव को मानने वाला पुरुष हो या स्त्री यह यथोक्त फल को प्राप्त करता है।। ७०-७१।। इस लोक में ऐसे पुरुष की धर्म में निष्ठा होती है और पुत्रों के लिये आरोग्य और स्त्री के लिए अतुल सौभाग्य का लाभ होता है। मरने पर वैकुण्ठधाम प्राप्त होता है।।७२।। हे युधिष्ठिर! वह वैकुण्ठ में जाकर विमान में बैठ एक लक्ष वर्ष पर्य्यन्त विहार करता हुआ नाना प्रकार के दिव्य भोग भोगता है। पुण्यफल के भोगने पर भी जब वैकुण्ठ से यहाँ वापिस आता है।।७३।। तब भी वह पुण्यात्मा महाराजाओं के समान समृद्धिमानों के कुल में जन्म लेता है, जिसमें कि, सब मनोऽभिलषित भोग्यपदार्थ हैं; अशुभ पापाचरण या (प्रतिकूल) कार्य कोई भी नहीं है; आप कामदेव के सदृश अत्यन्त सुन्दर दिव्य शरीरवान् होता है।।७४।। जिस देश में वस्त्र पर चित्रित मेरे जन्मोत्सव के दृश्य को सदैव प्रतिवर्ष सब आभूषणों से शोभायमान करके।।७५।। पूजन किया जाता है। हे पाण्डवश्रेष्ठ! जिस देश में मेरे जन्माष्टमी के दिन अत्यन्त आह्लादित महोत्सव मनाते हैं, उस देश में दूसरे शत्रु राजा के आक्रमण करने का उपद्रव या उसकी शासन का कभी भी भय नहीं होता।।७६।। मेघगण उन देशवासियों के इच्छानुकूल ही समय-समय पर वृष्टि किया करते हैं। और जिस घर में मेरा पूजन तथा देवकी के यहाँ मेरा अवतार का महोत्सव मनाया जाता है।।७७।।

उस घर में सब प्रकार की सम्पत्तियाँ रहती है। महामारी आदि किसी उपद्रव का भय नहीं होता। न किसी व्याघ्रसिंहादि पशु का, न बान्धवों का, न सर्पों का; न कुष्ठादि पाप रोगों का, न पातकों।।७८।। न किसी राजदण्ड का और न चोर का भय न कभी उपद्रव होता है और जो किसी के संसर्ग से न कि अपनी स्वतन्त्रता से इस सुन्दर महोत्सव को प्रेम से देखता है वह मनुष्य भी पापों के भोगों से छूटकर हरिमंदिर को प्राप्त होता है।।७९।। सब जनों के मन एवं नेत्रों को आह्लादित करने वाली, पापों की संहारिणी, नन्द एवं गोप-गोपियों के आनन्द से सुन्दर इस जन्माष्टमी का महोत्सव तथा पुत्रसहित देवकी जी का जो मनुष्य भक्ति से पूजन करता है, वह इस लोक में पुत्रों के सुख को प्राप्त करता है, अन्त में विष्णु पद में प्राप्त होता है।।८०।। कहीं पर इस श्लोक का तृतीय चरण–"यो देवकीव्रतमिदं प्रकरोति भक्त्या" इस प्रकार भी लिखा है। तदनुसार इसका यह अर्थ है कि, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस देवकी जी के महोत्सव पर जन्माष्टमी के व्रत को करता है वह सम्पूर्ण फल प्राप्त करता है।

यह सर्वतंत्रस्वतंत्र पं. माधवाचार्य विरचित भविष्योत्तर पुराण की कही हुई जन्माष्टमी व्रत कथा की भाषा टीका समाप्त हुई।।

११.२१ एकादशी व्रतम् – कथा

तत्रोपवास एकादशीनिर्णयः। उपवासश्च निषेधपरिपालनात्मको व्रतरूपश्च।। सा च द्विविधा। शुद्धा दशमीविद्धा च।। वेधोऽपिः द्विविधः।। अरुणोदयदशमीसम्बन्धात् सूर्योदये च।। तत्रादौ वैष्णवैस्त्याज्यः।। तथा च भविष्ये—अरुणोदयकाले तु दशमी यदि दृश्यते।। सा विद्धेकादशी तत्र पापमूलमुपोषणाम्।। तथादशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः।। नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकदशमीव्रतम्।। अरुणोदयस्वरूपं तु हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे दर्शितम्—निशिप्रान्ते तु यामार्द्धे वेदवादित्रनिःस्वने।। सारस्वतेऽनध्ययने अरुणोदय उच्यते।। यामार्द्धम्। मुहूर्तद्वयलक्षकम्।। अत एव सौरधर्मे—आदित्योदयवेलायां या मुहूर्त्तद्वयान्विता।। सैकादशी तु संपूर्णा विद्धाऽन्या परिकीर्तिता।। यच्च माधवीये स्कान्दे – "उदयात्प्राक्चतस्त्रोस्तु घटिका अरुणोदयः इति। तदपि द्वात्रिंशद्घटिकारात्रिमानपक्षे मुहूर्त्तद्वयस्य तावत्परिमाणत्वा—दुक्तमिति द्वैतनिर्णये।। **येऽपि ब्रह्मवैवर्त्ते**—चतस्त्रो घटिकाः प्रातरुणोदयनिश्चयः।। चतुष्टय विभागोऽत्र वेधादीनां किलोदितः।। अरुणोदय- वेधः स्यात् सार्द्धं तु घटिकात्रयम्।। अतिवेधो द्विघटिकः प्रभासन्दर्शनाद्रवेः।। महावेधोऽपि तत्रैव दृश्यतेऽर्को न दृश्यते।। तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदये सति।। उषः कालः सप्तपञ्चारुणोदयः।। अष्टपञ्च भवेत् प्रातः शेषः सूर्योदयः सति।। उषः कालः सप्तपञ्चारुणोदयः।। अष्टपञ्च भवेत् प्रातः शेषः सूर्योदयः स्मृतः।। **वैष्णवलक्षणं तु स्कान्दे**—परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते।। नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षा तु वैष्णवी।। **भविष्ये**— यथा शुक्ला तथा कृष्णा तथा कृष्णा तथोत्तरा।। तुल्ये ते मन्यते यस्तु स हि वैष्णव उच्यते।। स्मार्तानां वेधः। अतिवेधादयः सर्वे ये वेधास्तिथिषु स्मृताः।। सर्वेप्यवेधा विज्ञेया वेधः सूर्योदयः स्मृतः।। इति मदनरत्नधृतस्मृतयुक्तः सूर्योदयवेधः स्मार्तविषय एव।। एकादशीभेदाः। तत्र शुद्धा विद्धा एकादशी चतुर्द्धा।। एकादशीमात्राधिका।। द्वादशीमात्राधिका।। उभयाधिका।। अनुभयाधिका च।। परेद्युर्व्रतम् – तत्र शुद्धायामेकादश्याधिक्ये

परेद्युरुपवासमाह नारद–सम्पूर्णेकादशी यत्र द्वादश्यां वृद्धिगामिनी।। द्वादश्यां लङ्घनं कार्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्।। उपोषणम् वृद्धवसिष्ठः। एकादशी यदा लुप्ता परतो द्वादशी भवेत्।। उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेच्च पराङ्गतिम्।। **भृगुः** – संपूर्णेकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा।। तदोपोष्या द्वितीया तु परतोद्वादशी यदि।। स्कान्दे–प्रथमेऽहनि संपूर्णाव्याप्याहोरात्रसंयुता।। द्वादश्यां तु यदा तात दृश्यते पुनरेव सा।। पूर्वा कार्या गृहस्थैश्च यतिभिश्चोत्तरा विभो।। **मार्कण्डेयः**– सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव च।। पूर्वामुपवसेत् कामी निष्कामस्तु परां वसेत्।। **हेमाद्रौ**–विद्धाप्यविद्धा परतो द्वादशी न चेत्।। अविद्धापि च विद्धा स्यात्परतो द्वादशी यदि।। प्रत्त एकादशीविवृद्धा चेच्छुक्ले कृष्णे विशेषतः।। उत्तरां तु यतिः कुर्यात् पूर्वां कुर्याच्च सद्गृही।। **सनत्कुमार** :– न करोति हि यो मूढ एकादश्यामुपोषणम्।। स नरः नरकं याति रौरवे स्यात् तमावृते।। यदीच्छेद्विपुलान् भोगान् मुक्तिं चात्यन्तदुर्लभाम्। उपोष्यैकादशी नित्यं पक्षयोरुभयोरपि। **माधवेऽप्युक्तम्**–एकादशी द्वादशी चेद् भयं वर्द्धते यदा। तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्तग्राह्यं परं दिनम्।। त्रयोदश्यां न लभ्येत द्वादशी यदि किञ्चन।। उपोष्यैकादशी तत्र दशमीमिश्रिता यदि।। इति स्कान्दात्।। **हेमाद्रिमते एकादशीभेदाः**–शुद्धा विद्धा द्वयी नन्दा त्रिधा न्यूनसमाधिकैः।। षट्प्रकाराः पुनस्त्रेधाद्वादश्यूनसमाधिकैः।। इत्यष्टादशैकादशीभेदाः।। विशेषः–।। पाद्मे–सम्पूर्णेकादशी त्याज्या परतो द्वादशी यदि।। उपोष्या द्वादशी शुद्धा द्वादश्यामेव पारणम्।। पारणाहे न लभ्येत द्वादशी कलयापि चेत्।। तदानीं द्वादशी विद्धा उपोष्यैकादशी तिथिः।। बहुवाक्यविरोधेन संदेहो जायते यदा।। द्वादशी तु सदा ग्राह्या त्रयोदश्यां तु पारणम्।। इति मार्कण्डेयः।। **कात्यायनः**– अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिन्यूनवत्सरः।। एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि।। **भविष्ये**–एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।। ब्रह्मचारी च नारी च शुक्लामेव सदा गृही।। सधवायास्तु भर्त्राज्ञयाधिकारः।। **तथा च विष्णुः** – पत्यौजीवति या नारी उपोष्यव्रतमाचरेत्।। आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत्।। पाद्मे– शयनीबोधिनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत्।। सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन।। अत्र नान्या कृष्णेति न निषेधः।। संक्रान्त्यामुपवासं च कृष्णैकादशिवासरे।। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात्

पुत्रवान्गृही।। **इतिनारदवाक्यात्।।** आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।। पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही।। इति वचनान्तरानुरोधाच्च कृष्णैकादश्यामुपवासः प्राप्यभावात्।। **व्रताकरणे प्रायश्चित्तमाह माधवीये कात्यायनः**–अर्के पर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमी दिवा।। एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।। **अथ दशम्यांविधिः**।। तत्र दशम्यां विधिः। **कौर्मे**–कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान् कोरदूषकान्।। शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम्।। तथा शाकं माषं मसूरांश्च पुनर्भोजनमैथुने।। द्यूतमत्यम्बूपानं च दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत्।। **मदनरत्ने नारदीये**–अक्षार–लवणाः सर्वे हविष्यान्विनिवेषितः।। अवनीतत्पश्यललनाः प्रियासङ्गविव–र्जिताः।। व्रतघ्नान्याह **हेमाद्रौ देवल** :– असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूल–चर्वणात्।। उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्।। **अशक्तौ तु मदनरत्ने देवलः**– अत्यये चाम्बुपानेन नोपवासः प्रणशति।। अत्यये–कष्टे व्रतेर्वर्ज्यम्। विष्णु रहस्ये–गात्राभ्यङ्गं शिरोऽभ्यङ्गं ताम्बूलं चानुलेपनम्।। व्रतस्थो वर्जयेत् सर्वं यच्चान्यच्च निराकृतम्।। एषु प्रायश्चित्तमुक्तम् ऋग्विधानेस्तेनहिंसकयोः सख्यं कृत्वा स्तैन्यं च हिंसनम्।। प्रायश्चितं व्रती कुर्याज्जपेन्नाम शतत्रयम्।। मिथ्यापवादे दिवास्वापे बहुशोऽम्बुनिषेवणे।। अष्टाक्षरं जपेन्मंत्रं शतमष्टोत्तरं शुचिः।। ॐ नमो नारायणायेत्यष्टाक्षरः।। दन्तधावननिषेधः।। **हेमाद्रौ वसिष्ठः** उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्याद्दन्तधावनम्।। करणे हानिः।। दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम्।। विशेषविधिः।। **एकादश्यां श्राद्धे प्राप्ते माधवीये कात्यायनः** – उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।। उपवासं तदा कुर्यादाध्राय पितृसेवितम्।। मातापित्रोः क्षये प्राप्ते भवेदेकादशी यदि।। अभ्यर्च्य पितृदेवांश्च आजिघ्रेत पितृसेवितम्।। **उपवासग्रहणविधिः।।** ब्रह्मवैवर्त्तेप्राप्ते हरिदिने सम्यक् विधाय नियमं निशि। दशम्यामुपवासं च प्रकुर्याद्वैष्णवं व्रतम्।। **तत्र एकादश्यां संकल्पः** – गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः।। उपवासं तु गृह्णीयाद्यथासंकल्पयेद्बुधः।। औदुम्बरम् ताम्रमयम्।। मंत्रस्तु विष्णूक्तः।। एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि।। भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत।। शैवादीनां तु हेमाद्रौ सौरपुराणे – सावित्र्याप्यथवा नाम्ना संकल्पं तु समाचरेत्।। **वराहे** – इत्युच्चार्यं ततो विद्वान पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत्। ततस्तज्जलं पिबेत् – अष्टाक्षरेण मंत्रेण

त्रिजप्तेनाभिमन्त्रितम्।। उपवासफलं प्रेप्सुः पिबेत्पात्रगतं जलम्।। इति कात्यायनोक्तेः।। **रात्रौ संकल्पः** – मध्यरात्रे उदये वा दशमीवेधे रात्रौ संकल्प इति माधवः।। दशम्याः सङ्गदोषेण अर्धरात्रात् परेण तु।। वर्जयेच्चतुरो यामान् संकल्पार्चनयोस्तदा।। विद्धोपवासेऽनश्नंस्तु दिनं त्यक्त्वा समाहितः।। रात्रौ संपूजयेद्विष्णुं संकल्पं च सदाचरेत्।। इति नारदीयोक्तेः। तत्र पूजामभिधाय।। जागरणम्।। **देवलः** देवस्य पुरतः कुर्याज्जागरं नियतो व्रती।। द्वादश्यां निवेदनमन्त्र उक्तः कात्यायनेन–अज्ञान–तिमिरान्धस्य व्रतेनानेनहं प्रभो।। प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव।। **द्वादश्यां वर्ज्यानाह बृहस्पतिः** – दया निद्रां परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने।। क्षौद्रं कांस्यं माषतैलं द्वादश्यामष्टवर्जयेत्।। हेमाद्रौ **ब्रह्माण्डे**–पुनर्भोजनमनध्यायो भार आयासमैथुने।। उपवासफलं हन्युर्दिवानिद्रा च पञ्चमी।। शुद्धिः। **विष्णुधर्मे**–असंभाष्यन् हि संभाष्य तुलस्याश्चार्पितं दलम्।। आमलक्याः फलं वापि पारणे प्राश्य शुद्ध्यति।। **विष्णुः** – भोजनान्तरं विष्णोरर्पितं तुलसीदलम्।। भक्षणात् पापनिर्मुक्तिश्चान्द्रायणशताधिका।। एतद्व्रतं सूतकेऽपि कार्यम्।। सूतके मृतके चैव त्याज्यं द्वादशीव्रतम्।। इति विष्णूक्तेः।। तत्र त्यक्तं दानादि सूतकान्ते कार्यम्।। सूतकान्ते नरः स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनम्।। दानं दत्त्वा विधानेन व्रतस्य फलमश्नुते।। **इति मात्स्योक्तेः** स्त्रीभिस्तु रजोदर्शनेऽपि कार्यम्।। एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि।। इति पुलस्त्योक्तेः।। द्वादश्यामुपवासः।। यदा द्वादश्यां श्रवणर्क्षं तदा शुद्धामप्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीमुपवसेत्।। शुक्ला वा यदि वा कृष्णा द्वादशी श्रवणान्विता।। तयोरेवोपवासश्च त्रयोदश्यां तु पारणम्।। इति नारदोक्तेः।। अथाष्टौ महाद्वादश्यः।। तत्र शुद्धाधिकैकादशीयुता द्वादशी उन्मीलिनी द्वादश्येव शुद्धाधिका वर्द्धते चेतु सा वञ्जुली।। वासरत्रयस्पर्शिनी त्रिस्पृशा।। अग्रे पर्वणः संपूर्णाधिकत्वे पक्षवर्धिनी।। पुष्यर्क्षयुता जया।। श्रवणयुता विजया।। पुनर्वसुयुता जयन्ती।। रोहिणीयुता पापनाशिनी।। एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत्।। अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम्।। पारणासमयः।। द्वादश्याः प्रथमपादमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः।। इति निर्णयामृते विष्णुधर्मोक्तेः।। यदा भूयसी द्वादशी तदपि प्रातर्मुहुर्त्तत्रये पारणं कार्यम्।। सर्वेषामुपवासानां प्रातरेव हि पारणम्। इति वचनात्।। इत्येकादशीनिर्णयः।। अथ शुक्लकृष्णैकादश्युद्यापनम्–

प्रबोधसमये पार्थं कुर्यादुद्यापनक्रियाम्।। मार्गशीर्षे विशेषेण माघे भीमतिथावपि।। तद्विधिः – दशम्यामेकभुक्तं तु दन्तधावनपूर्वकम्।। एकादश्यां शुचिर्भूत्वा आचार्यं वरयेत्ततः।। **तत्र संकल्पः** – गणेशस्मरणपूर्वकं मासपक्षाद्युल्लिख्य मया आचरितस्याचरिष्यमाणस्य वा शुक्लकृष्णैकादशीव्रतस्य साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्संपूर्णफलप्राप्त्यर्थं देशकालाद्यनुसारतो यथाज्ञानेन शुक्लकृष्णैकादशी-व्रतोद्यापनमहं करिष्ये। तदङ्गत्वेन गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनमाचार्यवरणं च करिष्ये इति संकल्प्य, गणेशं षोडशोपचारैः पूजयित्वा पुण्याहं वाचयेत्।। तद्यथा करिष्यमाण शुक्ल कृष्णैकादशीव्रतोद्यापनकर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु। अस्तु पुण्याहं।। स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु।। आयुष्मते स्वस्ति।। ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु। कर्म ऋध्यताम्।। श्रीरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु। अस्तु श्रीः।। वर्षशतं पूर्णमस्तु।। शिवं कर्मास्तु।। गोत्राभिवृद्धिरस्तु प्रजापतिः प्रीयताम्।। तत उद्यापनकर्मणि आचार्यं वरयेत्।। उपोष्य नियतो रात्रावाचार्यसहितो व्रती।। कुर्यादाराधनं विष्णोयथाशक्त्या जद्गुरोः।। देवालये गवां गोष्ठे शुचीदेशेऽथवा गृहे।। अष्टांगुलोच्छ्रितां वेदीं चतुरस्त्रां प्रकल्पयेत्।। वितस्तिद्वयविस्तीर्णां तिलैः कृष्णैः प्रपूरयेत्।। तस्यामष्टदलं रम्यं कमलं परिकल्पयेत्।। तन्मध्ये स्थापयेत् कुम्भं नवीनमव्रणं शुभम्।। कृष्णैस्तिलैश्च संयुक्तं कृष्णवस्त्रोपशोभितम्।। अश्वत्थपर्णयुग्मेन पञ्चरत्नैः समन्वितम्।। समन्तादङ्कितं चैव संकर्षणादिनामभिः।। उपचारैः षोडशभिः पूजयेत् प्रयतो नरः।। आग्नेयादिचतुष्पत्रे पूजयेद्गणमातृकाः।। गणेशं मातृकाश्चैव दुर्गां क्षेत्राधिपं तथा।। समाहितमनाः कोणेष्वाग्नेयादिषु विन्यसेत्।। तथैव शुक्लैकादश्यां तिलैः शुक्लैश्च यो जयेत्।। शुक्लवस्त्रेण संवेष्ट्य पूजयेत्परया मुदा।। समन्तादंकितं चैव नामभिः केशवादिभिः।। ततो देवं च सौवर्णं स्नाप्य पञ्चामृतादिभिः।। गन्धपुष्पाक्षतोपेतैरथ पुण्यजलैः शुभैः।। संस्थाप्यावाहयेत्कुम्भे रमायुक्तं चतुर्भुजम्।। पूर्ववृत आचार्यः सर्वतोभद्रमण्डलदेवताः संपूज्य तदुपरि स्थापिते कलशे देवतासान्निध्यार्थं कृताग्न्युत्तारणं विष्णुर्मेति संस्थाप्य तत्र विष्णुमावाहयेत्।। ओं नमो विष्णवे तुभ्यं भगवन् परमात्मने।। कृष्णोऽसि देवकीपुत्र परमेश्वर उत्तम। अजोऽनादिश्च विश्वात्मा सर्वलोकपितामहः।। क्षेत्रज्ञः शाश्वतो विष्णुः श्रीमान्नारायणः परः। त्वमेव पुरुषः सत्योऽतीन्द्रियोऽसि जगत्पते।। यत्तेजः परमं सूक्ष्मं तेनेमां वेदिकां विश।। ओं भूः पुरुषमावाहायामि।।

ओं भुवः पुरुषमावाहयामि।। ओं स्वः पुरुषमावाहयामि।। ओं भूर्भुवः स्वः पुरुषमावाहयामि।। विष्णो इहागच्छ इह तिष्ठ पूजां गृहाण सप्रसन्नो वरदो भव इति।। प्रत्येकं स्त्रीचतुःसहस्त्रीसहितां रुक्मिणीं जाम्बवतीं सत्यभामां कालिन्दीं च पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरदलाभ्यन्तरेष्वावाह्य शङ्खं चक्रं गदां पद्मं चेशानादिष्वावाहयेत्।। तद्बहिः पूर्वपत्रादिष्वष्टपत्रेष्वनुक्रमात्।। विमला १ उत्कर्षिणी २ ज्ञाना ३ क्रिया ३ योगा ५ तथैव च।। प्रह्वा ६ सत्या ७ तथेशाना ८ अनुग्रहा पद्ममध्यगा।। देवस्याग्रे ततः कृत्वा वेदिकायां खगेश्वरम्।। गरुडं चावाह्य लोकपालानवस्थाप्य दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात्।। ततः पूर्वादिक्रमेण केशवादीन्।। केशवाय नमः, केशवमावाहयामि १, नारायणाय० २, माधवाय० ३, गोविन्दाय० ४, विष्णवे० ५, मधुसूदनाय० ६, त्रिविक्रमाय० ७, वामनाय० ८, श्रीधराय० ९, हृषीकेशाय० १०, पद्मनाभाय० ११, दामोदराय० १२, एताञ्छुक्लैकादश्याम्।। एवमेव कृष्णैकादश्यां संकर्षणाय० संकर्षणं आ० वासुदेवा० प्रद्युम्ना० अनिरुद्धा० पुरुषोत्तमा० अधोक्षजा० नारसिंहा० अच्युता० जनार्दना० उपेन्द्राय० हरये० श्रीकृष्णाय० १२ इत्येवं प्रकारेणावाह्य तदस्त्विति प्रतिष्ठाप्य च ओं अतो देवा इतिषोडशोपचारैर्विष्णुमावाहितदेवताश्च नाममंत्रेण पूजयेत्।। प्रदद्यादासनं पाद्यमर्घ्यमाचनीयकम्।। स्नानं वस्त्रं चोपवीतं गन्धपुष्पाणि वैततः।। धूपं दीपं च नैवेद्यं नीराजनप्रदक्षिणे।। उभयैकादश्योर्यदा एक आचार्यस्तदाष्टदलेषु पूर्वादिक्रमेण एकत्र देवताः संस्थाप्य पूजयेत्।। स्तवनं विष्णुसूक्तैश्च परिचर्या च नामभिः।। नमोन्तैर्वैष्णवैर्मन्त्रैस्तन्मूर्तौ पूजयेत् सुधीः।। उपचारादिकं कुर्यान्नैव कार्यं विसर्जनम्।। गीतवाद्यैस्तथा नृत्यैरितिहासै-र्मनोरमैः।। पुराणैः सत्कथाभिश्च रात्रिशेषं नयेत् सुधीः।। प्रभाते विमले स्नात्वा कृत्वा शौचादिकाः क्रियाः। चतुर्विंशति-संख्यकान्विनायमदर्शिनः।। आकारयेत्ततः पश्चात् पूजयेच्च समागतान्।। आचार्येण समं कुर्यादुपाचारादिकं ततः।। होमसंख्यानुसारेण स्थण्डिलं कारयेत्ततः।। उल्लेखनादिकं कृत्वा प्रणीतास्थापनं ततः।। अग्निध्यानान्तं कृत्वा ततोऽन्वाधानं कुर्यात्। क्रियमाणे शुक्लकृष्णैकादशीव्रतोद्यापनहोमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये इति संकल्प्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा। अत्र प्रधानम्-अग्नि इन्द्रं प्रजापति विश्वान्देवान् ब्रह्माणं, पुरुषं नारायणं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्येन। वासुदेवं बलदेवं श्रियं विष्णुम् अग्निवायुं सूर्यं प्रजापति एताः प्रधानदेवताः पायसद्रव्येण।। केशवादि-

द्वादशदेवता आज्यमिश्रितपायसद्रव्येण। विष्णुमष्टोत्तरशताहुत्या पायसद्रव्येण। प्रत्येकं स्त्रीचतुः सहस्त्रसहितां रुक्मिणीं सत्यभामां जाम्बवतीं कालिन्दीं च शङ्खं चक्रं गदां पद्मं गरुडं इन्द्राद्यष्टौ लोकपालान् विमलाद्या अनुग्रहान्ता देवता ब्रह्मादिदेवताश्च एकैकयाऽऽज्याहुत्या। शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि-प्रणीताप्रणयनान्तं कृत्वा अन्वाधानसमिद्भिर्जुहुयात्।। पायसं चरुं श्रपयित्वा ओं पवित्रं ते इति मन्त्रं जपन् प्रापणमुद्धरेत्।। पायसादुद्धृतं किञ्चित् प्रापणं तत्प्रकीर्तितम्।। आज्यसंस्कारादिकमाज्यभागान्तं कृत्वा इदुपकल्पितं हवनीयद्रव्यं यथादैवतमस्तु।। पञ्च अनादेशाहुतीः सर्पिषा हुत्वा पुरुषं नारायणं पौरुषेण सूक्तेन प्रत्यृचं सर्पिषा।। वासुदेवाय स्वाहा॰ बलदेवाय स्वाहा॰ श्रियै स्वा॰ विष्णवे॰ ओं विष्णोर्नुकम्॰ ॐ तदस्यप्रियमभिपाथो॰ ओं प्रतद्विष्णुः ओं परो मात्रया॰ ओं विचक्रमे॰ ओं त्रिर्देव इति मन्त्रैर्व्याहृतिभिश्च पायसेन हुत्वा शुक्लैकादश्यकेशवादि द्वादशभि नामभिः कृष्णैकादश्यां सङ्कर्षणादि-द्वादशभ्यः शुक्लकृष्णैकादश्योरेकाचार्यैकस्थण्डिलपक्षेचतुर्विंशतिभ्यो नामभिर्घृत-मिश्रपायसेन जुहुयात्।। ततो विष्णु पायसेन अष्टोत्तर शतं हुत्वा प्रत्येकं स्त्रीचतुः सहस्त्रसहिता रुक्मिण्यादीः शङ्खादीन् लोकपालान्विमलाद्या देवता ब्रह्मादिदेवताश्चैकैकयाऽऽज्या हुत्या जुहुयात्।। ततः प्रापणार्थं भगवत्प्रार्थना-त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुराणं नारायणं विश्वसृजं यजामः।। मयैकभागो विहितो विधेयो गृहाण हव्यं जगतामधीश।। इति प्रापणं निवेद्योपतिष्ठेत्।। ततस्त्रिवारं चतुर्वारं ध्रुवसूक्तं वा प्रदक्षिणमग्निं वेदिकां च परिक्रम्य भिन्धि विश्वा इति जानुनी निपात्य ध्रुवसूक्तं जपेत् पुरुषसूक्तं वा।। ततोऽष्टौ पदानि प्रतिदिशमेतैर्मन्त्रैर्गच्छेत्।। कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।। शरण्यायाप्रमेयाय गोविन्दाय नमो नमः।। नमः स्थूलाय सूक्ष्माय व्यापकायाव्ययायच।। अनन्ताय जगद्धात्रे ब्रह्मणेऽनन्तमूर्तये।। अव्यक्तायाखिलेशाय चिद्रूपाय गुणात्मने।। नमो मूर्ताय सिद्धाय पराय परमात्मने।। देवदेवाय वन्द्याय पराय परमेष्ठिने।। कर्त्रे गोत्रे च विश्वस्य संहर्त्रे च ते नमः।। अथ तन्निवेदितं प्रापणं मूर्ध्नि कृत्वा घोषयेत्। के वैष्णवा इत्युच्चैर्वदेत्।। वयं वैष्णवा वयं वैष्णवा इति समानाः प्रवदेयुः। तेभ्यः समानेभ्यो हविर्दत्त्वा ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति द्वादशाक्षरमन्त्रेण इदमहममृतं प्राश्नामि इति प्राश्य आचम्य सिद्धये स्वाहा इति आज्येन जुहुयात्।। ततो यत इन्द्रभयामह इत्यात्मानमभिमन्त्र्य

स्विष्टकृदादिहोमशेषं समापयेत्।। उत्तरपूजां कृत्वा–ततो होमावसाने च गामरोगां पयस्विनीम्।। सवत्सां कृष्णवर्णां च सवस्त्रां कांस्यदोहिनीम्।। दद्याद्व्रतसमाप्त्यर्थमाचार्याय सदक्षिणाम्।। भूषणानि विचित्राणि वासांसि विविधानि च।। चतुर्विंशतिसंख्यानि पक्वान्नानि च दापयेत्।। आचार्याय प्रदेयानि दक्षिणां भूयसीं तदा।। यदीच्छेदात्मनः श्रेयो व्रतस्योद्यापनं चरेत्।। विप्रान् द्वादशसंख्याकान्नामभिः पृथगर्चयेत्।। उपवीतानि तेभ्यो वै दद्यात्कुम्भान् सदक्षिणाम्।। पक्वान्नफलसंयुक्तान् वस्त्रयुक्तांस्तु दापयेत्।। भोजयित्वा ततो विप्रान् पक्वान्नेन च भक्तितः।। अन्यानपि यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेद्व्रती।। व्रतं ममास्तु संपूर्णमित्युक्तैः पूजितैर्द्विजैः।। अस्तु संपूर्णमित्युक्त्वा आचार्यसहितो व्रती। जप्त्वा वैष्णवसूक्तानि प्रणम्य च पुनः पुनः।। ॐ भूः पुरुषमुद्वासयामीति क्रमेणोद्वासयेत्।। ॐ इदं विष्णुः इति पीठमाचार्याय दत्त्वा ततो बन्धुजनैः सार्द्धं स्वयं भुञ्जीत्।। इति बौधायनोक्तं शुक्लं कृष्णैकादशीव्रतोद्यापनं संपूर्णम्।। अथपूजाविधि।। ब्राह्मो–एकादश्यामुभे पक्षे निराहारः समाहितः।। स्नात्वा सम्यग्विधानेन सोपवासो जितेन्द्रयः। संपूज्य विधिवद्विष्णु श्रद्धया सुसमाहितः।। स्नात्वा सम्यग्विधानेन सोपवासो जितेन्द्रयः। संपूज्य विधिवद्विष्णुः श्रद्धया सुसमाहितः।। गन्धपुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैः परैः।। उपचारैर्बहुविधैर्जपहोमैः प्रदक्षिणैः।। स्तोत्रैर्नानाविधैदि-व्यैणोतरवाद्यैर्मनोहरैः।। दण्डवत्प्रणिपातैश्च य शब्दैस्तथोत्तमैः।। एव संपूज्य विधिवद्रात्रौ कृत्वा प्रजागरम्।। यति विष्णोः परं स्थानं नरो नास्त्यत्र संशयः।। (पञ्चामृतेन संस्नाप्य एकादश्यां जनार्दनम्।। द्वादश्यां पयसा स्नाप्य हरिसारुप्यमश्नुते)।। इति पूजाविधिः।। अथ पुराणोक्त उभयैकादश्यु-द्यापनविधिः। अर्जुन उवाच।। कीदृग्व्रतविसर्गोऽत्र विधानं चात्र कीदृशम्।। संपूर्ण हि भवेद्येन तन्मेवद कृपानिधे।। श्रीकृष्ण उवाच– ।। शृणु पाण्डव यत्नेन प्रवक्ष्यामि तदव्ययम्।। शक्तः स्वर्णसहस्रं तु अशक्तः काकिणीं तथा। ददाति श्रद्धया पार्थ समं स्यादुभयोरपि।। शक्तश्चेद्विगुणं दद्याद्योक्ते मध्यमो विधिः।। उक्तार्द्धमप्यशक्तस्य दानं पूर्णफलप्रदम्।। तद्रूपविधिमप्येकं कथयामि तवाग्रतः।। यानि कष्टेन चीर्णानि व्रतानि कुरुसत्तम।। विफलान्येव सर्वाणि उद्यापनविधिं विना।। प्रबोधसमये पार्थ कुर्यादुद्यापनक्रियाम्।। मार्गशीर्षे विशेषेण माघे भीमतिथावपि।। दशम्यां दिनशेषेण रात्रौ गुरु गृहं व्रजेत्।।

मार्गशीर्षे विशेषेण माघे भीमतिथावपि।। दशम्यां दिनशेषेण रात्रौ गुरुगृहं व्रजेत्।। एकादशीदिने पार्थ गुरुमभ्यर्च्य शक्तितः।। गृहीत्वा चरणौ मूर्ध्ना प्रार्थयीत विचक्षणः।। पुण्यदेशोद्भवं विप्रं शान्तं सर्वगुणान्वितम्।। सदाचाररतं पार्थ वेदवेदाङ्गपारगम्।। अस्मदीयं व्रतं विप्र विष्णुवासरसम्भवम्।। संपूर्णं तु भवेद्येन तत्कुरुष्व द्विजोत्तम।। तस्याग्रे नियमः कार्यो दन्तधावनपूर्वकम्।। एकादश्यां निराहारः स्थित्वा चैव परेऽहनि।। भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत।। एवं प्रभातसमये शुचिर्भूत्वा समाहितः।। पाखण्डिनां च सर्वेषां पतितानां च सङ्गमम्।। कामं दुरोदरं पार्थ दूरतः परिवर्जयेत्।। स्नानं कृत्वा मन्त्रपूर्वं नद्यादौ विमले जले। तर्पयित्वा पितृन् देवान् पूजयेन्मधुसूदनम्।। उपलिप्य शुचौ देशे कीटकेशास्थिवर्जिते।। वर्णैश्च सर्वतोभद्रं नीलपीतसितासितः।। मण्डलं चोद्धरेद्भूप सर्वकर्मसु पूजितम्।। अष्टाङ्गुलोच्छ्रितां वेदीं चतुरस्रां प्रकल्पयेत्।। वितस्तिद्वयविस्तीर्णामक्षतैः परिपूरिताम्।। तस्यामष्टदलं सम्यक् कमलं परिकल्पयेत्।। तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं नवीनं सुस्थिरं शुभम्।। अथवा तण्डुलानां च अष्टपत्राम्बुजं चरेत्।। वारिपूर्णं घटं ताम्रं पात्रं रौप्यसमुद्भवम्।। जातरूपमयं देवं लक्ष्म्या युक्तं जनार्दनम्।। साक्षात् यज्ञोपवीतं च सहिरण्यं सवाससम्।। अक्षमाला- समायुक्त शङ्खचक्रगदाधरम्।। शक्त्या सुवर्णपुष्पैश्च पूजयेत्पुष्टिवर्द्धनम्।। अन्यैर्ऋतूद्भवैः पुष्पैरर्चयेद्विधिवन्नरः।। नैवेद्यांश्च चतुर्विंशत्यथ दद्यादनुक्रमात्।। भक्त्या चतुर्विंशतिषु तिथिष्वपि परन्तप।। इच्छया वा तथा दद्याद्यदैवोद्यापनं भवेत्।। मोदकान् गुडकाश्चूर्णान् घृतपूरकमण्डकान्।। सोहालिकादिक सारसेवाः सक्तवएव च।। वटकान् पायसं दुग्धं शालि दध्योदनं तथा।। इण्डरीकान् पूरिकांश्चापूपान्गुडकमोदकान्। तिलपिष्टं कर्णवेष्टं शालिपिष्टं सशर्करम्।। रम्भाफलं सघृतं मुद्गचूर्णं गुडौदनम्।। उत्सवं क्रमेण नैवेद्यं पृथग्वा चरमेऽहनि।। पूजानामानि—दामोदराय पादौ तु जानुनी माधवाय च।। गुह्यं वै कामपतये कट्यां वामनमूर्तये।। पद्मनाभाय नाभिं तु ह्युदरं विश्वमूर्तये।। हृदयं ज्ञानगम्याय कण्ठं श्रीकण्ठसङ्गिने।। सहस्रबाहवे बाहू चक्षुषी योगयोगिने।। ललाटमुरुगायेति नासां नाकसुरेश्वरम्।। श्रवणौ श्रवणेशाय शिखायां सर्वकामदम्।। सहस्रशीर्षाय शिरः सर्वाङ्गं स्वरूपिणे।। शुभेन नारिकेरेण बीजपूरेण वा पुनः।। हृदि ध्यात्वा जगन्नाथं दद्याद् विधि-विधानतः।।

साक्षतं च सपुष्पं सजलं चन्दनान्वितम्।। पूर्वोक्तैरेव मन्त्रैश्च व्रतपूर्तिकरैः सुधीः।। रात्रौ जागरण कुर्याद्गीतशास्त्रविनोदतः।। इष्टदत्तं धरादानं पिण्डो दत्तो गयाशिरे।। कृतं दानं कुरुक्षेत्रे यैः कृतं जागरं हरेः।। नृत्यं गीतं प्रकुर्वन्ति वीणावाद्यं तथैव च।। ये पठन्ति पुराणानि ते नराः कृष्णवल्लभाः।। शास्त्रैर्वाप्यथवा भक्त्या शुचिर्वाप्यथवाऽशुचिः।। कृत्वा जागरणं विष्णोर्मुच्यते पापकोटिभिः।। भुक्तो वाप्यथवाभुक्तो जागरे समुपस्थितः।। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।। यावत्पदानि स्वगृहात् केशवायतनं प्रति।। अश्वमेघसमानि स्युर्जागरार्थं प्रयच्छतः।। पादयोः पांसुकणिका धरण्यां निपतन्ति याः।। तावद्वर्षसहस्राणि जागरी वसते दिवि।। बहून्यपि च पापानि कृतं जागरणं हरेः।। निर्दहेन्मेरुतुल्यानि युगकोटिकृतान्यपि।। मनसा सस्मरेद्देवं तां रात्रिमतिवाह्य च।। प्रभाते विमले स्नात्वा विप्रानाकारयेत् सुधीः।। चतुर्विंशतिसंख्याकान्निगमागमदर्शिनः।। सर्वं कुर्याद्विधानेन जपहोमार्चनादिकम्।। शतमष्टोत्तरं होमः सर्वत्रापि प्रशस्यते।। इदं विष्णुर्द्विजातीनां होममन्त्रः प्रकीर्तितः।। शूद्राणां चैव सर्वेषां मन्त्रमष्टाक्षरं विदुः।। विविधैरपि वस्त्रैश्च भाजनैरासनैः सह।। पादत्राणं नवाङ्गं च दद्यात्पार्थ पृथक्-पृथक्।। द्वादशैवाथ शक्त्या वा वस्त्रालङ्कारभूषणैः।। पूजयेत्पुष्पमालाभिः सपत्नीकान्द्विजोत्तमान्।। कुम्भाः द्वादश दातव्याः पक्वान्नजलपूरिताः।। भोजयित्वा ततो विप्रान् भक्तितो विचरेद्बुधः।। एका हि कपिला देया सर्वकामफलप्रदा।। यथा स्वर्गश्च मोक्षश्च इह संपूर्णता व्रते।। नमस्ते कपिले देवि संसारार्णवतारिणि।। मया दत्ता द्विजेन्द्राय प्रीयतां मे जनार्दनः।। सपत्नीको गुरुः पूज्यो मण्डले हरिसन्निधौ।। भूषणाच्छादनैर्भोज्यैः प्रणामैः परितोषयेत्।। समाप्य वैष्णवं धर्मं दद्यात्सर्वं धनञ्जय।। इष्टं चान्यद्यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः।। जलदानं विशेषेणभूमिदानमतः परम्।। प्रार्थयेत् पुरुषाधीशं ततो भक्त्या कृताञ्जलिः।। ममाद्यास्मिन् व्रते देव यदपूर्णं कृतं विभो।। सर्वं भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन।। त्वयि भक्तिः सदैवास्तु मम दामोदर प्रभो।। पुण्यबुद्धिः सतां सेवा सर्वधर्मफलं च मे।। जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यश्चिच्छद्रं व्रतकर्मणि।। सर्वं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते।। प्रदक्षिणां ततः कृत्वा दण्डवत् प्रणिपत्य च।। मण्डलं वर्तिसंयुक्तं सोपहारं सदक्षिणम्।। प्रीयतां विष्णुरित्युक्त्वा आचार्याय निवेदयेत्।। सर्वान् विसर्जयेत् पश्चात् संतोष्य

परिभोज्य च।। तदाज्ञया ततः कुर्यात् पारणं बन्धुभिः सह।। एकादशीव्रतं चैतद्यथाविधि कृतं पुरा।। यौवनाश्वेन भूपेन कथितं पुरतस्तव।। धनञ्जय तव प्रीत्या भक्त्यानुग्रहकारणात्।। यः करोति नरो भक्त्या व्रतमेतद्भयापहम्।। स याति वैष्णवं स्थानं दाहप्रलयवर्जितम्।। उक्तमुद्यापनं चैवमुभयोः कुरुसत्तम्।। किमन्यैर्बहुभिर्वाक्यैः प्रशंसापरमैर्भुवि।। एकादश्याः परतरं त्रैलोक्ये न हि विद्यते।। अन्न दानं तु गोदानं भूमिदानमथापि वा।। गोरोमबीजमूलानां समसंख्यायुगानि हि।। दातारो विष्णुभवने एकादश्यां वसन्ति हि।। ये ऽपि शृण्वन्ति सततं कथ्यमानां कथामिमाम्।। तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः स्वर्गं यान्ति न संशयः।। इत्याकर्ण्यार्जुनो वाक्यं कृष्णस्य परमाद्भुतम्।। आनन्दं परमं प्राप सौख्यं चापि निरन्तरम्।।

इति पुराणोक्तमुभयैकादशीव्रतोद्यापनं संपूर्णम्।।

११.२२ एकादशी व्रत – कथा (हिन्दी टीका)

अब एकादशी के व्रत इस प्रकार हैं। सबसे पहले उपवास की एकादशी का निर्णय किया जाता है – उपवास दो तरह का होता है। एक निषेध परिपालन रूपी, दूसरा व्रतरूपी (पहला – जैसे कि, दोनों पक्षों की एकादशी में भोजन न करे, यहाँ जो भोजन का निषेध किया है इस निषेध के पालने करने से एकादशी के दिन निषेध से भोजनाभाव रूप उपवास आ उपस्थित होता है। दूसरा – जैसे कि, एकादशी के आने पर दशमी के दिन ही उपवास का संकल्प करके व्रत करें, ऐसे वाक्यों जो कि, एकादशी के दिन उपवास का विधान करते हैं उनमें व्रत रूप में उपवास आ उपस्थित होता है)। एकादशी दो प्रकार की होती है, शुद्धा और दशमीविद्धा। शुद्धा जिसमें किसी का वेध न हो, जिस एकादशी के दिन भी दशमी किसी रूप से आ जाये तो वह दशमीविद्धा एकादशी कहलाती है। वेध भी दो प्रकार का होता है, पहले – अरुणोदय वेध दूसरा सूर्योदयवेध, (अरुणोदय के समय में दशमी का वेध एकादशी में आये तो उसे अरुणोदयवेध कहेंगे) अरुणोदयवेध वैष्णवों को नहीं लेना चाहिये, यही भविष्य पुराण में लिखा हुआ है कि – अरुणोदय के समय में यदि दशमी दिखे तो उसे विद्धा कहेंगे, उसमें उपवास करना पाप का कारण है। दूसरा एक वचन और भी है कि – दशमी के अशिष्टांश से संयुक्त यदि अरुणोदय हो तो उस दिन वैष्णव को एकादशी के व्रत का उपवास नहीं करना चाहिये। अरुणोदय का स्वरूप – हेमाद्रि ने स्मृत्यन्तर से दिखाया है कि, रात्रि के आखिरी हिस्से में आधे पहर जबकि देवताओं के नक्कारे बजते हैं, पढ़ने का अनध्याय रहता है उसे अरुणोदय कहते हैं। इसमें आया हुआ यामार्धशब्द आधा पहर यानी दो मुहूर्त्त से मतलब रखता है, सौर धर्म में कहा है कि, आदित्य के उदय के समय में जो पहले स्कन्द का प्रमाण लिखा है कि सूर्य्योदय से पहले चार घड़ी अरुणोदय काल रहता है, इस पर द्वैतनिर्णय में लिखा है कि,

चार घड़ी का अरुणोदय तो बत्तीस घड़ी की रात होती है इस मान के पक्ष में दो मुहूर्त्तो को चार घड़ी का होने के कारण कहा है। ब्रह्मवैवर्त्त में जो यह लिखा हुआ है कि, प्रातःकाल चार घड़ी का अरुणोदय होता है यह निश्चय है, यहाँ वेध के चार भाग कहे हैं। अरुणोदयवेध साढ़े तीन घड़ी का होता है, रवि की प्रभा के दीखने से पहले दो घड़ी का अतिवेध होता है, इस समेत ये तीन अरुणोदय के भेद हैं। यह आखिरी साढ़े तीन से अगाड़ी होता है, सूर्योदय के होने पर जो वेध हो उसे चौथा वेध कहते हैं। व्रतराज में दूसरी तरह का वेध है क्योंकि पहले तो अरुणोदय में आ गये। ये वेध पूर्व उत्तरोत्तर दोष के अतिशय को दिखाने के लिये हैं यानी पूर्व के वेध से उत्तर का वेध दोष अधिक होता है, इस बात को दिखाने के लिये लिए गये है। मयूखग्रन्थ में लिखा है साठ घटिका का साधारण अहोरात्र होता है। यदि घटता है तो ६ घटिका तक घट जाता है यदि बढ़ता है तो ५ घटी बढ़ जाता है, साधारण मान की दृष्टि से बता रहे हैं कि, पचपन पर उषःकाल तथा ५७ पर अरुणोदय, अट्ठावन पर प्रातःकाल तथा शेष पर सूर्योदय होता है। वैष्णव लक्षण – स्कन्द पुराण में कहे हैं कि, चाहे उसे परम आनन्द हो चाहे परम आपन्न हो जो एकादशी के व्रत का त्याग न करे एवं जो वैष्णवी दीक्षा से दीक्षित हो वो वैष्णव है। भविष्य में कहा है कि, जैसी शुक्ला वैसी ही कृष्णा एवं जैसी कृष्णा वैसी ही शुक्ला दोनों को बराबर माने वही वैष्णव कहा जाता है। सूर्योदय के वेध की प्रधानता–स्मार्तों के यहाँ है उनके विषय का वाक्य मदनरत्नधृतस्मृति में है कि – जो अति वेधादिक सब वेध तिथियों में बताये हैं वे सब वेध नहीं हैं उन्हें अवेध समझना चाहिये, केवल सूर्योदय वेध ही एक मात्र वेध है।। एकादशी के भेद दो तो पहिले कर ही आये हैं कि, पहिली शुद्धा और दूसरी दशमीविद्धा (या विद्धा) होती है। शुद्ध और विद्धा दोनों ही एकादशी चार-चार तरह की होती है। सबसे पहले शुद्धा के ही भेदों को दिखाते हैं– १. एकादशीमात्राधिका, २. द्वादशीमात्राधिका, ३. उभयाधिका, ४. अनुभयाधिका, (जिसमें एकादशी ही अधिक हो यानी सूर्योदय के बाद अधिक रहे वो अधिका कहलाती है। जैसे दशमी ५५ घड़ी हो, एकादशी ६० हो, द्वादशी का क्षय होकर

५८ रह गया हो। जिसमें द्वादशी सूर्य के अनन्तर अधिक हो जैसे दशमी ५५ एकादशी ५८ और द्वादशी ६० घड़ी हो। जिसमें दोनों अधिक हो जैसे दशमी ५५ एकादशी ६० घड़ी एक पल तथा द्वादशी ६५ हों इसमें एक पल एकादशी तथा ५ घड़ी द्वादशी अधिक हुई। जिसमें दशमी ५५ एकादशी ५७ और द्वादशी ५८ हो इसमें एकादशी भी कम है और द्वादशी भी कम है) इसी तरह विद्धा के भी ये ही चार भेद होते हैं जैसे दशमी ४ घड़ी अधिक हो, एकादशी २ हो एवम् द्वादशी का क्षय होकर ५८ रह गयी हो। दशमी २, एकादशी ३ और द्वादशी ४ इसमें एकादशी और द्वादशी दोनों ही अधिक हैं। जिसमें दशमी की एक घड़ी वृद्धि हो एकादशी का क्षय होकर ५८ रह गयी हो द्वादशी की वृद्धि होकर वो ६० घड़ी १ पल की हो गयी हो, यह हुई द्वादशी मात्र की वृद्धिवाली विद्धा। एवम् दशमी २ एकादशी का क्षय होकर ५६ रह गयी हो तथा द्वादशी भी ५५ हो इसमें न तो एकादशी ही अधिक है, एवं न द्वादशी ही है) इनमें शुद्धा में एकादशी की अधिकता में नारद दूसरे दिन उपवास कहते हैं कि – जिसमें पूरी एकादशी हो और द्वादशी वाले दिन बढ़ती हो तो द्वादशी में व्रत करके त्रयोदशी में पारणा करनी चाहिये। वृद्ध वसिष्ठ ने कहा है कि, जब एकादशी का लोप हो और अगाडी द्वादशी हो तो द्वादशी के दिन उपवास करना चाहिये। यदि परम गति की अभिलाषा हो तो। भगवान् भृगु ने भी यही कहा है कि जिस दिन प्रभात काल में एकादशी हो और दूसरे दिन भी वही हो तो द्वादशी का उपवास करना चाहिए। स्कन्द पुराण में – यदि पहले दिन अहोरात्र को मिलाकर सब एकादशी हो और द्वादशी के दिन भी वही हो तो गृहस्थियों को पहली और यति लोगों को दूसरी करनी चाहिए। मार्कण्डेय पुराण में कहा है – जिस दिन सम्पूर्ण एकादशी हो और दूसरे दिन भी प्रभात काल में यदि एकादशी हो तो कामना रखने वाला मनुष्य पहली और निष्काम वैष्णव दूसरे दिन की एकादशी करे। हेमाद्रि में यदि दूसरे दिन द्वादशी न हो तो विद्धा भी अविद्धा और यदि दूसरे दिन द्वादशी हो तो अविद्धा भी एकादशी विद्धा मानी जाती है। प्रचेता ने कहा है – शुक्ल में या कृष्ण पक्ष में यदि एकादशी बढ़ी हुई हो तो दूसरी को यति और पहली को गृहस्थी करें।

सनत्कुमार ने कहा है कि जो मूर्ख मनुष्य एकादशी का उपवास न करता हो वह अन्धकार पूर्ण रौरव नाम के नरक में जाता है। यदि विपुल भोगों की अभिलाषा हो और अत्यन्त दुर्लभा मुक्ति की इच्छा हो तो दोनों पक्षों की एकादशी का अवश्य ही उपवास करना चाहिये। तथा माधव में भी स्कन्द ने कहा है कि – जिस दिन एकादशी और द्वादशी दोनों बढ़ती हों तो उस दिन पहली त्याग तथा दूसरी का स्मार्त लोगों को ग्रहण करना चाहिये। त्रयोदशी के दिन यदि द्वादशी न हो तो उस दिन एकादशी का उपवास करना चाहिये, चाहे वह दशमी मिश्रित भी हो। हेमाद्रि के मत से १८ प्रकार की एकादशी होती है अर्थात् – शुद्धा, विद्धा, ये दोनों न्यून, सम, अधिक, इन तीन भेदों से छः प्रकार की हुयीं फिर भी ये छहों द्वादशी से न्यून, सम, अधिक इन भेदों से तीन-तीन प्रकार की होकर १८ प्रकार की होती हैं। पद्मपुराण में कहा है कि, न्यून, सम, अधिक इन भेदों से तीन-तीन प्रकार की होकर १८ प्रकार की होती है। पद्मपुराण में कहा है कि यदि दूसरे दिन द्वादशी हो तो संपूर्ण एकादशी को छोड़ देना चाहिये और वहाँ शुद्ध द्वादशी का ही उपवास करना चाहिये और उसी दिन पारणा भी करनी चाहिये। यदि पारणा के दिन अंश मात्र भी द्वादशी न हो तो उस समय दशमी विद्धा एकादशी करने का विधान है। यदि बहुत से वाक्यों के विरोध से सन्देह होता हो तो द्वादशी का ग्रहण करना चाहिये और त्रयोदशी को पारण करें ऐसा मार्कण्डेय ऋषि ने कहा है। कात्यायन ने कहा है कि – आठ वर्ष की अवस्था से ऊपर ८० वर्ष पर्यन्त मनुष्य को दोनों पक्ष की एकादशियाँ करनी चाहिए। भविष्य में कहा है कि ब्रह्मचारी विधवा स्त्री दोनों एकादशी करें। गृहस्थी शुक्लपक्ष की ही एकादशी करें। तथा सौभाग्यवती स्त्री को अपने पति की आज्ञा से करने का अधिकार है – विष्णुपुराण में कहा है कि, पति के जीते हुए जो उपवास करे तो वह अपने पति को अल्पायु बनाकर नरक में जाती है।। पद्मपुराण में कहा है कि, शयनी और बोधनी के बीच में जो कृष्ण एकादशी हो वे ही गृहस्थी के उपवास योग्य है, दूसरी न करे।। "नान्या कृष्णा कदाचन" कभी भी दूसरे कृष्ण में व्रत न करे, यह जो निषेध है इसका कृष्णा एकादशी को गृहस्थों के लिए व्रत का निषेध

करना विषय नहीं है क्योंकि नारद जी का वचन है कि संक्रान्ति कृष्णा एकादशी चन्द्र और सूर्य ग्रहण के दिन पुत्रवान गृहस्थ को चाहिए कि व्रत न करे" यह विषय प्रायः किसी न किसी तरह सभी धर्मशास्त्रकारों ने रखा है। व्रतराज ने पहले कुछ गृहस्थ के लिए कहकर पीछे पुत्रवान् गृहस्थ के लिये निषेध किया है इन दोनों वाक्यों का मिलकर अर्थ होना चाहिए कि, पुत्रवान् गृहस्थ को छोड़कर बाकी गृहस्थों को देवशयनी और देवबोधिनी एकादशियों के बीच की कृष्णा एकादशी भी कर लेनी चाहिये, इसी में इस वाक्य का तात्पर्य है। तथा निर्णयसिंधु ने इन वाक्यों को व्रतराज से उलटा रखा भी है, इसीलिए उन दोनों का ऐसा ही सम्बन्ध है। इसीलिए वे रखे भी है इनसे पहिले यह कह चुके हैं कि, गृहस्थ शुक्ला एकादशी को व्रत करें, तब कृष्णा की प्राप्ति के बिना निषेध भी कहाँ से होगा? तब "नान्या कृष्णाकदाचन" यह निषेध भी कृष्णा के व्रत को गृहस्थों के लिए न करने को कहने वाला भी न माना जायेगा। अत एव व्रतराजकार ने कहा कि, यहाँ "नान्या कृष्णा" और कृष्णा को न करे, यह निषेध नहीं लगता यह कहा है। "कृष्णा एकादशी रविवार संक्रान्ति चन्द्र और सूर्य का ग्रहण इन दिनों पारणा और उपवास बेटावाले गृहस्थ को न करने चाहिये" इत्यादि वचनों के अनुरोध से कृष्णा एकादशी में उपवास की प्राप्ति ही नहीं है।। प्रायश्चित्तव्रत के न करने पर माधव ने कात्यायन के वचन से कहा है कि, अर्क में और दोनों पर्वों यानी अमावस और पूर्णिमा में रात को चतुर्थी और अष्टमी के दिन को तथा एकादशी के दिन अहोरात्र में भोजन करके चान्द्रायण व्रत करना चाहिये। **अथ दशमीविधिः** – कूर्म्म पुराण में दशमी के सम्बन्ध में लिखा है, – दशमी को व्रत करने वाला मनुष्य, कांसी, मांस; मसूर, चणे, कोदू आदि धान्य शाक, शहद या शराब तथा दूसरे घर का भोजन और स्त्री त्याग करे और नाना प्रकार के शाक, उडद, मसूर, दुबारा भोजन, मैथुन, घृत तथा बहुत जलपान को दशमी के दिन वैष्णव न करे। मदनरत्न में नारदीया वचन लिखा है कि, स्त्री सङ्ग का त्याग करे।। देवल ने हेमाद्रि में लिखा है – एक से अधिक बार पानी पीने से, एक बार पान खाने से, दिन में शयन करने से और मैथुन से; उपवास नष्ट

हो जाता है। शक्तिरहित मनुष्य के वास्ते मदनरत्न में देवल की उक्ति लिखी है कि – यदि शक्ति न हो तो अत्यय में जल पी लेने से उपवास नहीं नष्ट होता। अत्यय कष्ट को कहते हैं। विष्णु रहस्य में कहा है कि – शरीर में या मस्तक में तैल मलने, पान खाने, और उबटन आदि के लगाने तथा शास्त्रवर्जित वस्तुओं के व्रत करने वाला मनुष्य छोड़ दे। इन पूर्वोक्त बातों के लिये ऋग्विधान में प्रायश्चित्त में कहा है– चोर या हिंसक की मित्रता करके चोरी या हिंसा करके व्रती मनुष्य प्रायश्चित्त में गायत्री का तीन सौ जप करे। झूठ बोलकर, दिन में सोकर, बहुत पानी पीकर अष्टाक्षर मन्त्र को १०८ बार जपे। **"ओं नमो नारायणाय"** यह अष्टाक्षर मन्त्र है। हेमाद्रि में वसिष्ठ ने कहा है कि– उपवास के दिन तथा श्राद्ध के दिन दातुन न करे क्योंकि काष्ठ का दन्तस्पर्श ही सात पीढी तक जला देता है। एकादशी के श्राद्ध विधान में कात्यायन ने कहा है कि – नित्य उपवास में यदि नैमित्तिक श्राद्ध पड़ता हो तो उस दिन पितृसेवित भोजन को सूँघकर उपवास करे। माता–पिता के क्षय दिन में यदि एकादशी आवे तो पितरों और देवताओं की पूजा करके पितृसेवी सूँघकर उपवास करे। ब्रह्मवैवर्त्त में कहा है कि– एकादशी के प्राप्त होने पर दशमी की रात में नियमपूर्वक रहकर एकादशी के दिन वैष्णव उपवास करे। और उस दिन उदुम्बर (ताम्बे का) बर्तन हाथ में लेकर उत्तर मुख हो जल से उपवास करने का संकल्प करे। इस समय में मंत्र तो विष्णु ने कहा है कि – एकादशी के दिन निराहार रहकर मैं दूसरे दिन भोजन करूँगा इसलिए हे पुण्डरीकाक्ष! विष्णो! मुझे आप शरण में लीजिये।। हेमाद्रि ने सौर पुराण से शैवों के वास्ते कहा है कि – सावित्री से या शिवादि गायत्री से नामपूर्वक संकल्प करे। वराह ने कहा है कि – विद्वान् मनुष्य संकल्प करके पुष्पाञ्जलि का समर्पण करे। फिर उस जल को पीवे।। पात्र के जल को तीन बार जपे हुए **"ओं नमो नारायणाय"** इस अष्टाक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित करके पान करे, जिसे पूरे फल की इच्छा हो, यह कात्यायन का वचन है।। माधवाचार्य ने दशमी के वेध होने पर रात में व मध्यरात में अथवा उदयकाल में सङ्कल्प करे ऐसा कहा है। दशमी के सङ्ग दोष से अर्ध रात्रि के आगे

की चार प्रहरों को बुद्धिमान मनुष्य संकल्प और पूजा के वास्ते छोड़ दे। विद्ध तिथि के उपवास में भोजन कर दिन को छोड़ रात में विष्णु भगवान् की पूजा करे और सङ्कल्प करे ऐसा नारदीय वचन है। पूजा को कहकर देवल ने कहा है कि, भगवान के सम्मुख नियत होकर व्रती जागरण करे। कात्यायन ने द्वादशी के दिन निवेदन करने का मन्त्र कहा है कि, हे केशव! अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धे हुए के इस व्रत से सुमुख हो प्रसन्न हूजिये। हे नाथ! ज्ञान दृष्टि के देने वाले हूजिये।

त्याग--बृहस्पति ने द्वादशी के दिन निम्नलिखित बातों का त्याग करने के लिए कहा है कि, अर्थात् दिन में सोना, दूसरे घर का भोजन, दूसरी बार का भोजन, मैथुन, कांसी की बर्तन, शहद, उड़द, तैल इन आठ चीजों का त्याग करे।। हेमाद्रि तथा ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है कि– फिर से भोजन, स्वाध्याय, भार उठाना, परिश्रम करना, मैथुन और दिन में गाढ़ी नींद सोना ये सब काम उपवास के फल को नष्ट करते हैं। विष्णु धर्म में कहा है कि, उपवास के दिन असंभाष्य लोगों से बात करके भगवान् को अर्पित किया हुआ तुलसीदल या आँवले को खाकर शुद्ध होता है।। विष्णुपुराण में कहा है कि, भोजन के बाद विष्णु को अर्पित किया हुआ तुलसीदल भक्षण करने से जो शुद्धि होती है वह एक सौ चान्द्रायण व्रत करने के फल से भी अधिक है। इस व्रत को सूतक में भी करना चाहिये क्योंकि विष्णुपुराण में लिखा है कि, सूतक के होने और मृत्यु के होने पर भी द्वादशी के व्रत को न छोड़ना चाहिये।। ऐसे अवसर पर त्यक्त दानादि कर्म को सूतक बीत जाने पर करे।। मत्स्यपुराण में कहा है कि, सूतक के समाप्त होने पर मनुष्य स्नान करके भगवान् का पूजन कर, शास्त्रविधि से दान देकर व्रत का फल पाता है। स्त्रियाँ रजोदर्शन होने पर भी व्रत करें, क्योंकि पुलस्त्य ने कहा है कि, स्त्री रजोदर्शन होने के बाद भी एकादशी को भोजन न करे। जब द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र हो तो शुद्ध एकादशी का भी त्याग करके द्वादशी का उपवास करना चाहिये (त्याग काम्य विषय है) शुक्लपक्ष की हो या कृष्ण पक्ष की, यदि द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र हो तो दोनों दिन उपवास करके त्रयोदशी को पारणा करे।। ऐसा नारद का वचन है। अब

आठ महाद्वादशियों को कहते हैं जो अधिक शुद्ध एकादशी से संयुक्त हो वह उन्मीलिनी है। वही शुद्ध द्वादशी के आधिक्य में वंजुली होती है उनमें तीन वारों तक सम्बन्धों वाली उक्त त्रिस्पृशा, पर्व से अधिक कालव्यापिनी होती हुई जो सम्पूर्णतया हो वह पक्षवर्धिनी, पुष्यनक्षत्र वाली जया, श्रवणयुक्ता विजया, पुनर्वसुयुक्ता जयन्ती, रोहिणीयुक्ता पापनाशिनी कहाती है। ये आठ महाद्वादशियाँ होती हैं। इन पूर्वोक्त द्वादशियों में पापक्षय के लिये और मुक्ति की इच्छा से उपवास करे। इसका मूल हेमाद्रि में कहा गया है।। द्वादशी के पहले पाद को छोड़कर पारण करना चाहिये।। द्वादशी का पहला पाद "हरिवासर" होता है। इसलिये वैष्णव मनुष्य उस पाद को त्यागकर ही पारण करे। ऐसा निर्णयामृत विष्णुधर्म से कहा गया है। यदि द्वादशी बहुत हो तो भी प्रातःकाल तीन मुहूर्त चले जाने पर पारण करना चाहिये। क्योंकि सब उपवासों के लिये प्रातःकाल ही पारण का विधान है। यह एकादशीनिर्णय पूरा हुआ।। अब शुक्ल और कृष्ण पक्ष की एकादशियों का उद्यापन करने की विधि कहते हैं– हे अर्जुन! देवताओं के प्रबोध समय में उद्यापन करे। विशेषकर मार्गशीर्ष के महीने में माघ में या भीमतिथि के दिन उद्यापन करना चाहिये। उसकी विधि निम्नलिखित प्रकार से है। दशमी के दिन एक समय भोजन करके दतुवन करे और इस प्रकार एकादशी को पवित्र होकर आचार्य का संवरण करे। संकल्प – गणेश जी का स्मरण करके मास पक्ष आदि को कहकर यदि किया हो तो किये हुए यदि न किया हो तो किये जाने वाले, शुक्ल हो तो शुक्ल एवं कृष्ण हो तो कृष्ण एकादशी के व्रत की सांगतासिद्धि के लिये एवं उसके संपूर्ण फल की प्राप्ति के लिये देश काल के अनुसार यथाज्ञान शुक्ल एकादशी के व्रत के उद्यापन को मैं करता हूँ। उसका अंग होने के कारण गणपतिपूजन, आचार्यवरण और पुण्याहवाचन भी करूँ या कराऊँगा। इस संकल्प के पीछे षोडश उपचारों से गणेशपूजन का पुण्याहवाचन करावे। यजमान – आप पुण्याह कहें, ब्राह्मण – पुण्याह हो, यजमान – आप स्वस्ति कहें, ब्राह्मण – आपका स्वस्ति हो, यजमान – आप ऋद्धि कहें, ब्राह्मण – कर्म ऋद्धि को प्राप्त हो, यजमान – श्री हो ऐसा आप कहें,

ब्राह्मण श्री हो, यजमान – पूरे सौ वर्ष हों, ब्राह्मण – सौ वर्ष पूरे हो, यजमान – शिव कर्म हो, ब्राह्मण – हो शिवकर्म, यजमान – गोत्र की अभिवृद्धि हो, ब्राह्मण – हो गोत्र की अभिवृद्धि, यजमान – प्रजापति प्रसन्न हो, ब्राह्मण – हो प्रजापति प्रसन्न। इसके बाद उद्यापन कर्म में आचार्य का वरण करना चाहिये, रात को नियमपूर्वक उपवास करके आचार्य के साथ व्रती रहकर शक्ति के अनुसार जगद्गुरु विष्णु भगवान् की आराधना करे। गउओं के गोष्ठ में, देवालय में अथवा और किसी पवित्र जगह में या घर में चौरस आठ अंगुल ऊँची वेदी बनावे जो दो वितस्ति चौड़ी हो और उस पर काले तिल फैला दे। उसमें अष्ट दल का सुन्दर कमल बनावे। और उसके बीच बहुत सुन्दर नीरन्ध्र नवीन कुम्भ को स्थापित करे। काले तिलों से संयुक्त हो उसे काले वस्त्र से शोभित करे। उसमें दो पीपल के पत्ते रखकर पञ्चरत्न भी रखे और चारों तरफ संकर्षणादि नामों को लिख दे। फिर पवित्र होकर षोडशोपचार से पूजन करे। आग्नेयादि चतुष्कोण में गणमातृका आदि की पूजा करे। गणेश, मातृका, दुर्गा, क्षेत्रपाल आदि को चारों कोणों में सावधान होकर रखे। उसी प्रकार शुक्ल एकादशी के दिन भी वेदों को सफेद तिलों से पूरित करे। और सफेद वस्त्र से वेष्टित कर बड़ी प्रसन्नता के साथ पूजन करे। चारों ओर केशव आदि नामों से वेदी को अङ्कित करे। सुवर्ण के बने हुए भगवान् को पञ्चामृत से स्नान कराके स्थापित करे। गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि से संयुक्त और पवित्र जल से पूर्ण कुम्भ पर स्थापित कर, चतुर्भुज भगवान् का लक्ष्मी जी के साथ आवाहन करे। पहले वरण किया हुआ आचार्य, सर्वतोभद्र मण्डल के देवताओं की पूजा कर स्थापित किये हुए कलश पर देव सान्निध्य के वास्ते अग्नि उत्तारण की हुई विष्णुमूर्ति को स्थापित करके उसमें विष्णु का आवाहन करे, "ओं नमो" यहाँ से लेकर आवाहन के मन्त्र हैं कि – हे विष्णु भगवान् तेरे लिए नमस्कार है हे देवकीपुत्र! हे उत्तर परमेश्वर! तु कृष्ण है, तू अज है, अनादि है, विश्वात्मा है, सब लोकों का पितामह है, क्षेत्रज्ञ है, त्रिकाल रहने वाला है, विष्णु है, श्रीमान् पर नारायण हे, तुम्हीं सत्य पुरुष है। हे जगत्पते! तुम्हीं अतीन्द्रिय हो जो आपका सबसे प्रशस्त उत्कृष्ट सूक्ष्म तेज है उससे

इस वेदी में प्रविष्ट हो जा। 'ओं भूः' यह व्याहृति है, पुरुष का आवाहन करता हूँ, हे विष्णो! यहाँ आ, यहाँ बैठ, पूजा ग्रहण कर, अच्छी तरह प्रसन्न होकर वर का देने वाला हो जा। 'ओं भुवः' पुरुष का आवाहन करता हूँ 'ओं स्वः' पुरुष का आवाहन करता हूँ (इन तीनों व्याहृतियों का प्रसंग छान्दोग्योपनिषद में आया है) प्रत्येक पश्चिम और उत्तर आदि दिशाओं के दल में चार चार हजार स्त्रियों के सहित रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा और कालिन्दी का दक्षिण और पश्चिमोत्तर दलों के बीच में आवाहन कर, ईशानादि दिशा विभाग में शंख, चक्र, गदा और पद्म का आवाहन करे। उसके बाहर पूर्वपत्रों में अनुक्रम से – विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वा, सत्या, ईशाना आदि देवियों को ग्रहों के साथ पद्म के मध्य में स्थापित करें। भगवान् के आगे वेदिका पर गरुड़ की मूर्ति भी स्थापित करे। एवं उनका आवाहन कर पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से लाकपालों को स्थापित करें। इसके बाद पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से नाममन्त्रों से केशवादिकों का आवाहन करे कि, केशव के लिए नमस्कार है, केशव का आवाहन करता हूँ। केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर इन बारहों को शुक्ल एकादशी के दिन तथा संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नारसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, श्रीकृष्ण इन्हें कृष्णा एकादशी के दिन इसी प्रकार आवाहन करके "तदस्तु" इससे उन्हें प्रतिष्ठित करके 'यतो देवा" इस मंत्र से विष्णुभगवान तथा और बुलाये हुए देवताओं को नाम मंत्र से सोलहों उपचारों से पूज आसन, पाद्य, अर्घ्य–आचमनीय, स्नान, वस्त्र, उपवस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आरती और प्रदक्षिणा दे। दोनों ही एकादशियों का एक ही आचार्य हो, वो अष्टदल पत्ते के दलों में पूर्वादिक्रम से एक जगह सब देवताओं को स्थापित करके पूजे। विष्णुसूक्त से स्तुति करते हुए वैष्णव नाम मंत्रों से परिचर्या करे। अन्त में नमः शब्द का प्रयोग करके वेदी के अन्दर प्रतिष्ठित भगवान् की मूर्ति की पूजा करे। षोडशोपचार से पूजन करते हुए मूर्ति को वहीं विराजमान रखे, विसर्जन न करे संगीत से तथा नृत्य से या पुराणों की कथा से इतिहासों से जागरण कर रात्रि को समाप्त

करे। प्रातःकाल स्नानादि कर्म करके शास्त्रवेता चौबीस ब्राह्मणों को बुलाकर उनकी पूजा करे। आचार्य के समान उनका उपचार करे। होम संख्या के अनुसार वेदी बनाकर उस पर प्रणीता स्थापन करे। अग्नि का ध्यान आदि कर अन्वाधान करे। उसके लिये कि शुक्ला या कृष्णा एकादशी के व्रत के उद्यापन होम में देवता परिग्रह के लिये अन्वाधान करूँगा ऐसा संकल्प कर "चक्षुषी आज्येन" यहाँ तक उच्चारण आदि कृत्य करे। अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, विश्वेदेवा, ब्रह्मा, पुरुष और नारायण इनको पुरुष सूक्त से प्रत्येक ऋचान्त में घृताहुति पूर्वक यजन करे। ऐसे ही वासुदेव – बलदेव, श्री, विष्णु, अग्नि, वायु, सूर्य, प्रजापति इन प्रधान देवताओं को खीर से, केशवादि द्वादश देवताओं को घीमिश्रित खीर से, विष्णु को खीर की १०८ आहुति से तथा प्रत्येक चार हजार स्त्री सहित रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवंती और कालिन्दी को, शंख, चक्र, गदा, पद्म, गरुड को; इन्द्रादि अष्टलोकपालों को; विमला से लेकर अनुग्रहा पर्यन्त देवताओं को तथा ब्रह्मादि देवताओं को एक-एक आहुति दे। शेष से स्विष्ट कृत से लेकर प्रणीता के प्रणयन तक कर्म करके अन्वाधान की समिधाओं से हवन करे। पायस चरुश्रपण करके "पवित्रं ते" इस मंत्र से प्रापण का उद्धारण करना चाहिये। (स्विष्टकृत हवनादिक पहिले कह चुके हैं। इस कारण विस्तार के साथ नहीं लिखते।) "ओं पवित्र ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः अतप्ततनूनं तदानो अश्नुते श्रृताश इद्वहन्तस्तत्समासत।" सायण – हे मंत्र के स्वामी सोम! आपका शोषक अंग सर्वत्र विस्तृत है, तुम पीने वाले के अंगों को प्राप्त होते हो। पयोव्रत आदि से जिनका शरीर सन्तप्त नहीं हुआ वे नहीं प्राप्त होते, परिपक्व ही यागों को करते हुए पवित्र को व्याप्त होते हैं।। यह मंत्र तप्त धारण में प्रमाण माना गया है। हे जगत् के अधिपति पुरुषोत्तम! आपका सुदर्शन अङ्कन द्वारा सब जगह फैला हुआ है आप सबके शरीर में व्यापक है। शंख चक्रों से जिसका शरीर नहीं तपाया गया वो अपरिपक्व उसको नहीं पाते। जो तपाये गये हैं एवम् धारण करते हैं वे भगवान् के शरण होकर उत्तम पद को पाते हैं।। पायस से कुछ उद्धृत कर लिया जाये तो उसे प्रापण कहेंगे। आज्य संस्कार आदिक आज्य भाग्य के अन्त

तक करके यह उपकल्पित हवनीय द्रव्य देवताओं के अनुसार उपकल्पित हो, पाँच अनादेश की आहुतियों को घी से हवन करके नारायण पुरुष को पुरुष सूक्त की एक-एक ऋचा से घी की आहुति देनी चाहिये। ओं वासुदेव के लिये यह आहुति है, विष्णु के लिये यह आहुति है। विष्णोर्नुक मन्त्र पहले कह चुके हैं। "ओं तदस्य प्रियमभिपाथो अस्याम् नरो यत्र देवयवो मदन्ति। उरुक्रमस्य सहि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्य उत्सः।।" हम उसके प्यारे अन्न को चारों ओर से प्राप्त होते हैं जहाँ देवताओं से योग रखने वाले मनुष्य आनन्द को प्राप्त होते है उसका सत्य ही बन्धु है उसके परम पद में आनन्द का मेघ बरसता रहता है। "ओम् तद् विष्णु स्तवते वीर्येण, मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः, यस्योरुषु विक्रमेषु अधिक्षिपन्ति भुवनानि विश्वा।" हे जगदीश! आप सिंह भी नहीं कहे जा सकते किन्तु आपका कुछ अंग सिंह जैसा होने के कारण सिंह की तरह भयंकर हो रहे हो मुष्टि लगते ही आप खंभ से निकल पड़े, सो क्या उसमें बैठे थे। आपने नाखूनों से ही उसे मार दिया, इसने मुझे बड़ा सताया था अथवा जब आप वामन अवतार लेकर तीन पैर से सब कुछ नाप लेंगे तब फिर मैं आपको मनाने का यत्न करूँगा। "ओम् परो मात्रया तन्वा वृधान न तो महित्व मन्वमन्वश्नुवन्ति उभे ते विभग रजसी पृथिव्य विष्णो देवत्वं परमस्य पित्से! "सबसे उत्कृष्ट आप शरीर की मात्रा से बढ़े। तुम्हारी महिमा को कोई नहीं पा सकता आपके हम दोनों लोकों को जानते हैं। हे विष्णु! हे देव! आप इसका पर जानते हैं। 'ओम् विचक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्। ध्रुवासो अस्य कीरयो जानास उरुक्षिति सुजनिमाचाकार।" मैं ऐसा मानता हूँ कि, यह वामन का कार्य्य देवता और मनुष्य के कल्याण का था इसके स्तुति करने वाले जन नित्य हो जाते हैं यानी दिव्य सूरियों में स्थान पाते हैं। इसने असुरों का संहार करके अवतारादिक लेकर भूमि को दिव्य बना दिया।। "ओम् त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां विचक्रमे शतचं संमहित्या, "प्रविष्णुरस्तु तवसस्तदीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम।" जिस देव ने इस पृथिवी को तीन बार पदाक्रान्त किया। वह महामहान् है। उनकी प्रार्थना करने वाली अनेकों ऋचाएँ हैं। वो बलवानों के भी बलवान है। इस स्थविर का नाम

ही बड़ा तेजस्वी है। इन मंत्रों से और व्याहृतियों से खीर से हवन करके, यदि शुक्ला एकादशी हो तो केशव आदि द्वादश नामों से, एवं कृष्णा हो तो संकर्षण आदि द्वादश नामों से, यदि दोनों का एक आचार्य और एक ही स्थण्डिल हो इस पक्ष में २४ को ही ये नाम मंत्रों से घी मिली हुई खीर से हवन करना चाहिये। पीछे विष्णु भगवान् को १०८ खीर की आहुतियाँ देकर फिर चार-चार हजार स्त्रियों की टोलियों को अधिपाओं रुक्मिणी आदियों को एवं शंख आदिकों को लोकपालों को तथा विमला आदि के देवताओं एवम् ब्रह्मादिक देवताओं को एक-एक आहुति देनी चाहिये। इसके बाद प्रापण के लिये प्रार्थना करनी चाहिये—सृष्टि के रचने वाले सबसे पहले पुराण पुरुष एक तुझ नारायण का यजन करते हैं, करने के योग्य मैंने एक भाग किया है, हे जगत् के अधीश्वर! हव्य को ग्रहण करें। इससे प्रापण का निवेदन करके उपस्थान करे! पीछे तीन बार या चार बार प्रदक्षिणा क्रम से अग्नि की ओर वेदिका की प्रदक्षिण करके "ओम् भिन्धि विश्वा अप्रद्विषः परिबाधो जही मृषः वसुस्पाहं तदा भर" हमारे सारे वैरियों और बैरों को बुरी तरह भेदिये, आप हमारी बाधाओं के बाधने वाले हैं इस कारण युद्ध या युद्ध की बाधाओं को मिटा दीजिये जिस धन को लोग चाह किया करते हैं उस धन को हमारे घर में खूब भर दीजिये, इससे घोटू टेककर ध्रुवसूक्त या पुरुषसूक्त का जप करना चाहिये। पुरुषसूक्त तो हम पहिले ही कह चुके हैं। अब हम ध्रुवसूक्त को भी कहते हैं। ऋग्वेद अध्याय ८ का इकत्तीसवाँ सूक्त ध्रुवसूक्त है। श्रीमान् चतुर्थी लाल शर्मा गौड़ जी ने भी इसे ही ध्रुवसूक्त माना है। इसमें छः मन्त्र हैं। हम उनको यहाँ लिखते हैं। **"ओम् आत्वा हार्षमन्तरेऽषिध्रुवस्तिष्ठा विचाचलिः विशस्त्वासर्वा वाञ्छन्तु मात्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत्॥१॥** मैं तुझे सबके बीच में प्राप्त करता हूँ जो न चलायमान हो ऐसा ध्रुव बनकर विराजमान हो, सब प्रजा चाहे तेरे प्रकाशशील लोक का कभी पतन न हो।। **ओम् इहैवेधि मापच्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः। इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्र मुधारय॥२॥** तुम यही बढो इससे नीचे ऊपर मत जाना जैसे कि अचलपर्वत होता है ऐसे ही अचल बनो, इंद्रियों के अधिपति तथा – "इन्द्रमित्याचक्षते परोक्षप्रिया

इव हि देवाः" उसे परोक्ष से प्यार करने वाले देव इन्द्र कहते हैं। यानी परमात्मा की तरह ध्रुव तू ठहर यहाँ ही प्रकाश शील तारों को धारण कर। **ओम इममिन्द्रोऽअदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा, तस्मै सोमोऽअधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः॥३॥** जिसका फल कभी न मिटे ऐसी जो हवि दी थी उसी से परमात्मा ने ध्रुव को उतने ऊँचे स्थान पर पहुँचाया। प्रसङ्ग से यहाँ नारद का बोध होता है। भगवान् ने भी उससे बातें कीं। यानी वेद के अधिपति भगवान् ने उसके मुख से शंख लगाकर खूब स्तुति कराई।। **ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवापृथिवी ध्रुवालः पर्वता इमे, ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुववो राजा विशामयम्॥४॥** द्यौ ध्रुवा है। पृथिवी ध्रुवा है। ये पर्वत ध्रुव है। यह सब संसार भी सदा ऐसा ही चला रहा है इसलिये यह भी ध्रुव ही है। बहुत समय तक राज्य करने वाला राजा ध्रुव भी एक प्रकार का ध्रुवराजा है।। **ओं ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः; ध्रुवंत इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रंधारयतां ध्रुवम्॥५॥** आपका राजा वरुण ध्रुव वरुण है। देव बृहस्पति ध्रुव है आपके इन्द्रदेव अग्नि देव भी ध्रुव है। आप अपने राष्ट्र को नित्य धारण करिये।। **ओं ध्रुवं ध्रुवेण हविषाऽभिसोनं मृशामसि, अयोत इन्द्रः केवलीविंशोदवलीहृत स्करत्॥६॥** हम ध्रुव हवि से ध्रुव सोम का अभिमर्षण करते हैं। इन्द्र ने केवल प्रजा को बलि हरने वाली बनाया।।" पीछे प्रत्येक दिशा में इन मन्त्रों से आठ-आठ पग चले कि – कृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा, शरण्य, अप्रमेय और गोविन्द के लिए बारम्बार नमस्कार है। स्थूल, सूक्ष्म, व्यापक, अव्यय, अनन्त, जगत् के धाता, ब्रह्म, अनन्तमूर्ति अव्यक्त अखिलेश, विद्रूप और गुणात्मा के लिए नमस्कार है। मूर्त, सिद्ध, पर, परमात्मा, देवदेव, वन्द्य, पर, परमेष्ठी विश्व के कर्ता, गोप्ता उसके संहर्ता जो आप हैं आपके लिए नमस्कार है। पीछे निवेदन किये हुए प्रापण को शिर पर रखकर घोषणा करे कि, वैष्णव कौन है यह ऊँचे स्वर से कहना चाहिये। वहाँ जो दूसरे वैष्णव बैठे हों उन्हें कहना चाहिये कि, हम वैष्णव है, हम वैष्णव है। उन सबों को हवि बाँटकर, **"ओं नमो भगवते वासुदेवाय,** भगवान् वासुदेव के लिए नमस्कार" इस मन्त्र से इस अमृत का मैं प्राशन करता हूँ ऐसा कहकर प्राशन और आचमन

करके या तो आचार्य या यजमान – "सिद्धि के लिये स्वाहा इससे आज्य हवन करना चाहिये। **"ओं यत इन्द्र भयामहे ततो नोऽअभयं कृधि , मधवन छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्विद्विषो विमृधो जहि।"** हे इन्द्र! जिस ओर से हम डरते हैं उसी ओर से हमें अभय कर दीजिये। हे मघवन्! हमें अपनी रक्षाओं से बलवान् बना दो, एवम् वैरियों के युद्ध द्वेष एवम् उनसे होने वाले अनिष्टों को हमारे समीप भी मत आने दीजिये, उन्हें नष्ट कर दीजिये। इस मंत्र से अपने को अभिमंत्रित करके स्विष्ट कृत आदि का होम शेष जो हो उसे पूरा कर दे। उत्तर पूजा कर–होमान्त में, दूध देने वाली निरोगी बच्चे सहित – काले रंग की गौ काले वस्त्र के साथ कांसे के बर्तन की दोहनी सहित दक्षिणापूर्वक व्रत की समाप्ति के लिये आचार्य को दे। अनेक प्रकार के भूषण अनेक प्रकार के वस्त्र चौबीस प्रकार के पक्वान्न भी बड़ी दक्षिणा के साथ दे। यदि अपना भला करना हो तो व्रत का उद्यापन करे। बारह ब्राह्मणों को निमन्त्रित कर प्रत्येक ब्राह्मण को नाम लेकर पूजे तथा उन्हें यज्ञोपवीत दक्षिणा सहित कलश, मिठाई, फल और वस्त्र दे। फिर बड़ी भक्ति से उन्हें पक्वान्न से भोजन करावे। साथ ही दूसरों को भी यथाशक्ति भोजन करावे। पीछे ब्राह्मणों से कहे कि मेरा व्रत संपूर्ण हो। तब ब्राह्मण कहे कि, आपका व्रत पूरा हो जाय, पीछे आचार्यसहित व्रती वैष्णव सूक्तों का जपकर तथा बारंबार प्रणाम करके ओं भूः पुरुषमुद्वासयामि भूः यह तो व्याहृति है मैं पुरुष का उद्वासन (विसर्जन) करके "इदं विष्णुः" इससे पीठ आचार्य को देकर पीछे बन्धुजनों के साथ स्वयं भोजन करे। यह बौधायन की कही हुई शुक्ला और कृष्णा दोनों एकादशियों के व्रत की विधि पूरी हुई।।

पूजाविधि– ब्रह्मपुराण में लिखा हुआ है कि, दोनों पक्षों की एकादशी को एकाग्रचित्त हो निराहार रहे। विधि से स्नान करे तथा उपवासपूर्वक जितेन्द्रिय रहे। श्रद्धा भक्ति के साथ सावधान हो विधिपूर्वक विष्णु का पूजन करे। पूजा में गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि षोडशोपचारों के प्रयोग करे। तथा जप होम प्रदक्षिणा, नाना प्रकार के स्तोत्र, सुंदर मनोहर सङ्गीत आदि दण्डवत् प्रणाम और जय शब्दों से इस

प्रकार वैध पूजन कर रात्रि में जागरण करे तो मनुष्य निःसन्देह विष्णुलोक का अधिकारी होता है।

अथोद्यापनविधिः– अर्जुन बोले; हे कृपानिधे! व्रत का उद्यापन कैसा होना चाहिये और उसकी क्या विधि है? उसको आप कृपा करके मुझे उपदेश दें। श्रीकृष्ण बोले कि, हे अर्जुन! मैं तुम्हें उसकी विधि बतलाता हूँ। शक्तिमान् मनुष्य हजार सुवर्णमुद्रा और असमर्थ एक कौड़ी भी यदि श्रद्धा से दे तो उन दोनों का फल एक समान है, यदि शक्ति हो तो दुगुना दे जैसा मध्यमविधि में (कहा है) जितना बतलाया है यदि उससे आधा भी अशक्त मनुष्य दे दे तो दान का पूरा फल पाता है। उसकी विधि को मैं कहता हूँ। हे कौरवश्रेष्ठ! उद्यापन के बिना, कष्ट से किये हुए व्रत भी निष्फल है। जब देवताओं के जागरण का समय हो उस समय उद्यापन विधि करे। मार्गशीर्ष में अथवा भौमतिथि पर दशमी तिथि के कुछ दिन शेष रहने पर रात में गुरु के घर जाये और एकादशी के दिन शक्तिपूर्वक गुरु की पूजा करे। एवं उसके चरणों को शिर से लगाकर प्रार्थना करे। गुरु पुण्यवेश में उत्पन्न होने वाला, शान्त; सर्वगुणसम्पन्न, सदाचारी, वेदवेदांगों का जानने वाला हो। उससे कहे कि, गुरु महाराज! मेरा यह हरिवासर से सम्बन्ध रखने वाला व्रत जिस तरह संपूर्ण हो ऐसा उपाय कीजिये। दन्तधावनपूर्वक उसके आगे नियम करे कि; मैं एकादशी को निराहार रहकर द्वादशी को भोजन करूँगा। हे पुण्डीकाक्ष! भगवान्! मेरे, आप शरण हों, हे प्रभो! प्रातःकाल सावधान मन से स्नान कर पाखंडी और पतित लोगों का संगम दूर करे। नदी आदि के शुद्ध जल में मन्त्रपूर्वक स्नान कर पितरों का तर्पण करे ओर विष्णु भगवान की पूजा करे। कीड़े या बाल, अस्थि आदि से वर्जित जगह पर गोबर से लीप कर हे भूप! अनेक रंगों से सर्वतोभद्र बनावे जो कि सब कर्मों में पूजित है आठ अंगुल ऊँची चौरस और दो वितस्ति चौड़ी वेदी करे, उसे अक्षतों से परिपूर्णकर अष्टदलकमल लिखे। उस पर नवीन, सुन्दर कलश स्थापित करे अथवा चावलों का ही अष्टदल कमल बनावे। चाँदी या ताम्बे का उस पर भरा हुआ कलश रखे। उस पर भगवान् की सुवर्ण से बनी हुई मूर्ति को लक्ष्मी जी सहित विराजमान

करे। चावल यज्ञोपवीत सुवर्ण और वस्त्र से संयुक्त तथा रुद्राक्षमाला, शंख, चक्र, गदा आदि से विभूषित कर भगवान् की यथाशक्ति सुवर्ण पुष्पों से तथा ऋतु के पुष्पों से पूजा करे हे परंतप! चौबीसों तिथियों में भक्ति के क्रम से चौबीस नैवेद्य दे अथवा जब उद्यापन हो तब ही इच्छानुसार मोदक, गुड़ का चूर्ण, घृत के पूरे, मांडे, सोहालिकादिक, सारसेवा, सक्तु, बडे, पायस, दुग्ध, शालि, दध्योदन, इडरीक, पूरी, अपूप, गुड के लड्डू, शर्करा सहित तिलपिष्ट, कर्णवेष्ट, शालिपिष्ट, रंभाफल, घृतसहित मूंग का सार, गुड़भात इस नैवेद्य को क्रम से दें अथवा अन्तिम दिन सबको बनावें। पूजा के नाम—चरणों में दामोदर तलवों में माधव, गुह्यस्थान में कामपति, कटि में वामन मूर्त्ति, नाभि में पद्मनाभ, उदर में विश्वमूर्त्ति, हृदय में ज्ञानगम्य, कण्ठ में श्रीकण्ठसङ्गी, बाहू में सहस्रबाहु, नेत्रों में योगयोगी, ललाट में उरुगाय, नाक में नाकसुरेश्वर, कान में श्रवणेश, चोटी में सर्व कामट, शिर में सहस्त्रशीर्ष, सर्वाङ्ग में सर्वरूपी भगवान्, हृदय में जगन्नाथ का ध्यान करके, नारियल से या बिजौर से विधिपूर्वक चावल, फूल, जल, चन्दन आदि से व्रतपूर्त्ति करने वाले पूर्वोक्त मन्त्रों द्वारा अर्घ्य दे। रात में जागरण करे और अनेक प्रकार के गायन वाद्य का आयोजन करे। पृथ्वी का दान, गया में पिण्डदान एवं कुरुक्षेत्र में दान का जो फल मिलता है वह हरि के आगे जागरण करने से होता है। नाच, गाना, वीणा आदि बाजों को बजाते हुए पुराणश्रवण जो लोग करते हैं वे सब विष्णु के प्यारे हैं। शास्त्र से अथवा भक्ति से पवित्र या अपवित्र ही रहकर जो विष्णु का जागरण करने वाले हैं वे सब करोड़ों पापों से मुक्त होते हैं। भोजन किए हुए या न किए हुए जो मनुष्य भगवान् के जागरण में उपस्थित होता है वह सब पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक को प्राप्त होता है। भगवान् के मन्दिर में जागरण करने के लिये जो मनुष्य जितने कदम चलता है वह उतने ही अश्वमेध यज्ञ करता है। जागरण करने वाले मनुष्य की पैरों की धूल की कण जितनी पृथ्वी में गिरती है उतने ही वर्ष तक वह मनुष्य स्वर्ग में निवास करता है। कोटि-कोटि युगों से किए हुए सुमेरु पर्वत के समान पापों को भी हरिभगवान् का जागरण नष्ट कर देता है। उस रात में हरिभगवान्

को आवाहन करके मन से स्मरण करे और प्रातःकाल होते ही स्नान करके ब्राह्मणों को बुलावे। जो संख्या में २४ और शास्त्रपारङ्गत हों, उनके द्वारा जप, होम, पूजा आदि विधिपूर्वक करे। "इदं विष्णु" इस मन्त्र की १०८ आहुति से होम करना द्विजातियों के लिए प्रशस्त माना गया है। तथा शूद्रों के लिए अष्टाक्षर मन्त्र का विधान है। हे अर्जुन! अभिमन्त्रित ब्राह्मणों को अलग-अलग अनेक प्रकार के वस्त्र, बर्तन, आसन, जूती आदि नवांग वस्तुओं को दे। अथवा यथा शक्ति द्वादश चीजों को दे। उन सपत्नीक ब्राह्मणों को पुष्पमाला आदि से पूजकर पक्वान्न और जल से संयुक्त १२ कलशों को देकर भोजन करा भक्ति से विचरे। सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाली एक कपिला गौ को स्वर्ग मोक्ष की सम्पूर्णता के लिए दे। जिसको देते समय **"नमस्ते कपिले देवि"** इस श्लोक का उच्चारण करे। इसका अर्थ यह है कि हे कपिले देवि! तेरे लिये नमस्कार है। तू संसार सागर से पार करने वाली है। मैंने तुझे ब्राह्मण के लिये दे दिया है, इससे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हो जायँ, सर्वतो भद्रमण्डल के और विष्णु भगवान् के निकट सपत्नीक गुरु की पूजा करे और उनको वस्त्र, भूषण, भोजन, प्रणाम आदि से प्रसन्न और सन्तुष्ट करे। और भी उद्यापन के समाप्त करते हुए हे अर्जुन! कृपणता को त्यागकर अनेक प्रकार की इष्ट वस्तुओं को यथाशक्ति प्रदान करे। जलदान और भूमि का दान करे। फिर पुरुषोत्तम भगवान के आगे हाथ जोड़कर मयाद्यास्मिन् व्रतो" आदि श्लोकों **"सर्वं सम्पूर्णतां यातु स्वत्प्रसादाद्रमापते"** इस श्लोक तक उच्चारण करे। इन श्लोकों का अर्थ यह है कि, हे विभो! मैंने जो अपने व्रत में अपूर्णता की सो सब आपकी कृपा से हे जनार्दन! परिपूर्ण हो जाये, मेरी भक्ति मेरे में ही सदा रहे। हे दामोदर! हे प्रभो! मेरी पुण्य बुद्धि रहे, मैं सज्जनों की सेवा करता रहूँ,यही धर्मफल हो, मेरे व्रत में जो जप तप में त्रुटि हो, हे रमापते! वो सब आपकी कृपा से संपूर्ण हो जाये, पीछे प्रदक्षिणा करके प्रणाम करे। इसके बाद विष्णु भगवान् मुझ पर प्रसन्न हो जाये। ऐसे बोलकर मूर्त्ति सहित मण्डल, भेंट और दक्षिणा आचार्य को दे। इस प्रकार सब लोगों को भोजन कराकर सन्तुष्ट कर विसर्जित करे। और उसकी आज्ञा से

अपने बन्धुओं के साथ पारण करे। इस एकादशी व्रत को यौवनाश्व नाम के राजा ने जैसा पहले किया था उसको मैंने यथाविधि तुमसे कह दिया है। हे अर्जुन! यह तुम्हारी प्रीति है, एवं भक्ति तथा तुझ पर कृपा है जिससे मैंने तुमको यह प्रकट किया। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस भयनाशक व्रत को करता है वह दाह प्रलयवर्जित विष्णुलोक को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तुमको दोनों एकादशी के उद्यापन की विधि बतला दी। इसकी अधिक प्रशंसा करके मैं तुम्हें क्या बताऊँ? समझलो कि, इस त्रिलोकी में इससे अधिक और कोई उत्तम वस्तु नहीं है। इस उद्यापन के उपलक्ष्य में गोदान या भूमिदान दिया जाये तो उसका फल गो रोम की संख्या के बराबर के युगों तक बना रहता है और दाता लोग तब तक विष्णु लोक में एकादशी की कथा का श्रवण करें वे भी निःसन्देह स्वर्ग को जाते हैं एवं निवास करते हैं। इस प्रकार अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् के परम अद्भुत वचनों को सुनकर बहुत सुखी और आनन्दित हुये। उद्यापन की विधि समाप्त हुई।

लेखक परिचय

डॉ. रामराज उपाध्याय की माता जी का नाम श्रीमती मालती उपाध्याय एवं पिता जी पं. श्री गुप्तेश्वर उपाध्याय जी है। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई। तदनन्तर जो.म. गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, भदैनी, वाराणसी से सामवेद विषय से उत्तरमध्यमा एवं शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से आचार्य, शिक्षाशास्त्री की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर सामवेद, पौरोहित्य, शुक्लयजुर्वेद एवं साहित्य विषयों में आचार्य एवं महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ से एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद तत्कालीन प्रतिकुलपति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश एवं वेद विभागाध्यक्ष प्रो. युगल किशोर मिश्र जी के मार्ग निर्देशन में विद्यावारिधि (Ph.D.) की उपाधि प्राप्त की।

अपने पितामह स्व. पं. श्री सुदर्शन उपाध्याय–वेद विभागाध्यक्ष, श्री जो.म. गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, भदैनी, वाराणसी के आशीर्वाद से यज्ञादि कर्मकाण्डीय विधाओं का ज्ञान प्राप्त किया। स्व. पं. श्री चन्द्रभानुपाण्डेय जी, उप–पुस्तकालयाध्यक्ष, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के चरणों में बैठकर ज्योतिष का ज्ञान भी प्राप्त किया। उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी से वेद पण्डित एवं सायण पुरस्कार भी प्राप्त किया सम्प्रति श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ के पौरोहित्य विभाग में उपाचार्य पद प[र] कार्यरत हैं। आप पौरोहित्य विभागाध्यक्ष भी रह चुक[े] हैं। आपकी प्रथम पुस्तक मनोभिलषित व्रतानुर्णन[म्] को राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली के सहयो[ग] से प्रकाशित किया जा चुका है। वर्तमान में इण्डिय[ा] न्यूज, निर्वाण, महामिडिया इत्यादि कई पत्रिकाअ[ों] एवं दैनिक जागरण सहित देश के कई समाचार पत्र[ों] में भारतीय संस्कृति संबंधित लेख भी आपक[े] प्रकाशित होते हैं। श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रि[य] संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली 16 के समस[्त]

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

(मानित विश्वविद्यालय)

नैक द्वारा 'ए' श्रेणी प्राप्त

कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, कटवारिया सराय

नई दिल्ली - 110016